बुन्देलखण्ड के जैन मन्दिर-सांस्कृतिक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
की
इतिहास विषय में पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2005-2006
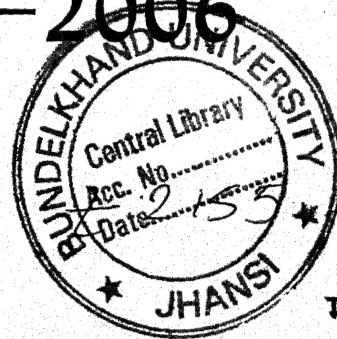
निदेशक :
डॉ० एस० पी० पाठक
रीडर एवं अध्यक्ष-इतिहास
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी

शोधार्थी :
मनीष श्रीवास्तव

:: शोध केन्द्र ::
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी (उ०प्र०)

डॉ. एस.पी. पाठक
रीडर एवं अध्यक्ष इतिहास विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी

निवास : सिविल लाइन, इलाहाबाद
बैंक, चौराहा, झाँसी
फोन : (0510) 2472317
9450908592 (मो.)
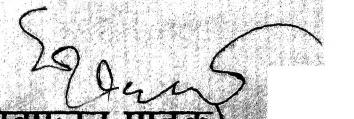
प्रमाण-पत्र

दिनांक : 24. 04. 06

प्रमाणित किया जाता है कि **श्री मनीष श्रीवास्तव** द्वारा बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की इतिहास विषय की शोध उपाधि हेतु **''बुन्देलखण्ड के जैन मंदिर-सांस्कृतिक अध्ययन''** विषय पर किया गया शोध कार्य मौलिक है। यह मेरे मार्ग दर्शन में पूर्ण किया गया। शोधार्थी ने नियमानुसार 200 कार्य दिवस की उपस्थिति मुझे दी है मेरी जानकारी में यह ग्रन्थ –

(i) शोधार्थी का स्वयं का मौलिक कार्य है।

(ii) शोध कार्य अपने आप में पूर्ण है।

(iii) विश्वविद्यालय की शोध उपाधि हेतु निर्गमित अध्यादेशों की प्रतिपूर्ति करता है।

(iv) शोध कार्य स्तरीय है और परीक्षकों को प्रेषित किये जाने योग्य है।

(डॉ. शिवपूजन पाठक)
शोध निदेशक

प्राक्कथन

भारतवर्ष के हृदय प्रदेश में स्थित बुन्देलखण्ड में सभी धर्मों व सम्प्रदायों को विकसित होने का समान अवसर प्राप्त हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से यहां की पहाड़ियों, जगलों व निर्जन स्थल ने जैन मुनियों को तप करने का सुनहरा अवसर प्रदान किया। एक जैन परम्परा के अनुसार देवपथ और खेवपथ नामक दो जैन बंधुओं ने मेरठ से चलकर बुन्देलखण्ड की ओर पदार्पण किया और ललितपुर में उन्होंने आश्रय लिया। यहीं पर इन दोनों जैन बंधुओं ने रुपये के लेन देन का व्यापार प्रारम्भ किया और इस व्यापार में उन्होंने इतना धन कमाया, जिसके बल पर इन्होंने बुन्देलखण्ड के क्षेत्र में अनेकों जैन मंदिर बनवाये।

यों तो जैन धर्म अत्यन्त ही प्राचीन है और इसका प्रारम्भ वैदिक काल से माना जाता है किन्तु बुन्देलखण्ड में जैन मंदिरों का निर्माण जैनियों की धनाढ्यता का प्रतीक है। रुपये के लेन देन का व्यापार ही विशेषतया जैनियों से जुड़ा है। बुन्देलखण्ड में देवगढ़ जैनियों का आज भी एक तीर्थ स्थान माना जाता है जहाँ अनेक जैन मंदिर और दुर्लभ जैन तीर्थकारों की मूर्तियाँ स्थित हैं। इसके समीपवर्ती क्षेत्र चांदपुर, दुधई आदि स्थल भी जैन मूर्तिकला और मंदिर निर्माण से जुड़े हुये हैं। सोनागिरी के जैन मंदिर आज भी विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बने हैं। खजुराहो के मंदिर स्थापत्य और मूर्तिकला के उत्कृष्ट नमूनों का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के अन्य जैन मंदिरों में विराजमान तीर्थकारों की मूर्तियाँ अपने पीछे पुरातत्व इतिहास और सांस्कृतिक परिवेश को संजोये हुये हैं।

बुन्देलखण्ड के जैन मंदिरों पर पर्याप्त अध्ययन नहीं हुआ है। डॉ. महेन्द्र वर्मा ने चाँदपुर और दुधई के तंदिरों की वास्तुकला का निरूपण अवश्य किया है, किन्तु इस क्षेत्र में दूर–दूर तक फैले हुये अनेकों जैन मंदिर, मूर्तियाँ और तीर्थस्थल अब भी शोधार्थियों के लिये अध्ययन का पर्याप्त क्षेत्र प्रदान करने में सफल है। उत्तर प्रदेश के विभाजन के पश्चात् पर्यटन की दृष्टि से बुन्देलखण्ड के मंदिरों की स्थापत्य, मूर्तिकला और लोक संस्कृति पर्यटकों के आकर्षण के महान केन्द्र हैं।

उत्तर प्रदेश शासन ने भी बुन्देलखण्ड को पर्यटन की दृष्टि से विकसित करने का संकल्प लिया है। इसलिये भी इन जैन तंदिरों का उनकी निर्माण शैली, उनकी मूर्तियों तथा मूर्तियों से जुड़ी हुयी परम्पराओं एवं दार्शनिक पक्ष का सूक्ष्म अध्ययन आवश्यक है। ललितपुर जिले में स्थित देवगढ जैन ट्रस्ट पुस्तकालय में संग्रहीत इन मंदिरों के निर्माण संबंधी सूचना, राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली में नवनिर्मित बुन्देलखण्ड अध्ययन केन्द्र में संग्रहीत सामग्री, राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में, उपलब्ध सूचनायें एवं स्थानीय परम्पराओं का विश्लेषण करते हुये इस क्षेत्र के जैन मंदिरों, उनके निर्माण शैली एवं उसमें स्थित मूर्तियों के सांस्कृतिक व दार्शनिक पक्ष को प्रस्तुत करना ही मेरे शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 8 अध्यायो में विभक्त किया गया है
प्रथम अध्याय में बुन्देलखण्ड की भौगोलिक संरचना तथा यहां के इतिहास से जुडे शासकों के बारे में कमवार रुप से वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसमें बुन्देलखण्ड की प्राचीनता का दिग्दर्शन करते हुये उसकी भौगोलिक सीमाओं का निर्धारण किया गया है।

अध्याय 2 में बुन्देलखण्ड की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।
यहाँ निवास करने वाली सभी जातियों तथा समाज में उनकी स्थिति को बतलाया गया है। यहाँ के लोगों को जीवन यापन करने में किन किन कठिनाइयों का सामना करना पडा और उन्होने किस प्रकार से यहाँ की विषम परिस्थितियों से जूझकर कृषि उत्पादन
को अपनाया। इन सभी तथ्यो का इसमें समावेश किया गया है।

प्राचीनकाल से ही बुन्देलखंड में कृषि आधारित उद्योगों के अलावा अन्य कुटीर उद्योगों का प्रचलन था। गांवों में रहने वाले किसान और खेतिहर मजदूर चटाई बुनना, सूत कातना, मूँज भांजना, रस्सी बटंना और खपड़े बनाने का काम किया करते थे।

अध्याय 3 जैन मन्दिरों के विकास के इतिहास व बुन्देलखंड से सम्बन्धित है।
साधारणतया यह समझा जाता है कि जैन धर्म के प्रवर्तक वर्द्धमान महावीर थे। लेकिन जैन अनुश्रुतियों के अनुसार उनके धर्म का प्रारंभ छठी सदी ई0पू0 के लगभग हुए सामाजिक–धार्मिक सुधार आन्दोलन के काल में वर्द्धमान महावीर द्वारा नही हुआ। वे अपने धर्म को सृष्टि के समान ही अनादि मानते हैं।

इस अध्याय में जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है साथ ही साथ सभी 24 तीर्थकरों के बारे में बतलाया गया है। जैन मंदिरों के विकास के इतिहास पर इस अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। जिसके अन्तर्गत बुन्देलखण्ड में शासन करने आये विभिन्न शासकों के कार्यकाल में मंदिर निर्माण पर क्या प्रभाव पडा। इस अध्याय में उन परिवर्तनों को भी बतलाया गया है।

अध्याय 4 में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के सभी जैन मंदिरों का इतिहास बताया गया है।
बहुलता व कलात्मक दृष्टि से जैन धर्म–स्थल का महत्व अधिक है।

बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थलों में अनेक जैन मंदिर जो आज भी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में मौजूद है। (अ) देवगढ़ (ब) चांदपुर–जहाजपुर (स) दुधई (द) मदनपुर (य) बानपुर (र) पावागिरि (ल) सिरौन (व) सिरोनजी (सीरोन खुर्द) (श) गिरार (ष) ललितपुर व झाँसी खजुराहो इन स्थानों में प्राप्त जैन मंदिर धर्मिक और कलात्मक महत्ता के लिये प्रसिद्ध हैं। इनके अलावा और भी अज्ञात मन्दिर हैं जो कि शोधार्थियों के लिये पर्याप्त अध्ययन का विषय हैं ।

अध्याय 5 में मंदिरों के निर्माण से जुडी स्थापत्य संबंधी परम्पराओं का समावेश किया गया है। मंदिर स्थापत्य में विभिन्न शासकों के कार्यकाल के दौरान अनेक परिवर्तन आये. जैसे गुप्तकाल. प्रतिहारकाल. चन्देलकाल।

जैन मंदिरों की मूर्तिकला को 5 मुख्य वर्गो में बाँटा जा सकता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 8 अध्यायो में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में बुन्देलखण्ड की भौगोलिक संरचना तथा यहां के इतिहास से जुडे शासकों के बारे में कमवार रुप से वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसमें बुन्देलखण्ड की प्राचीनता का दिग्दर्शन करते हुये उसकी भौगोलिक सीमाओं का निर्धारण किया गया है।

अध्याय 2 में बुन्देलखण्ड की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।
यहॉ निवास करने वाली सभी जातियों तथा समाज में उनकी स्थिति को बतलाया गया है। यहॉ के लोगों को जीवन–यापन करने में किन किन कठिनाइयों का सामना करना पडा और उन्होने किस प्रकार से यहॉ की विषम परिस्थितियों से जूझकर कृषि उत्पादन को अपनाया। इन सभी तथ्यो का इसमें समावेश किया गया है।

प्राचीनकाल से ही बुन्देलखंड में कृषि आधारित उद्योगों के अलावा अन्य कुटीर उद्योगों का प्रचलन था। गांवों में रहने वाले किसान और खेतिहर मजदूर चटाई बुनना, सूत कातना, मूँज भांजना, रस्सी बटना और खपड़े बनाने का काम किया करते थे।

अध्याय 3 जैन मन्दिरों के विकास के इतिहास व बुन्देलखंड से सम्बन्धित है।
साधारणतया यह समझा जाता है कि जैन धर्म के प्रवर्तक वर्द्धमान महावीर थे। लेकिन जैन अनुश्रुतियों के अनुसार उनके धर्म का प्रारंभ छठी सदी ई०पू० के लगभग हुए सामाजिक–धार्मिक सुधार आन्दोलन के काल में वर्द्धमान महावीर द्वारा नही हुआ। वे अपने धर्म को सृष्टि के समान ही अनादि मानते हैं।

इस अध्याय में जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है साथ ही साथ सभी 24 तीर्थकरों के बारे में बतलाया गया है। जैन मंदिरों के विकास के इतिहास पर इस अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डांला गया है। जिसके अन्तर्गत बुन्देलखण्ड में शासन करने आये विभिन्न शासकों के कार्यकाल में मंदिर निर्माण पर क्या प्रभाव पडा। इस अध्याय में उन परिवर्तनों को भी बतलाया गया है।

अध्याय 4 में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के सभी जैन मंदिरों का इतिहास बताया गया है। बहुलता व कलात्मक दृष्टि से जैन धर्म–स्थल का महत्व अधिक है।

बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थलों में अनेक जैन मंदिर जो आज भी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में मौजूद है। (अ) देवगढ़ (ब) चांदपुर–जहाजपुर (स) दुधई (द) मदनपुर (य) बानपुर (र) पावागिरि (ल) सिरौन (व) सिरोनजी (सीरोन खुर्द) (श) गिरार (ष) ललितपुर व झाँसी खजुराहो इन स्थानों में प्राप्त जैन मंदिर धर्मिक और कलात्मक महत्ता के लिये प्रसिद्ध हैं। इनके अलावा और भी अज्ञात मन्दिर हैं जो कि शोधार्थियों के लिये पर्याप्त अध्ययन का विषय हैं ।

अध्याय 5 में मंदिरों के निर्माण से जुडी स्थापत्य संबंधी परम्पराओं का समावेश किया गया है। मंदिर स्थापत्य में विभिन्न शासकों के कार्यकाल के दौरान अनेक परिवर्तन आये। जैसे– गुप्तकाल, प्रतिहारकाल, चन्देलकाल।

जैन मंदिरों की मूर्तिकला को 5 मुख्य वर्गों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग में आराध्य मूर्तियाँ हैं जो लगभग चारों ओर उकेर कर बनायी गयी हैं। दूसरे वर्ग की मूर्तियाँ विघादेवियों, शासन देवताओं (यक्ष व यक्षियों) अन्य देवी देवताओं तथा आवरण देवताओं की है।

तीसरी श्रेणी में वे अपसरायें और सुर सुंदरियाँ आती हैं जिनकी सबसे सुंदर और सर्वाधिक मूर्तियाँ मंदिर के भीतरी भाग के अर्ध–स्तंभों के बीच के अंतरालों पर बनायी गयी है।

चौथी श्रेणी में वे लौकिक मूर्तियाँ आती है जो जीवन के विविध वर्ग से संबंधित हैं। इनमें घरेलू जीवन दृश्य नर्तकियाँ, संगीतकार तथा अत्यल्प मात्रा में कामक्रीडारत जोड़ो का समूह सम्मिलित हैं।

पाँचवी श्रेणी में पशुओं की आकृतियाँ आती हैं। इनमें व्याल, सम्मिलित है जो एक वैतालिक और पौराणिक पशु है। वह मुख्य रूप से सींगों वाला सिंह है।

बुन्देलखण्ड में अनेक जैन अभिलेख प्राप्त हुए है। जिनके बारे में इस अध्याय में बतलाया गया है।

अध्याय 6 के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थलों से प्राप्त जैन मूर्तियो का विश्लेषण किया गया है। जैन धर्म में मूर्ति पूजा के उल्लेख प्राचीनतम काल से पाये जाते हैं। पूजा पूज्य पुरूष की की जाती है। पूज्य पुरूष मौजूद न हो तो उसकी मूर्ति बना कर उसकी पूजा की जाती है। इसलिए इतिहासातीत काल से जैन मूर्तियाँ पायी जाती हैं। डा0 द्विजेन्द्रनाथ शुल्क के मतानुसार जैन प्रतिमाओं का आविर्भाव जैनों के तीर्थकरों से हुआ।

इस अध्याय में तीर्थकरों की प्रतिमाओं के अलावा जिनोपासक यक्ष. यक्षियों. श्रुत देवियां. योगिनियां. दिक्पाल. नवग्रहो तथा क्षेत्रपाल की प्रतिमाओं का भी विश्लेषण किया गया है एवं उनकी कलागत विशेषतायें का वर्णन किया गया है।

अध्याय 7 में बुन्देलखण्ड के जैन मंदिर क्षेत्रों में पर्यटन विकास की सम्भाव्यता को दर्शाया गया है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के जैन मंदिरों की स्थिति का अध्ययन करने से ज्ञात होता है। कि यहां के विभिन्न स्थानों (झाँसी, सोनागिरी, खजुराहो, देवगढ़, चांदपुर–जहाजपुर, दुधई, मदनपुर, बानपुर, पावागिरि, सिरोन, सेरोनजी, गिरनार, ललितपुर) में भिन्न–भिन्न समयों में अनेक जैन मंदिर निर्मित करवाये गये थे। जिनमें आज भी कुछ की हालत ठीक है लेकिन कुछ जीर्ण–जीर्ण अवस्था में मौजूद हैं। यहां के जैन मंदिर धार्मिक, ऐतिहासिक और कलात्मक महत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं। जैनियों के अतिरिक्त यहां हिन्दुओं के धार्मिक केन्द्र स्थल और प्राकृतिक रमणीक स्थल भी भ्रमणीय हैं।

अध्याय 8 में सम्पूर्ण सातों अध्यायों का समग्र सार है।

इस शोध प्रबन्ध के प्रारम्भ से लेकर परिसमाप्ति तक जिन विद्वानों एवं सुहृद जनों का मुझे सहयोग एवं आर्शीवाद मिला उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। सर्वप्रथम मैं प्रातः स्मरणीय गुरुमहाराज श्री भवानीशंकर जी का वंदन एवं अर्चन करता हूँ जिनकी महती ईश्वरीय अनुकम्पा से मेरा शोध कार्य निर्विघ्न पूरा हो सका। शोध प्रबन्ध के प्रारम्भ से परिसमाप्ति तक के प्रेरणाश्रोत मेरे पितामह स्व. श्री भगवती शरण दास रहे जिन्होंने जीवनपर्यन्त मुझे शोध हेतु प्रेरित किया। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उन्हीं की प्रेरणा और आशीर्वाद का प्रतिफल है।

स्नातकोत्तर अध्ययन के अन्तराल मुझे बुन्देलखण्ड के जैन मंदिरों पर शोध कार्य करने के लिये इतिहास विभाग के अध्यक्ष डॉ. शिव पूजन पाठक ने प्रेरित किया। यह कार्य उनके कुशल मागदर्शन के बिना असम्भव था। उन्होंने इस शोधकार्य में मुझे मार्गदर्शन करना स्वीकार कर लिया, यह शोध प्रबन्ध उन्हीं की कृपा का परिणाम है। मेरे गुरु, शोध निदेशक डॉ. पाठक अत्यन्त विद्वान, निराभिमानी, प्रतिभावान एवं स्नेहिल व्यक्तित्व से युक्त हैं। उनकी विचारोत्तेजक टिप्पणियाँ एवं स्नेहिल प्रोत्साहन के अविस्मरणीय योग से ही यह विशद कार्य सम्भव हो सका। मैं उनकी इस अहेतुकी कृपा के लिये आजीवन उनका ऋणी रहूँगा।

शोध कार्य में सामग्री एकत्र करने तथा उस सामग्री को संकलित कर शोध प्रबन्ध का रूप देने में मुझे पग–पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिनका समाधान मेरे पूज्य पिता श्री डॉ. मनुजी श्रीवास्तव हिन्दी विभागाध्यक्ष बुन्देलखण्ड कॉलेज, ने सदैव बड़ी निष्ठा एवं तत्परता से किया उनके इस ऋण से मैं उऋण नहीं हो सकता।

शोधसामग्री संकलित करने में मुझे राजकीय संग्रहालय झाँसी एवं क्षेत्रीय पुरातत्व विभाग, झाँसी से पर्याप्त सहायता मिली है। मैं क्षेत्रीय पुरातत्व अधिकारी श्री एस.के. दुबे का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर मेरे शोधकार्य में सहायता प्रदान की। पुरातत्व विभाग में कार्यरत मेरे चाचा श्री श्याम जी श्रीवास्तव एवं कार्यालय के सभी विभागीय कर्मचारियों का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने सामग्री एकत्र करने में मेरी बहुविध सहायता की।

शोधकार्य करने में परिवेश और परिस्थितियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। मैं ऋणी हूँ अपनी माता श्रीमती शशि श्रीवास्तव का एवं आभारी हूँ अपने अनुज श्री आशीष एवं पुनीत का जिन्होंने मुझे पारिवारिक परिवेश दिया एवं पग–पग पर मेरा उत्साहवर्धन किया और मेरी बहुविध सहायता की।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मुझे जिन पुस्तकालयों, विद्वानों, ग्रन्थकारों, इतिहासविदों एवं अपने इष्ट मित्रों की सहायता मिली उनके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस शोध प्रबन्ध को अतयन्त धैर्य एवं मनोयोग से टंकित करने के लिये मैं श्री महेश कुमार का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। इसके अतिरिक्त वे सभी लोग जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मेरे इस प्रयास में सहयोगी रहे हैं, उनका मैं आभारी हूँ।

शोधार्थी

(मनीष श्रीवास्तव)

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय – एक

बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति एवं ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति एवं ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

(अ) भौगोलिक स्थिति

भारत वर्ष के मध्य में स्थित भूभाग ही बुन्देलखण्ड नाम से जाना गया। बुन्देलखण्ड को मध्य भारत का वह भाग मानते हैं जिसकी पूर्वी सीमा बघेलखण्ड से मिलती है।[1] इसके उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पष्चिम में चंबल एवं पूर्व में स्थित टोंस नदी इस क्षेत्र की प्राकृतिक सीमाओं का निर्धारण करती है।[2]यह उत्तर अक्षांष 23–24 अंष और पूर्वी देषान्तर 77–58 अंष तथा के मध्य स्थित है। भौगोलिक रूप से कर्क रेखा बुन्देलखण्ड के दक्षिण में पड़ती है अतः यह समषीतोष्ण कटिबन्ध के गर्भ में पड़ता है।[3]

इसमें दक्षिण की ओर सागर एवं जबलपुर संभाग है और पूर्व में बघेलखण्ड तथा मिर्जापुर की पहाड़ियां बुन्देलखण्ड की सीमा का निर्धारण करती है।[4]गंगा–जमुना के दक्षिण में बेतवा नदी से लेकर मिर्जापुर तक का भूभाग भी बुन्देलखण्ड में शामिल था।

---

1. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका पृष्ठ–409
2. इर्विन विलियमः लेटर मुगल्स – भाग 2 1922 कलकत्ता
3. विन्ध्य भूमि (दिसम्बर 1946) पृष्ठ 9
4. एटकिन्सन ई.टी.: स्टैटिस्टिकल डिस्क्रप्टिव एंड हिस्टारिकल बकाउण्टस आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज आफ इंडिया, वाल्यूम–1 (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874, पृष्ठ–2

नर्मदा के निकटवर्ती सागर, चन्देरी तथा बिलहरी जिले भी इस क्षेत्र में शामिल थे।,बुन्देलखण्ड दस नदियों अर्थात दशार्ण क्षेत्र था। इस क्षेत्र में जालौन के ग्राम जगम्मनपुर के समीप चम्बल, पहूज, काली सिंध और क्वारी नदियों का संगम यमुना से होता है। इस स्थान को पचनंद भी कहा जाता है। इस क्षेत्र की शेष पांच नदियों में बेतवा (वेत्रवंती) मंदाकिनी, केन तमसा और धसान है। इस कारण इस क्षेत्र को 'दशार्ण' नाम से जाना गया है।

इस क्षेत्र की सीमाओं के अनुसार ग्वालियर राज्य के भिंड, ग्वालियर, गिर्द, नरवर, ईसागढ़ और भेलसा (बिदिशा) के जिले अथवा अनके भाग और इसी प्रकार भूपाल राज्य के उत्तरी और पूर्वी निजामतों के भाग तथा सागर, दमोह एवं जबलपुर जिले अथवा उनके भाग, रीवा का पश्चिमी क्षेत्र और संयुक्त प्रांत के काशी के निकट से मिर्जापुर, इलाहाबाद, बांदा, हमीरपुर, जालौन तथा झांसी जिले अथवा उसके भाग को बुन्देलखण्ड में शामिल किया गया। अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड में ग्यारह जिले एवं उनकी रियासतों को शामिल किया गया।

इस क्षेत्र में बांदा, झांसी, ललितपुर, जालौन एवं हमीरपुर के अलावा ओरछा, दतिया, समथर, अजयगढ़, अलीपुर, अष्टगढ़ी, ढुरवई, टोड़ी फतेहपुर, बिजना, बंका पहाड़ी, बरौधा, बाबनी, बिजावर, चरखारी, कालिंजर की चौबियाना जागीर, भेसौंधा, जसो, जिगनी, खनियाधाना, बुगासी, रिबही, पन्ना एवं सरीला आदि अनेक छोटी बड़ी रियासतें शामिल थी। अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड में उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के 11 जिलों को शामिल माना गया। इसका उल्लेख विभिन्न जिलों के गजेटियरों किया गया है। अपनी भौगोलिक स्थिति तथा पठारी स्वरूप के कारण यह क्षेत्र सामरिक दृष्टि हमेशा महत्वपूर्ण रहा।

नदियां

बुन्देलखण्ड पर्वतीय प्रदेश है अतः यहां नदी नालों की अधिकता है। पौराणिक काल से ही बुन्देलखण्ड को दस नदियों वाला प्रदेश अर्थात 'दशार्ण' माना गया है।[1] यहां की प्रमुख नदियों में यमुना, चम्बल, सिन्धु, बेतवा, धसान, केन, बाघेन, पैंसुनी, टोंस, महानदी और नर्मदा शामिल थी।[2] यह नदियां इस क्षेत्र को चारों ओर से घेरे रहती है। इन नदियों का प्रवाह तेज है। आमतौर क्षेत्र की सभी नदियां उत्तर पूर्वी दिशायें बहती है। इनमें से केवल केन नदी खेने योग्य है।[3]

यमुना :

यह इस क्षेत्र की प्रमुख नदी है। यमुना नदी बुन्देलखण्ड के जालौन, हमीरपुर और बांदा बहती है। इसमें चंबल, सिंध, बेतवा, धसान, बाधैन, केन और पैंसुनी आदि नदियां आकर मिलती है। यह जालौन की उत्तर पश्चिम सीमा में जगम्मनपुर में सितौरा गांव के निकट भिंड जिले से आती है। सितौरा के निकट सिंधु नदी इसमें मिलती है। बांदा के उत्तर--पूर्व सीमा से होती हुयी यमुना नदी गंगा में मिल जाती है। इसका प्राचीन नाम कालिंदी है।

चम्बल :

इस नदी इदौर में मऊ, झालवर और राजपूताने की कई रियासतों से होकर गुजरती है। यह नदी इटावा से 25 मील दक्षिण--पूर्व में यमुना में आकर गिरती है। इसका प्राचीन नाम 'चमर्णवती' था।

---

1. महाभारत : विराट पर्व 1–9
2. एटकिन्सन ई. टी. स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टोरिकल एकाउंटस आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज आफ इंडिया, वाल्यूम–1, पृष्ठ 55–56
3. इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया, भाग 2 पृष्ठ 266

सिन्धु :

यह नदी मालवा की टोंक रियासत में सिरौंज परगने के नेनवास गांव से निकली है। यह नदी टोंक, ग्वालियर एवं दतिया होती हुयी जालौन के जगम्मनपुर में यमुना में मिलती है।

बेतवा :

यह नदी भोपाल से निकली है। इसे भोपाल ताल से निकला हुआ माना जाता है। इसे बुन्देलखण्ड की गंगा कहा जाता है। यह नदी मालवां से होकर बुन्देलखण्ड में दक्षिण से उत्तर की ओर बहती हुयी यमुना में मिल जाती है। प्राचींन काल से इसे 'मालवा नदी' कहा जाता था।[1]

इस नदी के किनारे बिदिशा, देवगढ़ तथा चंदेरी आदि प्राचीन इेतिहासिक नगर बसे हुए है। भोपाल, सागर, ग्वालियर, ललितपुर, झांसी, ओरछा और जालौन होती हुयी यह नदी हमीरपुर से 6 मील दूर यमुना नदी में मिल जाती है।

धसान :

यह नदी भोपाल के सिरमऊ पहाड़ी से निकली है। यह भोपाल, सागर, ओरछा, बिजावर, बीहट, जिगनी और गरौली होती हुयी झांसी के ग्राम चंदवारी के पास बेतवा में मिल जाती है। इसका प्राचीन नाम 'दर्शाण' था।

---

1. दीवान प्रतिपाल सिंह : बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग) संवत 1984, पृष्ठ 26

केन :

यह नदी जबलपुर के पश्चिमी कैमूर पहाड़ों से निकलती है। यह नदी, पन्ना, छतरपुर, चरखारी तथा गौरीहार होती हुयी बांदा के निकट यमुना में मिल जाती है। इस नदी का प्राचीन नाम 'कर्णवती' था।

बागै :

यह नदी पन्ना के गौरारी गांव के निकट पहाड़ से निकलती है और बांदा के पास यमुना नदी में मिल जाती है।

पैसुनी (गंदाकिनी) :

यह नदी बांदा के पास पाथराछार से निकलती है। इसे मंदाकिनी नदी के नाम से जाना जाता है। सीतापुर और चित्रकूट इसी नदी के तट पर है। इसका प्राचीन नाम म्रदाकिनी है। इसे पयस्वनी नाम से भी जाना जाता है।

टौंस :

टौंस (तमसा) नदी मैहर रियासत में पहाड़ों से निकलती है। इसका उदगम स्थान तमसाकुंड माना जाता है अतः इसे तमसा नदी नाम से भी जानते हैं।

महानदी :

यह मंडला से निकलती है। जबलपुर और रीवा होती हुयी यह नदी सोन नदी में मिल जाती है।

नर्मदा नदी :

यह नदी जबलपुर के दक्षिणी भाग से निकली है। बघेलखण्ड के अमरकंटक पहाड़ से निकलकर यह नदी नरसिंहपुर की ओर चली जाती है। इसके उत्तर तट पर दमोह, सागर और भोपाल एवं दक्षिणी तट पर नरसिंहपुर एवं होंशगाबाद बसे हुए हैं। यह नदी भारतवर्ष के बीच में उत्तरी तथा दक्षिणी भारत की विभाजक है।

पहाड़

यह क्षेत्र पहाड़ों से घिरा हुआ है। बुन्देलखण्ड में मैदानी भाग में बहुत सी पर्वत श्रेणियां है। इन पर्वत श्रेणियों को विन्ध्याचल, पन्ना तथा भंडेर तीन भागों में विभक्त किया गया है,[1] इस क्षेत्र में कैमूर की पहाड़ियां भी प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में चार प्रकार की पर्वत श्रेणियां विद्यमान है।[2]

विन्ध्याचल पर्वत :

यह पर्वत दतिया राज्य के सेवढ़ा से प्रारंभ होकर दक्षिण–पश्चिम की ओर नरवर तक जाता है। इस स्थान से दक्षिण–पूर्व की ओर मुड़कर विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी कालिंजर, अजयगढ़, बरगढ़, विन्ध्यवासिनी (मिर्जापुर), सूरजमहल और राजमहल से होकर गंगा के किनारे पर जाकर समाप्त होता है।

पन्ना श्रेणी :

यह पर्वत दक्षिणी विन्ध्याचल से प्रारंभ होकर बांदा के कर्बी स्थान तक जाता है। यह लगभग दस मील चौड़ा बलुई चट्टानों से बना है।

---

1. फ्रैंकलिन, मेमायर आफ बुन्देलखण्ड एवं इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया भाग–2, पृष्ठ–264

2.विन्ध्य भूमि, दिसंबर 1946, पृष्ठ–9

भाण्डेर श्रेणी :

यह पर्वत पन्ना श्रेणी के दक्षिण--पश्चिम से प्रारंभ होता है। लुहार गांव के बेसिन के पास इसमें चूने की चट्टाने हैं। इसमें पठारी प्रदेश की बाहरी सीमा पर कहीं–कहीं सख्त चट्टान है।

कैमूर श्रेणी :

यह पर्वत श्रेणी विन्ध्याचल श्रेणी का ही एक भाग है। यह कर्वी से प्रारंभ होकर भांडेर के पहाड़ों के समानांतर जबलपुर और दमोह तक जाती है और यहां से पूर्व की ओर मुड़ जाती है।

इनके अलावा बहुत से छोटे–बड़े पहाड़ इस क्षेत्र में फैले हुए हैं जिन्हें 'टौरिया' या 'घाटियां' कहते हैं।[1] इनमें हमीरपुर की नौगढ़, महेश्वर, अजनर, और कुलपहाड़ श्रेणी, जबलपुर की बरियागढ़ श्रेणी, सागर की मालथैन, राहतगढ़, तथा लुधौरा बंडा श्रेणी और दमोह की सुनाड़ घाटी, भोंड़ला श्रेणी तथा मानगढ़ पर्वत प्रमुख है। झांसी में अमझरा की घाटी, मदनपुर घाटी और भसनेह पहाड़ तथा ग्वालियर की मायापुर घाटी प्रमुख पर्वत श्रेणियां हैं।

इसके अलावा छोटे–बड़े पहाड़ों में बांदा का वामेश्वर, चित्रकूट, कामतनाथ, बांदेर, नीलकंठ पर्वत हमीरपुर का मड़िया, काली झांसी का नारहट, कटेरा और लखनगिर, दमोह का कबुमार एवं हीरापुर, सागर की नाहर मऊ, जबलपुर की मदन महल, भिटारी व भैंसाकुंड, ओरछा की हरजुवा कारी, रोपा, भौंरा व मचरार, पन्ना की मदारदूंगा, भंडेर पहाड़ी एवं नैनगिरि, अजयगढ़ की बिला, चंदला, बजरंगगढ़ देवपहाड़ और मुड़जा, चरखारी का रंजीता पहाड़, बिजावर का लहर और चंदलाख और छतरपुर की किशनपुर, गुरैया, फाटा और बमरबेनी पर्वत श्रेणियां इस क्षेत्र में फैली हुयी है।

1– दीवान प्रतिपाल सिंह, बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग) संवत 1985, पृष्ठ 18

इस क्षेत्र में छोटी पर्वत श्रेणियां को 'घाटी' कहा जाता है। और दो पहाड़ों के बीच के रास्ते को 'खंदिया' कहते हैं।

भूमि

इस क्षेत्र के मैदानी भाग में विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती है। 'मार' भूमि काली होती है जो थोड़े पानी में ही गाली हो जाती है। यह बुन्देलखण्ड की सबसे अच्छी मिट्टी की श्रेणी में आती है।वर्षा में इसमें चलना कठिन होता है और सूखने पर यह भूमि कठोर हो जाती है। 'रोनीमार' भूमि दोयम दर्जे की होती है। यह हल्के काले रंग की होती है। 'काबर' भूमि काले रंग की होती है। 'पड़ुवा' भूमि पीली और काले रंग की होती है। 'राकड़' भूमि हल्की लाल होती है और इसमें पत्थर के छोटे–छोटे टुकड़े मिलते हैं। 'हड़काबर' भूमि को जोतते समय बड़े–बड़े ढेले बन जाते हैं।

दो पहाड़ों के बीच लाल रंग की 'दौन' भूमि होती है। यह राकड़ क्षेत्र की तरह नहीं झड़ती और कम पानी बरसने पर नहीं सूखती है। 'दो मटिया' भूमि मार भूमि और पड़ुवा भूमि का मिश्रित रूप है। यह भूमि मोटी होती है।

इसके अलावा 'कछार' भूमि इस क्षेत्र की उत्तम भूमि मानी जाती है। इस प्रकार की मिट्टी बुन्देलखण्ड के मैदानी भाग, तालाबों और नदियों के मुहानों पर पायी जाती है। उत्तर में यमुनासे लगे बांदा, जालौन और हमीरपुर में मार और काबर अधिकतर से पायी जाती है। दक्षिण की ओर बढ़ने पर पड़ुवा और राकड़ के भूभाग अधिक होते जाते हैं। इस क्षेत्र में कहीं–कहीं ऊसर भूमि भी मिलती है। इसमें चूना अधिकतर में मिला रहता है और यह खेती के लिये अयोग्य होती है।[1] इस प्रकार ऊपजाऊपन की दृष्टि से इस क्षेत्र की मिट्टी अच्छी नहीं मानी जा सकती थी।

---

1. दीवान प्रतिपाल सिंह (वही) पृष्ठ–18, 20

वन

बुन्देलखण्ड के मैदानी भाग में बहुतायत में जंगल पाये जाते है। यहां बबूल, छेवला, और झरबेरी आदि झाड़ीदार पौधे अधिकांश क्षेत्रों में उग जाते है। पथरीली और ऊंची नीचल भूमि पर वृक्ष लगे रहते हैं। यहां साल, सागौन, तेंअू, महुआ, बांस, चन्दन, इमली, आम चिरौजी, ताड़, खजूर, बबूल, बेर, सेमल, खैर, चंदन और जामुन आदि के वृक्ष प्रमुखता से पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में वनों की अधिकता होने के कारण वन में पाये जाने वाले खनिज पदार्थ यहां प्रचुर मात्रा में मिलते है। इनमें लाख, गौंद, मोम, शहद, सफेद मूसली, कत्था, महुआ, आंवला और हर्र बहेड़ा प्रमुख है।[1] इस क्षेत्र में कांस भी अधिकता में पायी जाती है। यहां के वनों में शेर, तेंदुआ, चीता, भालू, भेड़िया, बिगना, गीदढ़ लड़ैया, जंगली कुत्ता, खरगोश, सुअर, मोर और सिही आदि जानवर पाये जाते हैं। इसके अलावा हिरन, नीलगाय और चीतल भी इस क्षेत्र में पाये ज़ाते है।

इस क्षेत्र में तहदार चट्टाने विशेष रूप से पायी जाती है। इनकी सबसे पुरानी तह 'धारवाड़' में लोहा, तांबा, मैग्नीज, सीसा और सोना पाया जाता है। बुन्देलखण्ड में हीरा, कोयला, बिल्लौर, अभ्रक, तांबा एल्युमिनियम, चांदी और सीसा भी प्राप्त होता है। इनमें हीरा छतरपुर, पन्ना एवं अजयगढ़ क्षेत्रों में लोहा एवं सीसा टीकमगढ़ छतरपुर एवं बिजावर में चूना बिजावर पन्ना, जबलपुर एवं दतिया में चांदी टीकमगढ़, सूरजपुर, हटा एवं नारायणपुर में, अभ्रक टीकमगढ़ में गौरा पत्थर पन्ना में निसाव पत्थर ललितपुर, सागर एवं पन्ना में और नमक चिरगांव के पास औपारा में प्रमुख रूप से होता था। वर्षा ऋतु में पहाड़ियों की तलहटी में पेट्रोलियम जैसा चिकना द्रव पदार्थ दिखता था।

---

1. स्टेटिस्किल डिस्किप्शन एंड हिस्टोरिकल एकांट आफ द नार्थ वेस्ट प्रोविन्सेज आफ इंडिया भाग 1, (बुन्देलखण्ड) पृष्ठ–41, झांसी गजेटियर, पृष्ठ–5,9 जालौन गजेटियर पृष्ठ–1,5 हमीरपुर गजेटियर पृष्ठ–1,6 सागर गजेटियर पृष्ठ–1, 9 ओरछा गजेटियर पृष्ठ–1,4, पन्ना गजेटियर पृष्ठ–1,5, दनिया गजेटियर 1–2

इस प्रकार बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति एवं प्राकृतिक संसाधनों को इस क्षेत्र की आर्थिक उन्नति के संदर्भ में यदि समीक्षा की जाये तो स्पष्ट होगा कि यहां की ऊबड़ खाबड़ जमीन सिंचाई सुविधा के अभाव में वर्षा ऋतु पर निर्भर करती थी। यदि वर्षा औसत से कम होती थी तो खरीफ की उपज कम प्राप्त होती थी तथा साथ में रबी का उत्पादन भी प्रभावित होता था।

इसके अतिरिक्त भूमि की उर्वरता के अभाव में कृषकों को प्रायः अपनी भूमि को समय समय पर परती भी छोड़ना पड़ता था अन्यथा उपज प्रभावित होती थी। वनों से जंगली लकड़ी या इमारती लकड़ी प्राप्त होने के कारण निःसंदेह यहां के निवासियों को अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने का अवसर मिलता था। यहां जो खनिज पदार्थ उपलब्ध थे उनमें अधिकांश पहाड़ों से प्राप्त पत्थर कंक्रीट के रूप में उपयुक्त माने जाते थे। गोरा पत्थर या अन्य खनिज जो उपलब्ध रहे हैं अनका तत्कालिक शासकों द्वारा सुविधाओं के अभाव में आर्थिक रूप से दोहन नहीं किया जा सका।

इस क्षेत्र में बहने वाली प्रायः सभी नदियां वर्षा ऋतु में तेज धार में बहती रहीं जो भूमि का कटाव करने में सहायक होती थी। कुछ ही नदियां ऐसी थी जिन्हें नौका द्वारा यातायात के लिये उपयुक्त पाया जाता था।

पथरीले क्षेत्र से गुजरने के कारण इनकी तलहटी में पत्थर पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे जो नौकायन के लिये उपयुक्त नहीं थे। इस कारण इन नदियों का समुचित उपयोग सिंचाई आदि के लिये नहीं किया जा सका। अतः इन प्राकृतिक संसाधनों का इस क्षेत्र के आर्थिक जीवन के उन्नयन में तात्कालिक शासकों द्वारा पर्याप्त दोहन नहीं हुआ अतः आर्थिक पिछड़ापन बना रहा।

बुन्देलों के उत्कर्ष के समय 14 वीं शताब्दी में इस क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के नाम पहचाना गया। इसके पूर्व में इसे दशार्ण, चेदि चेचाकभुक्ति, विन्ध्येलखंड और मध्य प्रदेश आदि विभिन्न नामों से पुकारा गया।[1] बुन्देलखण्ड क्षेत्र में विन्ध्याचल पर्वत की मीलों लंबी पर्वत श्रृंखलायें फैली हुयी है। इस कारण प्रतीत होता है कि विन्ध्य पर्वत वाली भूमि (खंड) को विन्ध्येलखंड कहा गया जो आगे चलकर ऊपभ्रंश होते हुये बुन्देलखण्ड हो गया।

इसके अलावा बुन्देला राजाओं के शासन वाला क्षेत्र होने के कारण भी इस क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के नाम से उल्लेखित किया गया।[2] बुन्देले इस क्षेत्र में निवास करने वाली महत्वपूर्ण जाति थी। बुन्देला शासकों का संबंध राजा पंचम से माना गया जो काशी (बनारस) के गहरवार राजाओं के वंशज थे।[3] विन्ध्य क्षेत्र के शासक होने के कारण यहां के शासकों विन्ध्येला अथवा बुन्देला कहा गया।[4]

इसके पूर्व इस क्षेत्र को विभिन्न नामों से पुकारा गया। महाभारत काल में यह क्षेत्र 'चेदि प्रदेश' के नाम से उल्लेखित किया गया।[5] उस

---

1. राय चौधरी हेमचंद, पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एसिएन्ट इंडिया, पृष्ठ–68, 93–95, 128–131
2. इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया, भाग 9 (1908) पृष्ठ–68
3. एटकिन्सन ई.टी. स्टेटिस्टिकल डिस्टिकटिएव एंड हिस्टोरिकल अकाउंटस आफ नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज आफ इंडिया भाग–1 (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद, 1874, पृष्ठ–20
4. ओरछा स्टेट गजेटियर (नवल किशोर प्रेस लखनऊ 1907 ई.)
5 मिश्रा, के.सी., चंदेल और उनका राजस्व काल (वाराणसी, संवत 2011) पृष्ठ–4,5

समय चेदि देश का प्रसिद्ध व महान शासक शिशुपाल था, जिसकी राजधानी चंदेरी थी।[1] छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व तक यह क्षेत्र इसी नाम से जाना जाता रहा। पुराणों में इस क्षेत्र को दशार्ण के नाम से भी जाना गया। बेतवा, धसान, चंबल, सिंधु, केन, टौंस (तमसा) यमुना, नर्मदा, पहूज एवं पैसुनी (मंदाकिनी) नदी से सिंचित इस भूभाग को दर्शाण प्रदेश के नाम पुकारा गया।[2] इस क्षेत्र को जुझौति नाम से भी लाना गया। चन्देलों के शासनकाल में उनके अधिकृत क्षेत्र को जेजाक भुक्ति के नाम से जाना गया।[3] इस नाम का उल्लेख सातवीं शताब्दी में क्षेत्र के भ्रमण पर आये चीनी यात्री हवेनसांग ने किया है। यह नाम चंदेल नरेश जयशक्ति अथवा जेजा से जुड़ा हुआ माना गया।

हवेनसांग के चि–चि–टो राज्य को उज्जैन 167 मील दूर उत्तर पूर्व में स्थित बताया था। इसे जनरल कनिंधम ने जुझौति प्रदेश माना है।[4]

बुन्देलों का उदयः बुन्देला शासक काशी के गहरवार क्षत्रियों के वंशज थे। सबसे पहले बुन्देलों का राज्य महौनी, गढ़कुंडार और ओरछा से प्रारंभ हुआ जो धीरे–धीरे संपूर्ण क्षेत्र में फैल गया। संगत 731 से लेकर संवत 1105 तक इस वंश के बीस शासक हुये जिनमें कृर्तराज, महिराज, सूर्धराज, उदयराज, गरूड़सेन, समरसेन, आनंद सेन, करनसेन, कुभारसेन, मोहनसेन, रोजसेन, काशीराज, श्यामदेव, प्रहलाददेव, हम्मीरदेव, आसकरन, अभयकरन, सोहनपाल और करनाल ने बुन्देलखण्ड में शासन किया।

---

1. महाभारत वन पर्व 22.50, 14.3, महाभारत सभार्व 70.64, 39.52, 39.54, 68.15, 17 आदि भीष्म पर्व 75.10 कर्ण पर्व 3.32
2. मार्कण्डेय पुराण 57,51,55
3. पांडेय, अयोध्या प्रसाद, चंदेल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृष्ठ–5 रोनाल्ड फगमेन्डरा पृष्ठ–106
4. कनिंधम एलेक्जेन्डर, ए एसिएन्ट जियोग्राफी आफ इंडिया वाराणसी (1975) पृष्ठ–405

उसके बाद इस वंश में वीरभद्र, कर्णपाल, सोनकदेव, नानकदेव, अर्जुन और सोहनपाल आदि विभिन्न शासक हुये। सोहनपाल द्वारा गढ़कुंडार के किले पर कब्जा एक महत्वपूर्ण घटना थी। सोहनपाल के आठ वंशज गढ़कुंडार के आस–पास के भूभागों को अधिकृत कर वहां अपना शासन करते रहे परन्तु नवीं पीढ़ी के रूद्रप्रताप (1507–1531 ईसवी) के शासनकाल से बुन्देलों का उत्कर्ष शुरू हुआ।[2] उसके शासनकाल में ही 1530 में ओरछा राज्य की स्थापना हुयी। उसके बाद भारती चंद और फिर मधुकर शाह गद्‌दी पर बैठे।

मधुकरशाह के समय स्वतंत्र ओरछा राज्य बना। मुगल शासक अकबर के बुलाने पर जब वे उसके दरबार में नहीं गये तो अकबर ने अपनी सेना ओरछा पर चढ़ाई करने भेज दी। युद्ध में मधुकर शाह हार गये। उसके आठ पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ पुत्र रामशाह के द्वारा बादशाह से क्षमायाचना करने पर उसे ओरछा का शासक बना दिया गया।

---

1 तिवारी, गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास (काशी नगरी प्रचारिणी सभा द्वारा संवत् 1990 में प्रकाशित) पृष्ठ–114 फुट नोट

2. केशव कृत केशव कथावली खंड 2, पद 10–17, ओरछा गजेटियर (1907) पृष्ठ 6 एवं गुप्ता भगवानदास (1997) मुगलों के अंतर्गत बुन्देलखण्ड का सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास पृष्ठ–8

उसके राज्य का प्रबंध उसका अनुज इन्द्रजीत करता था। इन्द्रजीत के भाई वीरसिंह देव ने सदैव मुसलमान शासकों का विरोध किया। मुगल शासकों ने उसे कई बार दबाने की कोशिश की परन्तु वे असफल रहे। अबुल फजल को मारने में वीरसिंह देव ने शहजादा सलीम (जहांगीर) को पूरा सहयोग दिया इसलिये जहांगीर के शासक बनते ही वीरसिंह देव बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण शासक बना।[1]

वीरसिंह देव के उपरान्त बुन्देला साम्राज्य का बंटवारा हो गया। अनके ज्येष्ठ पुत्र जुझार सिंह को गद्दी दी गयी और शेष 11 भाईयों को जागीरें दे दी गयी। इनमें पहाड़ सिंह को एरच, नाहरदास को धामौनी, तुलसीदास को भिड़, बेनीदास को जैतपुर एवं कोंच, किशुन सिंह को देलवारा, बाघराज को गरौली और माधव सिंह को खरगापुर की जागीरें दी गयीं। परमानंद को कोई जागीर नहीं दी गयी और वे दीवान हरदौल के साथ ओरछा में ही रहे।[2]वीरसिंह के बाद बुन्देला शासकों में चंपतराय प्रसिद्ध हुये।

उसके सुजान सिंह (1653–1672 ईस्वी), इन्द्रमणि (1672–1675 ईस्वी) यशवंत सिंह (1675–1684 ईस्वी), भगवंत सिंह (1684–1689 ईस्वी), उद्दैव सिंह (1689–1736 ईस्वी), पृथ्वी सिंह (1736–1752 ईस्वी) और सावंत सिंह (1752–1765 ईस्वी) के अलावा हटेसिंह, विक्रमजीत, धरमपाल, तेज सिंह, हमीरपुर और प्रताप सिंह ने भी शासन किया। पन्ना नरेश छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने के लिये काफी संघर्ष किया। वह चंपतराज के पुत्र थे। मुगलों के आतंक से वे राजा जयसिंह की सेना में भर्ती हो गये। उन्होंने जयसिंह की ओर से पुरंदर, बीजापुर और देवगढ़ में युद्ध किया। इसके बाद वे शिवाजी की शरण में पहुंचे और उनके परामर्श से बुन्देलखण्ड में मुगल विरोधी संघर्ष की शुरूआत छत्रसाल ने की।

---

1 तिवारी, गोरेलाल (वही) पृष्ठ 130–140

2 भारतीय, बुन्देले और उनका राजत्वकाल (विन्ध्यभूमि) 1956 पृष्ठ–52

छत्रसाल ने धामौनी, मैहर और बांसी पर अधिकार कर लिया। मुगल शासक औरंगजेब को छकाते हुये उन्होंने ग्वालियर और कालिंजर पर भी अधिकार कर लिया। 1707 ई. में औरंगजेब के मरने के बाद बहादुरशाह गद्दी पर बैठा तो उसने छत्रसाल का साथ दिया। छत्रसाल की वृद्धावस्था में इलाहाबाद के सूबेदार मोहम्मद खां बंगरा ने अस्सी हजार की सेना और दलेल खां, पीर खां एवं अहमद खां जैसे सेना नायकों के साथ बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई कर दी। इस विकराल स्थिति से निपटने के लिये छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा से मदद मांगी। बाजीराव को हिन्दू धर्म संरक्षक माना गया।[2]

उन्होंने एक पद बाजीराव पेशवा को दोहे के रूप में लिखा "जो गति भई गजेन्द्र की, सो गति पहुंची आज बाजी जात बुन्देल की राखा बाजी लाज"।[3] इसमें उन्होंने मुम्मद बंगस के विरूद्ध सहायता की मांग की। बाजीराव पेशवा ने एक लाख की विशाल सेना के साथ बंगस से युद्ध किया और छत्रसाल की मदद की। बाजीराव पेशवा की मदद से खुश होकर छत्रसाल ने अपना राज्य जीन हिस्सों में बांट दिया। उसने अपने दरबार की सुंदर नर्तकी बस्तानी बाई भी बाजीराव पेशवा को भेंट की।

पहले भाग में हृदयशाह को पन्ना, मऊ, गढ़ाकोटा, कालिंजर, शाहगढ़ और उसके आसपास के इलाके मिले। इनसे 38 लाख रूपया रास्व वसूल होता था।

दूसरे भाग में उसके पुत्र जगतराज को जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, सरीला, भूरागढ़ और बांदा दिये इसकी आय 31 लाख रूपये मानी गयी।

---

1 छत्रप्रकाश, पृष्ठ 78'80 औरंगजेब भाग–5, पृष्ठ 393, ठत्रसाल पृष्ठ 22–23

2. पन्निकर के. एम. : ए सर्वे आफ इंडिया हिस्ट्री संवर्त 1966 पृष्ठ–193

3. सरदेसाई, जी.आर. मराठों का नवीन इतिहास, द्वितीय खंड 1980 पृष्ठ 92–96

बाजीराव पेशवा को मिले तीसरे हिस्से में उसे कालपी, एटा, हृदयनगर, जालौन, गुरसरांय, झांसी, गुना, गढ़ाकोटा और सागर के अलावा छोटी–छोटी जागीरें मिलीं।[1] इन जागीरों से 31 लाख रूपया राजस्व प्राप्त होता था। पेशवा ने 1747 ईस्वी में बुन्देलखण्ड के राजाओं के साथ एक नयी सन्धि की जिससे उसके अधिकार क्षेत्र में इतनी वृद्धि हो गयी कि कर वसूली में लगभग 17 लाख रूपये की वृद्धि हो गयी। इसके अलावा पन्ना की हीरे की खानों में भी बराबर की हिस्सेदारी रखी गयी।[2]

पेशवा बाजीराव और महाराजा के दोनों पुत्रों के बीच पारस्परिक सहयोग की संधि भी स्थापित हुयी। इसके अनुसार तय किया गया कि (1) दोनों भाई जगतराज और हृदयशाह चंबल एवं यमुना के उस पार के प्रांत को छोड़कर सभी स्थानों पर युद्ध के लिये बाजीराव के साथ जायेंगे और जो माल लूट में मिलेगा उसे बराबर बांटेंगे। (2) यदि बाजीराव दक्षिण के किसी युद्ध में जायेंगे तो दानों बुन्देला राजाओं को संपूर्ण बुन्देलखण्ड की दो माह तक रक्षा करनी होगी। (3) छत्रसाल ने

---

1. हमीरपुर गजेटियर पृष्ठ–147
2. एटकिन्सन ई. टी. (वही) पृष्ठ–30

बाजीराव को पुत्र के समान माना इसलिये बाजीराव हृदयशाह और जगतराज को भाई के समान मानेंगे।[1]

छत्रसाल की मृत्यु के बाद कुछ समय तो मराठों और बुन्देलाओं के बीच संबंध मधुर रहे परन्तु बाद में इनके बीच दरार आती गयी जो परस्पर संघर्ष में बदल गयी। छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह की मृत्यु 1749 में हुयी। उसके 9 पुत्र थे। दनमें सबसे रूपसिंह को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया। इससे असंतुष्ट पृथ्वीराज ने बाजीराव पेशवा से सहायता ली।[2] बाजीराव के हस्तक्षेप के बाद रूपसिंह ने पृथ्वीराज को शाहगढ़ और गढ़ाकोटा की जागीरें दी।

इसके उपरान्त पृथ्वीराज ने बाजीराव को चौथ देना प्रारंभ किया। रूप सिंह के बाद उसके पुत्रों में भी सत्ता के लिये संघर्ष हुआ। बुन्देला राजाओं में चलनें वाले गृहयुद्ध ने उन्हें कभी सफल नहीं होने दिया। वहीं जगतराज के वंश में भी गृह युद्ध ने उन्हें कभी सफल नहीं होने दिया। वहीं जगतराज के वंश में भी गृहयुद्ध हुआ। उनके बाद पहाड़संह, खुमान सिंह एवं गुमानसिंह अल्पकाल के लिये शासक बने। बाजीराव पेशवा के पश्चात नाना साहब (बालाजी बाजीराव पेशवा) को बुन्देलखण्ड से चौथ मिलना प्रारंभ हुयी। जगतराज ने मराठों को महोबा, हमीरपुर और कालपी परगने दिये। बाजीराव पेशवा ने इस क्षेत्र की बागडोर अपने सूबेदार गोविन्द पंत खरे को दी जो सागर में रहते हुये इन क्षेत्रों का प्रबंध करने लगे। झांसी का प्रबंधन रघुनाथ हरी नेवालकर को सौंपा गया। इसी बीच हिम्मत बहादुर गोसाई ने अली बहादुर के साथ मिलकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया तथा छोटे–छोटे राजाओं को अपने अधीन कर सनदें प्रदान की।

---

1. सरदेसाई, जी.आर. मराठों का नवीन इतिहास, द्वितीय खंड 1980 पृष्ठ 95–97

अली बहादुर पेशवा वंश का था और उसे बाजीराव एवं पन्ना दरबार की नर्तकी मस्तानी की संतान माना जाता है। इनकी संयुक्त सेना ने बुन्देलखण्ड के बांदा, अजयगढ़, चरखारी, बरोधा, मौदहा, छिबून, पन्ना, रीवा एवं जैतपुर आदि स्थानों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

बुन्देलखण्ड में ॲंग्रेजी शासन

भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आये अंग्रेजों ने यहां की राजनीति में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। बुन्देलखण्ड में मराठा–बुन्देला संघर्ष का फायदा उठाकर अंग्रेजों ने 10 वीं सदी की शुरूआत में ही इस क्षेत्र में अपने पैर पसारने शुरू किये। 1801 ईस्वी में सिंधियां तथा होल्कर के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में सिन्धिया तथा पेशवा की संयुक्त सेनाओं की पूना में 25 अक्टूबर 1802 ईस्वी को पराजय हुयी। पराजय के बाद 31 दिसंबर 1802 ईस्वी में बेसिन की संधि पर हस्ताक्षर किये गये। इसके अनुसार पेशवा ने 26 लाख रूपये की जागीर के मूल्य पर एक ब्रिटिश सेना रखना स्वीकार किया। इसके बाद 16 दिसंबर 1803 ई. को हुयी नयी संधि के अनुसार सेना पर होने वाले खर्च को बढ़ाकर6 लाख रूपये से अधिक कर दिया।[1] 1803 ई. में हुयी बेसिन की संधि के अनुसार बुन्देलखण्ड का वह क्षेत्र, जो मराठों के अधीन था, उस पर अंग्रेतों का आधिपत्य स्थापित हो गया।[2] इसके उपरान्त 1804 ईस्वी के अंत में बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों की शासन प्रणाली के प्रभावशाली बनाने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की गयी जिसमें मि. ब्रुक को अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

गर्वनर जनरल के एजेन्ट कैप्टन बैली एवं ब्रिटिश सेना के आफीसर कमान्डिंग को इस कमीशन का सदस्य नियुक्त किया गया। इसमें ब्रूडी को जज तथा जे. डी. इकास्किन को कलेक्टर के पद पर नियुक्त किया गया।ब्रिटिश शासन की ओर से कैप्टन बैली ने 18 सितंबर 1803 को बांदा, 13 सितंबर 1803 को अगासी, 6 फरवरी 1804 ई. को पारसेटा एवं कोटी राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला दिये। ये क्षेत्र केन नदी के पूर्वी तट पर स्थित थे।

---

1. इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया (सेन्ट्रल इंडिया) पृष्ठ 367
2 एचीन्सन सी.यू. टीटीज, इंगेजमेन्ट एंड सनद पृष्ठ–187

केन नदी के पश्चिमी तट पर स्थित क्षेत्रों में कालपी को 8 दिसंबर 1803 में, कोट्टा तथा सैयद नगर को 16 सितंबर 1803 में कोंच 28 दिसंबर 1803, राठ को 26 दिसंबर 1803 में जबाबपुर को 29 जनवरी 1804 में, खरका को 16 जनवरी 1804 में, परवाड़ी को 7 फरवरी 1804 में तथा सूपा को 18 मार्च 1804 में ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया।[1]

इसके उपरान्त आगे चलकर बुन्देलखण्ड में स्थानीय राज्यों तथा रियासतों को मिलाकर बुन्देलखण्ड एजेन्सी का गठन किया गया। क्षेत्र में शांति व्यवस्था स्थापित होने के बाद 1811 ईस्वी में बुन्देलखण्ड में गर्वनर जनरल के एजेन्ट की नियुक्ति की गयी और मुख्यालय बांदा बनाया गया। बाद में 1818 ईस्वी में मुख्यालय बांदा से हटाकर कालपी, 1824 ई. में हमीरपुर और पुनः 1832 ईस्वी में ब्रादा को गर्वनर जनरल के एजेन्ट का मुख्यालय बना दिया गया।

1835 ई में इस क्षेत्र का शासन उत्तर पश्चिमी प्रांत के लेफिटनेन्ट गर्वनर को सौंपा गया जिसका मुख्यालय आगरा बनाया गया। 1849 ई. में बुन्देलखण्ड का प्रशासन सागर संभाग के कमिश्नर को हस्तातरित कर दिया गया। बाद में इसका मुख्यालय नौगांव बना दिया गया।

1957 ई. में मध्य भारत एजेन्सी का गठन हुआ और इस क्षेत्र का प्रशासन मध्य भारत के गर्वनर जनरल के एजेन्ट को सौंप दिया गया। इसके उपरान्त 1862 से 1871 ईस्वी तक बघेलखंड एवं बुन्देलखण्ड एजेन्सी का कार्य संयुक्त रूप से किया जाता रहा।

1–. एचीन्सन सी.यू. टीटीज, इंगेजमेन्ट एंड सनद पृष्ठ–212

अध्याय–दो

अध्याय–दो

बुन्देलखण्ड की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

अध्याय–2

बुन्देलखण्ड की सामाजिक व आर्थिक स्थिति

समाज में जनसाधारण की स्थिति :—

मध्यकालीन बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत समाज बुन्देलों और मराठाओं के अधीन रहा अतः सामाजिक व्यवस्था में थोड़े–बहुत बदलाव आते रहे। इस भूभाग में सामंती प्रथा विद्यमान थी। हिन्दुओं के चार वर्ण ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सामाजिक व्यवस्था का अंग थे। जिसमें ब्राहमणों की अधिक मान्यता होते हुये भी इस क्षेत्र में बुन्देले क्षत्रियों के शासक होने के कारण इस वर्ग की प्रधानता थी। ब्राहमण वर्ग क्षत्रियों की सत्ता को दैवीय राजत्व के विद्धान्त का प्रतिपादन कर बल प्रदान करते थे। यह वर्ग उस समय समाज के जीवन मूल्यों, नैतिक आचरणों और विभिन्न कर्तव्यों का निर्धारण कर धार्मिक कर्मकांडों से अपना जीवन यापन करता था। धार्मिक और वैवाहिक रीति–रिवाजों जैसे सामाजिक अनुष्ठानों और परम्परागत शिक्षा प्रणाली से जुड़े होने के कारण समाज पर उनका असाधारण प्रभाव होता था।

प्राचीन काल में जुझौति प्रदेश के नाम से विख्यात इस क्षेत्र में जिझौतिया ब्राहमणों का वर्चस्व था।[1]इसके अलावा इस क्षेत्र में सारस्वत, गौर, सनाड्य, कान्यकुब्ज, मैथिल, उत्कल, खेड़ावाल एवं सरयूपारि उपजाजियां भी विद्यमान थी। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में इस क्षेत्र में ब्राहमणों की संख्या 1,36,000 मानी गयी जों सर्वाधिक थी। संख्या की दृष्टि से झाँसी एवं बांदा में ब्राहमणों का बाहुल्य था। जालौन में इनकी संख्या दूसरे स्थान पर थी। प्रारम्भ में ब्राहमणों का कार्य मंदिरों में पूजा–पाठ करना और शासकों का मंत्री होना था परन्तु बाद में जब इन्हें जागीरें और सनदें मिली तो ये कृषि एवं नौकरी आदि में भी प्रवृत्त हुये। यहां के ब्राह्मणों में प्रमुख रूप से मिश्र, दुबे, तिवारी और चौबे उपजातियां थी।[1] दक्षिण के मराठा ब्राहमण भी इस क्षेत्र में निवास करते थे। ब्राहमणों के बाद इस क्षेत्र में क्षत्रियों का बाहुल्य था। बुन्देलखण्ड के क्षत्रियों में अधिकांशतः परमार, बिसेन, बुन्देला, बनाफर, चन्देल, भदौरिया, कछवाहा, तोमर, चौहान व हैहयवंशी प्रमुख थे। इन्हीं के साथ दांगी, लोधी और कुर्मी भी अपने को

ठाकुर कहते थे।[2]यहाँ के क्षत्रियों ने अपने बाहुबल और युद्ध कौशल से तमाम जागीरें प्राप्त कीं। जालौन में कछवाहा और सेंगर राजपूतों का वर्चस्व था, वही हमीरपुर में बैस, गौतम, परिहार और सूर्यवंशी राजपूत क्ष?ियों की संख्या ज्यादा थी। क्षत्रियों ने अपनी जाति का ध्रवीकरण कर 3 वर्ग संगठित कर लिये थे जो 3,13 एवं 36 के घटक के नाम से विख्यात रहे। इसमें प्रमुख शक्तिशाली घटक 3 वाला था। जिनमें बुन्देला, पवार और घंघेरें सम्मिलित थे। यह त्रिगुट समाज और सत्ता, दोनों में प्रभावी था।

वैश्य वर्ग बुन्देली समाज की आर्थिक रीढ़ था। यह वर्ग खेती–बाड़ी करने वाली जातियों को हल–बैल एवं बीज के लिये धन देता था। इस क्षेत्र में समाज खत्री, माहौर, मारवाड़ी और वैश्य आदि वर्ग प्रमुख रूप से विद्यमान थे। इनमें गहोई और जैनों की बहुलता थी। समकालीन साहित्य में वैश्यों को प्रवृत्ति से वाणिक, स्वभाव से कंजूस और सूदखोर बताया गया।

शूद्रों के ऊपरी वर्ग में वे जातियां आती थी जिनका संसर्ग तीन उच्च वर्गों में वर्जित नहीं होता था। यह वर्ग अपने व्यवसाय या सेवा कार्य के कारण इन वर्गों के निकट रहता था। इसमें सोने का काम करने वाले 'सुनार' लोहे का काम करने वाले 'लुहार' लकड़ी का कार्य करने वाले 'बढ़ई', चमड़ें का कार्य करने वाले 'चमार' आदि प्रमुख थे।[1]इसके अलावा माली, शिल्पी, पटवा, ढीमर, कुम्हार, कोरी, धोबी, काछी, कुर्मी, गूजर, अहीर और रावत भी इस वर्ग में शामिल थे। इस समय ठठेरे, पासी, धोबी, बसोर, बहेलिया, कसाई, डोम, चमार और चांडाल आदि 'अत्यंत' जातियों में समझे जाते थे।मध्यकाल के अंतर्गत झाँसी में संख्या की दृष्टि से ब्राहमणों के बाद चमार जाति के लोग निवास करते थे। इसके अलावा काछी, कोरी, अहीर, गड़रिया, कुर्मी, बुन्देला, लोधी और खंगारों की संख्या भी खासी थी। बांदा में कुर्मी, काछी, लोधी, अहीर कोरी, तेली और चमारों की संख्या अच्छी–खासी थी। हमीरपुर में लोधी, तेली, अहीर, कोरी, कहार, केवट, खंगार, कुम्हार और बसोर जाति के लोग भी खासी संख्या में निवास करते थे। जालौन में कुम्हार जाति का 107 गांव और गूजर जाति का 105 गांव पर वर्चस्व था। इसके अलावा कोरी, काछी और लोधी जाति के लोग भी इस क्षेत्र में निवास करते थे।

समाज में मुस्लिम एवं ईसाई जाति के परिवार भी रहते थे परन्तु वे गांवो या बस्तियों के एक ओर पृथक रहा करते थे क्योंकि बहुसंख्यक हिन्दू समाज उन्हें धर्म विरोधी समझते हुए अस्पृश्य मानकर घृणा की दृष्टि से देखा करता था। इस काल में महाराष्ट्रियन लोग भी बुन्देलखंडी समाज से विलग व परदेशी बने रहें।[1]

इस काल में बुन्देलखंड में नारी की दशा सोचनीय थी। स्त्रियां सभी तरह से अपने स्वामी के अधीन रहती थी। इस समाज में बाल विवाह, बहु विवाह एवं अनमेल विवाह प्रचलित थे। विधवा को समाज में उपेक्षित जीवन व्यतीत करना पड़ता था। समाज के मध्यम एवं निम्न वर्गों में पुरूष या स्त्री परित्याग की व्यवस्था का भी चलन था। समाज के तीनों उच्च वर्गों में घूंघट निकालने की प्रथा थी। इस क्षेत्र में नारियों के बीच सती प्रथा का भी प्रचलन रहा।

कृषि की दशा व उत्पादकता

मध्य काल से ही बुन्देलखंड आर्थिक रूप से पिछड़ा और शोषित रहा। इस क्षेत्र में मध्यम एवं निम्न वर्ग के लोग भूमि के स्वामित्व से वंचित थे और वे जागीरदारों या बड़े–बड़े भूमि स्वामियों की भूमि पर कार्य करते थे। यहाँ के लोग का मूल व्यवसाय कृषि रहा परन्तु भूमि की संरचना एवं मिट्टी जटिल होने के कारण अधिक श्रम करने पर भी यहां के लोग लाभ नहीं उठा पायें। पहाड़ी एवं पठारी भूमि होने के कारण इस क्षेत्र में सिंचाई की कमी रही और कुओं का निर्माण संभव न हो सका। इस काल में सामंती व्यवस्था विद्यमान थी। खेती–बाड़ी करने वाले लागों (रैयत) से वसूल की गयी मालगुजारी ही राज्य की आय का प्रमुख साधन था। कृषि योग्य भूमि की पैमाइश बीघा, बिस्वा अथवा बिस्वांसी में होती थी।

---

1. अबुल फजलः आईने अकबरीः भाग–2 (अं. अनु. जैरेट) 1978 पृष्ठ–192, 195
2. दीवान प्रतिपाल सिंह (वही) पृष्ठ–78

बुन्देलखंड में कुछ वर्षों के अंतराल में पड़ने वाले अकालों के कारण क्षेत्र आर्थिक समृद्धि प्राप्त नहीं कर पाया। यहाँ पड़ने वाले प्रमुख अकालों में 1783 ईस्वी एवं 1793 ईस्वी में पड़ा अकाल भयानक था। अकाल के कारण अनाज के अभाव में यहाँ के लोग मजबूरीवश भूसा, पत्ती, बेर, मकोरा, महुआ, तेन्दू अथवा अचार खाकर अपने जीवन की रक्षा करते थे।[1] इसके अलावा इस क्षेत्र में 1809ई., 1713ई., 1818ई., 1819ई., 1829ई., 1833ई., 1837ई., 1846ई., 1868ई., 1877ई., 1892ई., 1895ई., 1900ई. तथा 1805 ई. में पड़े अकाल ने भी इस रूप की आर्थिक स्थिति पर चोट की। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण यहाँ के गरीब किसान और जरूरत मंद लोग बनियों और महाजनों से कर्ज लिया करते थे। इसके लिये उन्हें 50 पैसे से लेकर दो रूपये प्रति सैकड़े तक माहवारी ब्याज देना पड़ता था। कज। के लिये महाजन कृषक की भूमि या मवेशी जमानत के तौर पर रख लेता\था। बीज भी कर्ज के रूप में उधार दिया जाता था।[1] इस कर्ज को फसल आने पर वसूल किया जाता था।

बुन्देलखण्ड में सिंचाई के अभाव में कृषि की दशा अच्छी नहीं थी। यहाँ की खेती प्रायः वर्षा ऋतु पर निर्भर रहती थी। बुन्देलखंड में मुख्य रूप से दो फसले खरीफ यानी 'स्यारी' और रबी अर्थात 'उन्हारी' का प्रचलन था। इस क्षेत्र की मिट्टी में उर्वरता का अभाव था इसलिये कृषकों को अपनी भूमि कुछ वर्षों के अंतराल में परती छोड़नी पड़ती थी। खरीफ अर्थात 'स्यारी' के अंतर्गत ज्वार, मूंग, उर्द और कोदो की फसल बोयी जाती थी। रबी अर्थात 'उन्हारी' के अंतर्गत गेंहू व चना की बुबाई प्रमुख रूप से की जाती थी। उत्तरी बुन्देलखंड में यमुना से लगा कौंच–कनार और कालपी क्षेत्र अपनी उपजाऊ भूमि के लिये प्रसिद्ध था। कालपी में बढ़िया गुड़ और बूरा तैयार किया जाता था।[2] इसके साथ–साथ हमीरपुर एवं बांदा में ज्वार, बाजरा, मक्का, गन्ना, कपास, गेहूं, धनिया, जीरा, अजवाइन, हल्दी एवं अफीम की खेती भी प्रचलित थी। पन्ना एवं दतिया में अफीम के साथ–साथ भांग व गांजा का भी उत्पादन किया जाता था।

---

1. सिन्हा, एस.एनः सूबा आफ इलाहाबाद अंडर द ग्रेट मुगल्सः दिल्ली 1974 एपंडिक्स ई–21 तथा बुन्देलखंड गजेटियर : पृष्ठ–247, 316 एवं हमीरपुर गजेटियर पृष्ठ–88, 196
2. ड्रेक ब्रोकमैनः बांदा गजेटियर (1909, इलाहाबाद) पृष्ठ–49

इस क्षेत्र में 'कोदो' गरीबों का अनाज माना जाता था। यह पडुवा एवं राकड़ भूमि पर होता था। इसे स्थानीय बोली में 'कुदई' के नाम से जानते थे। इस क्षेत्र की 90 प्रतिशत से अधिक जनता 'कोदो' के आटे की बनी रोटियां खाकर ही अपना जीवन–यापन करती थी।[1] इसके अलावा रोली, कुटकी, बाजरा, समा, कोकुन, धान, बट्टा, मकई, मूँग, मोंठ, उर्द, बाजरा, धनिया, बटरा एवं गेहूँ का भी इस क्षेत्र उमें उत्पादन होता था। यहाँ तेल देने वाले बीज से सरसों, अलसी व अरंडी का भी उत्पादन होता था। कहीं–कहीं गन्ना की भी खेती की जाती थी।

यहाँ महोंबा और ललितपुर के पाली और बिलौआ में पान की खेती का प्रचलन था। महोबा के पानों का बुन्देलखंड के बाहर बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता था।[2]यहाँ से गन्ना के रस से तैयार किये गये\ गुड़ और बूरे के साथ–साथ कपास, सूत से बने कपड़े और नीद आदि को बुन्देलखंड से बाहर भेजा जाता था। इस क्षेत्र में कपास के साथ में नील, आल और कुसुम से रंगों का उत्पादन की काफी मात्रा में होता था। यहाँ की कच्ची कपास (बिनौले) को बाजार की सर्वोत्तम कपास के रूप में माना जाता था।कपास और रंगों के उत्पादन के लिये सैकड़ों हिन्दू–मुस्लिम जुलाहों के अलावा रंगरेज, दर्जी और उनके परिवार के लोग लगे रहते थे। खैरूआ कपड़े की रंगाई के लिये खैर (कत्था) का प्रयोग किया जाता था और आल के पेड़ की जड़ों से लाल रंग तैयार किया जाता था।

---

1. अबुल फजलः आईने अकबरीः भाग–2 (अं. अनु. जैरेट) 1978 पृष्ठं–192, 195
2. दीवान प्रतिपाल सिंह (वही) पृष्ठ–78

नील और कुसुम से कपड़ों के रंग बनते थे।[1]जालौन का सैय्यद नगर एवं कोटरा 'चुनरी' एवं 'रंगाई' के लिये प्रसिद्ध था। इसी प्रकार मऊरानीपुर कपड़ों के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ के 'गजी' एवं 'खैरूआ' कपड़े के थान और धोतियों के अलावा चंदेरी मलमल की जरीदार साड़ियों के लिये सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रसिद्ध था।[1]

इसके अलावा वनों से जलाऊ एवं इमारती लकड़ी प्राप्त होती थी। बुन्देलखंड के ओरछा, चंदेरी, दतिया और पन्ना राज्यों की अधिक से अधिक भूमि बनों से आच्छादित थी। इन वनों से यहां के निवासियों को बांस, शहद, मोम, महुआ, बेर, आम, जामुन और सीताफल जैसे उपज प्राप्त होती थी। इन वनों में पशुओं और जंगली जानवरों की अधिकता से जानवरों को मारने, खाल उतारने और उन्हें सुखाकर तैयर करने में कसाइयों, बहेलियों, शिकारियों और चमड़े का काम करने वाले चमारों की जिविका चलती थी।[2]केवट और धीवर जाति के लोग सिंघाड़े, कमलगट्टा और कसेरू का व्यावार करते थे। सिंघाड़े बुन्देलखण्ड के बाहर भी भेजे जाते थे।

इस क्षेत्र की भूमि में उगने वाली 'कांस' बुन्देलखंड के आर्थिक पछिड़ापन के लिये जिम्मेदार रही। यह एक लंबी जड़ों वाली घास होती थी तथा एक बार खेत में उग आने पर इसे खत्म करना लगभग असंभव होता था। सामान्यतः कांस 12 से 15 वर्षों तक लगातार खेत में बनी रहने के बाद ही समाप्त होती थी। इससे बुन्देलखंड के कई गांव बुरी तरह से प्रभावित हुये। अच्छी तरह से हल न चलाई भूमि में कांस बड़ी तेजी से ऊगती थी। इस क्षेत्र के बांदा, जालौन, झाँसी और हमीरपुर में कांस उगने से हजारों एकड़ भूमि की उत्पादकता बुरी तरह से प्रभावित हुयी।

---

1. रूसैल, आर.बी: सागर गजेटियर (इलाहाबाद 1906) पृष्ठ–148
2. ड्रैक ब्रोकमैन, डी. एलः बांदा गजेटियर (वही) पृष्ठ–20

इस क्षेत्र के कृषक शोषण और आर्थिक विपन्नता का शिकार थे। राज्यों में जागीरदार, मैमारदार, मराठों के मालगुजार एवं जमींदार ही भूमि स्वामी होते थे। ग्रामों में मंदिरों तथा मठों को जागीर लगी रहती थी जो 'पादारखी' कहलाती थी। यहाँ की अधिकांश भूमि 'अनुपजाऊ' एवं 'रांकड़' थी परन्तु इस पर कृष्कों को भारी कर अदा करना होता था।

मराठी ठिकानों झाँसी, सागर सहित अन्य स्थानों पर "देखा–परखी" और "कूत यर "कनकूत" प्रणाली से लगान वसूल किया जाता था। कृषि योग्य भूमि की पैदाइश निश्चित लम्बाई की रस्सी से होती थी। कृषकों से 'मालगुजारी' या भूमिकर प्राप्त करने के लिए परगने तहसीलों में और तहसील हवेली (मुख्यालय) में विभाजित रहती थी तहसील का विभाजन ठप्पों (गांवों) में किया जाता था।

इस क्षेत्र में निकलने वाले माल पर चुंगी के अलावा नदियों की उतराई पर "तट कर" लगाया जाता था। इसके अलावा पान, भांग, गांजा, महुआ और शराब पर भी निश्चित कर लगाया जाता था।

उद्योग--धंधे तथा व्यापार

प्राचीनकाल से ही बुन्देलखंड में कृषि आधारित उद्योगों के अलावा अन्य कुटीर उद्योगों का प्रचलन था। गांवों में रहने वाले किसान और खेतिहर मजदूर चटाई बुनना, सूत कातना, मूँज भांजना, रस्सी बटना और खपड़े बनाने का काम किया करते थे। अधिकांश गांवों में कपड़ा गजी बनता था। इसे बुनने वाले जुलाहे कोरी जाति के होते थे। इस काल में खरूआ वस्त्र उद्योग बुन्देलखंड का महत्वपूर्ण कुटीर उद्योग था। यहाँ अल नामक पौधे से लाल–भूरे रंग का निर्माण किया जाता था। जिसे खरूआ वस्त्र की रंगाई के लिये उपयोग में लाया जाता था।[1] इसकी खेती जालौन तथा झाँसी में प्रमुख रूप से की जाती थी।

जालौन के कोंच, कालपी, सैययद नगर कोटरा में कपड़ा रंगाई उद्योग मुख्य था। खरूआ वस्त्र का उत्पादन मऊरानीपुर में किया जाता था। मऊरानीपुर पहले एक छोटा सा गांव था जहां लोगों का पेशा खेती था। झाँसी के सूवेदार रघुनाथ राव के समय छतरपुर के व्यावारी, जो वहाँ के राजा की बड़ती हुयी मांगों को पूरा कर सकने में असमर्थ थे वहां से भागकर मऊरानीपुर आ गये, जिन्हें रघुनाथ राव द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया। इसके फलस्वरूप इन व्यापारियों ने इस क्षेत्र में अपने औद्योगिक प्रतिष्ठान खोलने प्रारंभ कर दिये।[2] मऊरानीपुर के इस कपड़ा उद्योग ने देश के अन्य भागों में

---

1. अमुल फजलः आईने अकबरी, भाग–2, पृष्ठ–170 तथा बुन्देलखंड गजेटियर पृष्ठ–97
2. पाठक एस.पी.: झाँसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रूल (नई दिल्ली 1987) पृष्ठ–60

भी ख्याति अर्जित की। यहां के व्यापारी अमरावती, मिर्जापुर, नागपुर, इन्दौर, फरूखाबाद, हाथरस, कालपी, कानपुर तथा दिल्ली में कपड़ों का निर्यात करते थे।[1] खरूआ वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त यह क्षेत्र हाथ से बनाये गये कपड़े तथा उस पर कलात्मक छपाई के लिये प्रसिद्ध था। यहाँ गर्म कालीन भी बनाये जाते थे।[2]बांदा के विभिन्न हिस्सों में खाना पकाने के बर्तन तथा सोने व चांदी के गहनों का निर्माण कार्य होता था। छतरपुर, खरगापुर, दमोह और श्रीनगर में तांबा पीतल और कांसे के बर्तन, मूर्तियां तथा खिलौने बनाये जाते थे। अनेक स्थानों पर मोटे कम्बल तथा टाट बुनने का कार्य किया जाता था। बांदा के कुछ गांवों कल्यानपुर, रावली तथा गौंड में विभिन्न प्रकार के पत्थरों को काटकर उन्हें पालिश करने के साथ–साथ अलंकृत किया जाता था।

इस क्षेत्र में सोने– चांदी तथा कांसे के आभूषणों का प्रचलन था। मौदहा में सुनारों द्वारा बनायी गयी चांदी की सुंदर और लचीली मछलियों का निर्यात बाहर किया जाता था।[3]कर्वी, चंदेरी, चरखारी तथा दतिया में रेशम और जरी का काम होता था। रीवा में गौरा पत्थर के बर्तन बनाये जाते थे। इसके अलावा एरच एवं सैय्यद नगर की चुनरी, दतिया एवं टीकमगढ़ की अमौआ और मऊ का खरूआ कपड़ों को नेपाल तथा लाहौर तक निर्यात किया जाता था।

बुन्देलखंड में ललितपुर, बिजावर एवं पैलानी लोहे के काम के लिये प्रसिद्ध था। पन्ना में बन्दूकें, तलवार और हथियार बनाने के साथ–साथ तोपें ढोलने वाले कारीगर रहते थे। तालबेहट और सागर के सरौते और मालदौन की ताबें की तुरही व रमतूला प्रसिद्ध था। छतरपुर, दमोह तथा जबलपुर मिट्टी के बर्तनों के लिये प्रसिद्ध था। कालपी छतरपुर, सागर एवं दमोह में देशी कागज बनता था। बांदा, केन नदी से निकलने वाले रंग–विरंगे पत्थरों की जड़ाई के लिये प्रसिद्ध था।इस क्षेत्र में कोंच एवं कालपी प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे।

---

1 एटकिंसन ई.टी. (वही) पृष्ठ–544
2. जोशी ई.बी: यू.पी. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर झाँसी (1965) पृष्ठ–144
3. ड्रेक ब्रोकमैन (वही) बांदा गजेटियर पृष्ठ–75

समथर, दतिया और ग्वालियर में नमक, शक्कर, गुड़ एवं घी का व्यापार था। बुन्देलखंड से रूई और आलू नावों द्वारा मिर्जापुर एवं पटना तक निर्यात किया जाता था। घी और चना की बिक्री दोआब तक होती थी। बुन्देलखंड में कई स्थानों पर लौह अयस्क प्राप्त होता था। दतिया में नमक और शोरे की खाने थीं। शोरे का उपयोग बारूद बनाने में किया जाता था।

पन्ना एवं कालिंजर में हीरे की खाने थी। इन हीरों की खुदाई पुराने तरीके से की जाती थी। पन्ना के राजा किशोर सिंह (1789–1834ई.) के शासनकाल में हीरों की इन खानों से पन्ना राज्य को सात लाख रूपये वार्षिक आय होती थी।[1] पन्ना और उसके आस–पास के काफी लोग इन हीरों का व्यापार करते थे।

बुन्देलखंड में ग्रेनाइट और विभिन्न तरह के इमारती फर्श तथा छाने के पत्थर, चूने के कंकड़ और मोरम की खदानें सभी जगह पायी जाती थी। पालर, पनवाड़ी और गौरारी कस्बें में गौरा पत्थर की खदानें थी।

उत्तर भारत में कालपी सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। बुन्देलखंड मेंकोंच, मऊरानीपुर और छतरपुर भी बड़े व्यापारिक केन्द्र था। इसके अलावा झाँसी में एरच, चिरगांव, मोंठ एवं गुरसरांय बांदा में अतर्रा, बसोदा, कर्बी आ।र मानिकपुर, अमोह में निबोरा, नौघटा, हटा हिडीदिया, गैसावाद एवं मगरौन, सागर में शाहपुर, राहतगढ़, खुरई मालदौन, देवरी, गढ़कोटा, चांदपुर, महाराजपुर एवं बंडा, पन्ना में रैपुरा, मलहरा, पवई, महाराजगंज, शाहनगर और जनवरी प्रमुख बाजार थे।

इस क्षेत्र में गुसांई और पुरी साधु–संयासी बंजारों की तरह चलता–फिरता व्यवसाय करते थे। समकालीन विदेशी यात्री टिफिन थैलर अपने यात्रा विवरण में छतरपुर नगर के बाहर बसे ऐसे संयासी और बैरागी व्यापारियों का उल्लेख करता है।[2]

---

1. टिफिन थेलर जोसेफः दि मिड गंगाटिक रीजन इन द एटीन्थ सेन्चुरी (संपादका, एस. एन. सिन्हा) पृष्ठ–64
2. प्रम्सन, डब्लू. आरः ए हिस्ट्री आफ बुन्देलाज (कलकत्ता 1828) पृष्ठ–169, 170

बुन्देलखंड में अंतर उनपदीय और दूर–दराज क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में धातु मुद्रा ले आने और ले जाने की असुविधा एवं मार्ग के खतरों, लूट एवं डाकेजनी आदि से बचने के लिये व्यापारियों द्वारा 'हुडियों' का प्रयोग किया जाता था। इसमें 'दर्शनी हुंडी' का भुगतान तुरंत करना होता था और 'मियादी हुंडी' में निश्चित मियाद पूरी होते ही उसका भुगतान करना होता था। इन दोनों स्थितियों में दलाली या कमीशन लिया जाता था। जो आपसी सहमति अथवा पूर्व स्थापित परंपरा के अनुसार तय होना था। इस प्रकार 1740ई. से 1805ई. के बीच बुन्देलखंड की उपर्युक्त सामाजिक–आर्थिक विवेचना से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में रियासतों में राजाओं–महाराजाओं का निरंकुश शासन था। ये राजा महाराजा अपने दरबारियों और सलाहकारों से घिरे रहते थे। उनकी आय का मुख्य स्रोत 'रैयत' से वसूल किये जाने वाला राजस्व कर था अतः राजाओं–महाराजाओं के ऐश्वर्य प्रिय जीवन के निर्वाह के लिये 'रैयत' पर करों का कठोर दबाब था। निःसंदेह बुन्देलखंड की कम ऊपजाऊ जमीन पर किसानों को निर्भर रहना पड़ता था। सिंचाई सुविधाओं के अभाव के कारण भी उसे कृषि से अपूक्षाकृत लाभ नहीं हो पाता था। आये दिन पड़ने वाले अकाल तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं ने किसानों की स्थिति को और भी दूभर बना दिया था अतः जनमानस की सामान्य दशा अच्छी नहीं थी।

इसके साथ ही बुन्देलखंड के सामंत और जागीरदारों के किसानों से संबंध भी सौहार्दपूर्ण नहीं थे क्योंकि लगान वसूल करते समय रियासतों के राजस्व अधिकारी कठोर तरीके अपनाते थे। इन रियासतों में कहीं भी जनता की शिक्षा का उचित प्रबंध नहीं था। जन कल्याण की भावना की राजाओं–महाराजाओं से अपेक्षा नहीं की जाती थी। इसके बावलूद भी लोग उन राजाओं महाराजाओं को दैवीय स्वरूप मानते हुये उनके प्रति भक्ति भाव रखते थे। प्रजा की यह सामान्य धारणा थी कि ईश्वर ने उन्हें इसी प्रकार का गरीबी पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये बनाया है।

बुन्देलखंड में उपरोक्त अवधि में मराठाओं, बुन्देलाओं तथा गोसांइयों के बीच आये–दिन संघर्ष होते रहते थे। इस कारण रियासतों का अधिकांश धन युद्धों में खर्च हो जाता करता था। शंति एवं सुरक्षा के लिये अधिकांश संख्या में सैनिकों को रखना

पड़ता था। उनके वेतन तथा अस्त्र–शस्त्र पर भी काफी खर्च पड़ता था जिसके लिये गरीब जनता को अपनी गाढ़ी कमाई करों के रूप में देनी पड़ती थी। रांकड़ बाहुल्य क्षेत्र होने के कारण बुन्देलखंड में उत्पादन का अनुपात दोआब के जिलों की तुलना में अपेक्षाकृत कम था। इस क्षेत्र के उद्योग–धंधे भी अविकसित अवस्था में थे इन परिस्थितियों में राजशाही के जमाने में बुन्देलखंड के लोगों की सामाजिक व आर्थिक दशा अत्यंत ही निराशाजनक थी।

अध्याय-तीन

जैन मन्दिरों के विकास
व
बुन्देलखण्ड

अध्याय–3

जैन मंदिरों के विकास का इतिहास और बुन्देलखण्ड

जैन धर्म – साधारणतया यह समझा जाता है कि जैन धर्म के प्रवर्तक वर्द्धमान महावीर थे। लेकिन जैन अनुश्रुतियों के अनुसार उनके धर्म का प्रारंभ छठी सदी ई0पू0 के लगभग हुए सामाजिक–धार्मिक सुधार आन्दोलन के काल में वर्द्धमान महावीर द्वारा नही हुआ। वे अपने धर्म को सृष्टि के समान ही अनादि मानते हैं। उनके अनुसार वर्द्धमान महावीर 24वें और अन्तिम तीर्थकर थे जिनके पहले 23 तीर्थकर हुये जो निम्न है।

(1) ऋषभनाथ या आदिनाथ (2) अजितनाथ (3) संभवनाथ (4) अभिनन्दनाथ (5) सुमतिनाथ (6) पदमप्रभ (7) सुपार्श्वनाथ (8) चन्द्रप्रभ (9) सुविधिनाथ पुष्पदन्त (10) शीतलनाथ (11) श्रेयांसनाथ (12) वासुपूज्य (13) विमलनाथ (14) अनन्तनाथ (15) धर्मनाथ (16) शान्तिनाथ (17) कुन्थुनाथ (18) अरनाथ (19) मल्लिनाथ (20) मुनिसुव्रत (21) नमिनाथ (22) अरिष्टनेमि या नेमिनाथ (23) पार्श्वनाथ (24) वर्धमान महावीर

नाम	वर्ण	चिन्हलाँझन	अनुचर	यक्ष	यक्षणी	जन्म	निर्वाण
ऋषभनाथ	स्वर्णिम	वृषभ	गोमुख	विनीतनगर	चक्रेश्वरी	कैलाश	अष्टापद
अजितनाथ	स्वर्णिम	गज	महायक्ष(दि)	रोहिणी		अयोध्या	सम्मेदशिखर
संभवनाथ	स्वर्णिम	अश्व	त्रिमुख(दि)	प्रज्ञप्ति	दुरितारि	श्रावस्ती	सम्मेदशिखर
अभिनन्दन नाथ	स्वर्णिम	वानर		यक्षेश्वर	वजश्रंखला	अयोध्या	सम्मेदशिखर
सुमतिनाथ	स्वर्णिम	चक्रवाक	तुम्बरू(दि)	पुरूषदत्ता	महाकाली	अयोध्या	सम्मेदशिखर
पद्मप्रभ	रक्तिम	कमल पुष्प		मनोवेगाया	श्यामाअच्युता	कौशाम्बी	सम्मेदशिखर
सुपार्श्वनाथ	स्वर्णिम	स्वस्तिक		वरनन्दिन	काली	वाराणसी	सम्मेदशिखर
चन्द्रप्रभ	धवल	अर्धचन्द्र	विजय	विजय	ज्वालामालिनी	चन्द्रपुरी	सम्मेदशिखर
सुविधिनाथ	धवल	मकर	अजित(दि)		महाकाली	काकन्दीनगर	सम्मेदशिखर
शीतलनाथ	स्वर्णिम (दि)	कल्पवृक्ष (श्वे)		ब्रह्मेश्वर (दि)	मानवी	भदपुर	सम्मेदशिखर
श्रेयांसनाथ	स्वर्णिम (दि)	गेडांदि ईश्वर		यक्षेश(श्वे)	गैरी	सिंहपुर	सम्मेदशिखर
वासुपूज्य	रक्तिम	भैंसा		कुमार	गान्धरी	चम्पापुरी	चम्पापुरी
विमलनाथ	स्वर्णिम	सूकर		षडमुख	वैरोटी(दि)	काम्पिल्यपुर	सम्मेदशिखर
अनन्तनाथ	स्वर्णिम	सेही	पाताल		अनन्तमती	अयोध्या	सम्मेदशिखर
धर्मनाथ	स्वर्णिम	वज्र	किन्नर		मानसी(दि)	रत्नपुरी	सम्मेदशिखर
शान्तिनाथ	स्वर्णिम	हरिण		गरूड(दि)	महामानसी	हस्तिनापुर	सम्मेदशिखर
कुन्थु नाथ	स्वर्णिम	बकरा	गन्धर्व		विजया	हस्तिनापुर	सम्मेदशिखर
अरनाथ	पीत	तगरपुष्प					सम्मेदशिखर
मल्लिनाथ (दि)	नीला	कलश		कुबेर	अपराजिता	मिथिला	सम्मेदशिखर
मुनिसुव्रत	श्याम	कच्छप		वरूण(दि)	बहुरूपिणी	राजग्रह	सम्मेदशिखर
नमिनाथ	स्वर्णिम	नीलकमल		भृकुटि	चामुण्डी(दि)	मिथिला	सम्मेदशिखर
अरिष्टनेमि	श्याम	शंख		सर्वाल्ह	कूष्माण्डिनी	वौरियपुर	गिरिनगर
पार्श्वनाथ	श्याम	सर्प		धरणेन्द्र	पद्मावती	वाराणसी	गिरिनगर
महावीर	स्वर्णिम	सिंह		मातंग	सिद्धायिका	कुण्डग्राम	पावापुरी

प्रथम तीर्थकर ऋषभनाथ के संबंध में डा हीरालालन जैन ने वैदिक संदर्भ में कहा हैं कि वे अन्मादित मन स्थिति में रहते और मौंन अभ्यास करते थे उस वक्त उनका शरीर धूलि–धूसरित होने से ऐसा लगता था कि मानो उनका रंग ही पीला (पिशंग) है।[1]

यह लक्षण वातरशन या केशी मुनियों के प्रतीत होते हैं । जो कि साधुओं का एक वर्ग कहा जाता हें जिनमें ऋषभनाथ के बारे में कहा जाता हें कि बचपन में वे एक बार पिता की गोद में बैठे थे तभी हाथ में इक्षु (गन्ना) लिये वहॉ इन्द्र आया। गन्ने को देखते ही ऋषभदेव ने उसे लेने के लिये अपना हाथ फैला दिया। बालक को इक्षु के प्रति अभिरूचि देखकर इन्द्र ने उस बालक का नाम इक्ष्वाकु रख दिया ।[2]

---

(1) – देश पाण्डे मधुसूदन नरहर ;पृष्ठाभूमि और परम्परा जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड 1 ; भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली ; पृष्ठ सं – 19
(2) – तदैव ; पृष्ठ सं – 20

1–ऋषभनाथ या आदिनाथ :– जैन परम्परा में ऋषभनाथ को वर्तमान अवसर्पिणी युग का प्रथम जिन बतलाया गया है। इसी कारण उन्हें आदिनाथ भी कहा गया । महाराज नाभि उनके पिता और मरूदेवी उनकी माता थीं। सुनन्दा और सुमंगला से ऋषभनाथ का विवाह हुआ तथा विवाह के पश्चात उनका राज्याभिषेक हुआ। ऋषभ का लांछन वृषभ है और इनके यक्ष–यक्षी कमशः गोमुख और चक्रेश्वरी (अप्रितचक्रा) है।

ऋषभनाथ की मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि 8वीं शताब्दी में उनके साथ वृषभ लांछन और 9वीं शताब्दी में पारम्परिक यक्ष यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।

देवगढ और खजुराहो में ऋषभनाथ की सर्वाधिक मूर्तियाँ उकेरी गयीं।

2–अजितनाथ :– दूसरे जिन या तीर्थकर के रूप में अजितनाथ का नाम आता है जिनके पिता का नाम जितशत्रु तथा माता का नाम विजया देवी था।

12 वर्षों की कठोर तपस्या के बाद अजितनाथ को अयोध्या में कैवल्य की प्राप्ति हुयी थी। इनका लांछन गज और यक्ष यक्षी कमशः महायक्ष एवं अजितबला (अजिता या विजया) है । दिगम्बर परम्परा में उनकी यक्षिणी का नाम रोहिणी है केवल दिगम्बर स्थलों की अजितनाथ की मूर्तियौं ही यक्ष यक्षी का निरूपण हुआ है।

अजितनाथ की प्रारम्भिक मूर्ति वाराणसी से मिली हैं जो सम्प्रति राजकीय संग्रहालय लखनऊ में संग्रहीत है। कायोत्सर्ग मुद्रा में अवस्थित अजितनाथ निर्वस्त्र हैं और मूर्तिपीठिका पर उनका लांछन गज उत्कीर्ण हैं।

3–संभवनाथः– संभवनाथ तीसरे जैन तीर्थकर या जिन के रूप में जाने जाते हैं। इनके पिता श्रावस्ती के शासक जितारी तथा माता सेना देवी थी दीक्षा के बाद श्रावस्ती में उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। संभवनाथ का लांछन अश्व हैं और इनके यक्ष–यक्षी कमशः त्रिमुख एवं दुरितारि (प्रज्ञप्ति) है।

मूर्तियों में इनके पारम्परिक यक्ष–यक्षी का अंकन नही मिलता है। लगभग 10वीं शताब्दी में इनकी मूर्तियों में अश्व लांछन और सामान्य लक्षणों वाले यक्ष–यक्षी

का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। संभवनाथ की प्राचीनतम मूर्ति कुषाणकाल में मथुरा में बनी।

4–अभिनंदननाथः– अभिनंदन जिन के पिता अध्योध्या के महाराज संवर थे जबकि इनकी माता का नाम सिघार्थ था।

कठोर तपस्या के फलीभूत इन्हे अयोध्या में शाल वृक्ष के नीचे इन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ। अभिनन्दन का लांछन कपि है। और यक्ष–यक्षी क्रमशः यक्षेश्वर (ईश्वर) एवं पारम्परिक यर्क्ष–यक्षी का चित्रण नहीं मिलता हें । इनकी स्वतंत्र मूर्तियॉ केवल देवगढ़ खजुराहो तथा नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं से-मिली हैं।

5–सुमतिनाथः– अयोध्या के शासक मेघ या मेघ प्रघ 5वें जिन सुमतिनाथ के पिता थे जबकि इनकी माता का नाम मंगला था।

20 वर्षे की कठिन तपस्या के बाद इन्हें कैवल्य की प्रप्ति हुयी थी। 10वी शदी से पूर्व की सुमतिनाथ की कोई मूर्ति नहीं मिली है। इनका लाछन क्रौंच पक्षी तथा यक्ष–यक्षी क्रमशः तुम्बुरू, महाकाली (पुरूषदत्ता) है। मूर्तियों में सुमतिनाथ के साथ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष–यक्षी ही निरूपित है।

6–पदम प्रभ :– छठे जिन पदमप्रभ कौशाम्बी में शासक घर या घरण तथा देवी सुशीला के पुत्र थे। इन्हें कोशाम्बी के वन में कैवल्य प्राप्त हुआ था।इनका लाछन पदम हें और यक्ष तथा यक्षी क्रमशः कुसुम व अच्युता (मनोवेगा) है 10वीं शदी में पूर्व की पद्रमप्रभ की एक मूर्ति नहीं मिली हैं। मूर्तियों में पदमप्रभ के साथ पारम्परिक लक्षणों वाले यक्ष और यक्षी भी नही निरूपित हुये हैं । पदमप्रभ की मूर्तियॉ केवल खजुराहो, छतरपूर, देवगढ, ग्वालियर ,कुंभारिया तथा बारभुजी गुफाओं से मिली है।

7–सुपार्श्वनाथ :– सुपार्श्वनाथ के पिता वाराणसी में शासक प्रतिष्ठ तथा माता पृथ्वी देवी थी। वाराणसी के वन में वृक्ष के नीचे सुपार्श्व को कैवल्य की प्राप्ति हुयी थी। इनका लाछन स्वास्तिक है। अधिकांश उदाहरणों में तीर्थकर के सिर पर पॉच सर्पफिणों का छत्र दिखलाया गया हें। इनके यक्ष मातंग तथा यक्षी शान्ता (काली) हैं। तीर्थकर के साथ यक्ष–यक्षी का अंकन 11वीं शती में प्रारम्भ हुआ।

सुपार्श्वनाथ की सर्वाधिक मूर्तियाँ ललितपुर से मिली हैं । जिनमें पाँच सर्पफणों के दल से शोभित सुपार्श्वनाथ को सामान्यतः कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखलाया गया है।

8–चन्द्रप्रभ नाथ :– चन्द्रपुरी के शासक महासेन 8वे जिन चन्द्रप्रभ के पिता और लक्ष्मणा (लक्ष्मी देवी) माता थी। दीक्षा के पष्चात कठिन तपस्या द्वारा चन्द्रपुरी के वन में चन्द्रप्रभ का लाछन शशि (चंद्रमा) है। जबकि यक्ष–यक्षी क्रमशः विजय (श्याम), भृकुटि (ज्वाला) है। मूर्तियों में तीर्थकर के पारम्परिक यक्ष–यक्षी का निरूपण नही हुआ है। चन्द्रप्रभ की प्राचीनतम मूर्ति 4 शताब्दी की है।

सर्वाधिक मूर्तियाँ उ0प्र0, म0प्र0 के कौशाम्बी तथा देवगढ क्षेत्र से प्राप्त हुयी है। इनमें पीठिका पर चंद्र लाछंन तथा यक्ष–यक्षी की आकृतियाँ बनी है।

9–सुविधिनाथ :– नौवें तीर्थकर या जिन सुविधिनाथ के पिता सुग्रीव और माता वामादेवी थी। दीक्षा के पश्चात् काकन्दी वन में इन्हे केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। सुविधि का लाछंन मकर हैं और यक्ष–यक्षी क्रमशः अजित (जय), सुतारा (महाकाली) है।

सुविधिनाथ की प्राचीनतम मूर्ति चौथी शताब्दी की है। विदिशा से प्राप्त इस मूर्ति में तीर्थकर घ्यान–मुद्रा में है। मूर्तियों में तीर्थकर के साथ यक्ष–यक्षी का रूपायन नही हुआ है।

10–शीतल नाथ :– दसवें तीर्थकर शीतलनाथ के पिता महाराज अश्रथ और नन्दादेवी इनकी माता थी इनका लाछन श्रीवत्स और यक्ष–यक्षी क्रमशः वृहम (वृहमा) और अशोका (मानवी) है। शीतलनाथ की 10वीं शदी से पहले की कोई मूर्ति नहीं मिली है। 10वीं शदी में इनकी मूर्तियाँ बारभुजी गुफा, त्रिपुरी (जबलपुर) और कुंभारिया से प्राप्त हुयी है।

मूर्तियों में यक्ष–यक्षी की आकृतियाँ नही दिखायी गयीं हैं। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में चतुर्भुजा यक्षी की आकृति उकेरी गयी हें जिसके हाथों में वरद–मुद्रा, दण्ड चक्र और शंख है।

11—श्रेयांशनाथ :— श्रेयांशनाथ के पिता का नाम विष्णु तथा माता का नाम विष्णुदेवी था। इनका लाछन गेडा (खडगी) हैं और यक्ष—यक्षी क्रमशः ईश्वर (यक्षराज) मानवी (गौरी) हैं।

11 वीं शताब्दी से पहले की श्रेयांशनाथ की कोइ मूर्ति नहीं मिली है। इनकी मूर्तियॉ पकबीरा (पुरूलिया) बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं तथा कुंभरिया से मिली है। मूर्तियॉ मे यक्ष—यक्षी का निरूपण नही हुआ हें । एक स्वतंत्र. मूर्ति मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर) पर भी मिली है। गेंडा लांछन वाली श्रेंयाश की मूर्ति इन्दौर के केंन्द्रीय संग्रहालय में संरक्षित हें जिसमें लेख में श्रेयांशनाथ का नाम भी उत्कीर्ण है।

12—वासूपूज्यनाथ :— महाराजा वासुपूज्य 12वें जिन वासूपूज्य के पिता थे। जबकि इनकी माता का नाम जया (विजया) था इनका लांछन महिष है। और यक्ष—यक्षी कुमार और चण्डा (गान्धरी) है। 10वीं शदी में ही इनके साथ लाछन और यक्ष—यक्षी का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।

इनकी मूर्तियाँ मुख्य रूप से कुंभरिया, विमलवसही, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं तथा शहडोल से मिली है।

13—विमलनाथ :— 13वें तीर्थकर विमलनाथ के पिता कृतवर्मा थे तथा इनकी माता का नाम श्यामा था इनका लांछन वराह हें और यक्ष—यक्षी क्रमशः षष्मुख (चर्तुभुख) विदिता (वैरोटया) है।

9वीं शताब्दी में विमलनाथ के लाछन और 11 वी शताब्दी में इनके यक्ष—यक्षी का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ किन्तु मूर्तियों में तीर्थंकर के पारम्परिक यक्ष—यक्षी का निरूपण नही मिलता है। बटेश्वर से प्राप्त 1009 ई की मूर्ति में कायोत्सर्ग मुद्रा में खडे तीर्थकर के साथ लाछन और सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष—यक्षी उत्कीर्ण है।

14—अनन्तनाथ :— इनके पिता का नाम सिंहसेन तथा माता का नाम सुयशी था। श्वेताम्बर परम्परा में तीर्थकर का लांछन श्येन पक्षी और दिगम्बर परम्परा में रीछ बताया गया है।

इनके यक्ष पाताल एवं यक्षी अंकुशा (अनन्तमती) है। 11वीं शदी ई से पहले की तीर्थकर की मूर्ति नही मिली हें दो मूर्तियॉ क्रमशः बारभुजी गुफा और

विमलवसही में है। विमलवसही की मूर्ति में पारम्परिक यक्ष–यक्षी के सीान पर सर्वानुभुति और अम्बिका आकारित है।

15–धर्मनाथ :– महाराज भानु धर्मनाथ के पिता तथा सुव्रता इनकी माता थीं। इनका लांछन वज्र और यक्ष–यक्षी क्रमशः किन्नर, कन्दर्प (मानसी) है।

11वीं शदी से पूर्व की इनकी एक भी मूर्ति नहीं मिली हैं। इनकी मूर्तियाँ मुख्यरूप से बारभुजी, त्रिशूल गुफाओं इन्दौर संग्रहालय और विमलक्सही में हैं । विमलवसही की मूर्ति में यक्ष–यक्षी के रूप में सर्वानुभुति एवं अम्बिका की आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं ।

16–शान्तिनाथ :– शान्तिनाथ 16वें तीर्थकर थे। हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन इनके पिता थे तथा इनकी माता का नाम अचिरा था।

काफी लम्बे समय तक चक्रवर्ती शासक के रूप में शासन करने के पश्चात इन्होंने दीक्षा ली और एक वर्ष की कठिन तपस्या के बाद कैवल्य प्राप्त किया शान्तिनाथ का लांछन मृग है और इनके यक्ष–यक्षी क्रमशः गरूड निर्वाणी (महामानसी) है।

लगभग सातवी शदी ई से पहले की इनकी मूर्ति नही मिली है आठवी शताब्दी में इनके साथ लाछन तथा यक्ष–यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हुआ। मूर्तियों में इनके यक्ष–यक्षी पारम्परिक विशेषताओं वाले नहीं है।

भारत में खजुराहों देवगढ चाँदपुर सीरोनखुर्द टीकमगढ अहाड तथा अन्य कुछ दिगत्बर स्थानों पर 10वीं से 12वीं शदी ई के मध्य की गर्भगृह में प्रतिष्ठित शान्तिनाथ की महाप्रयाण प्रतिमाएँ (12–14 फीट) ऊचीं उल्लेखनीय है। इनमें शान्तिनाथ निवस्त्र और कायोत्सर्ग मुद्रा में खडे हैं ।

17–कुंथुनाथ :– 17वें तीर्थकर कुंथुनाथ के पिता वसु या सुर्यसेन और माता श्री देवी थी। इनका लांछन छाग (बकरा) है। यक्ष–यक्षी के रूप में क्रमशः गन्धर्व बला (जया) का उल्लेख है।

11वीं शदी ई के पहले की इनकी एक भी मूर्ति नही मिली है। 11वीं शदी में इनके साथ यक्ष–यक्षी सामान्य लक्षणों वाले दिखये गये है। कुंथुनाथ की मूर्तियाँ

मुख्य रूप से अलवर (बिहार) बारभुजी, त्रिभुज गुफाओं एवं विमलवसही से मिली हैं।

श्वेताम्बर स्थानों पर यक्ष–यक्षी के रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका का रूपायन हुआ है।

18–अरनाथ :– 18वें जिन के रूप में अरनाथ का नाम लिया जाता हें इनके पिता का नाम सुदर्शन था। जबकि महादेवी इनकी माता थी। चक्रवर्ती शासक के रूप में काफी समय तक राज्य करने के पश्पात अर को दीक्षा कैवल्य की प्राप्ति हुयी।

श्वेताम्बर परम्परा में इनका लांछन नन्धावर्त और दिगम्बर परम्परा में इनका लांछन मत्स्य बताया गया हें । इनके यक्ष–यक्षी यक्षेन्द्र और धारणी (तारावती) है।

लगभग 10वीं शदी में इनकी एक मूर्ति का निर्माण हुआ। इनके साथ पारम्पारिक यक्ष–यक्षी का अंकन नहीं मिलता है। 10वीं शदी में इनकी एक मूर्ति सहेठ–महेठ (गोण्डा) से मिली हें जो सम्प्रति राज्य संग्रहालय लखनऊ में संग्रहित है। शान्तिनाथ के समान अधिकांश उदाहरणों में इन्हे भी कायोत्सर्ग मुद्रा में ही दिखाया गया है।

19–मल्लिनाथ :– मल्लिनाथ के पिता का नाम कुंभ था जो कि मिथिला के शासक थे तथा इनकी माता का नाम प्रभावती था। श्वेताम्बर परम्परा मे मल्लि को नारी तीर्थकर माना गया हें जबकि दिगम्बर परम्परा में इन्हे पुरूष तीर्थकर ही माना है।

इनका लांछन कलश और यक्ष–यक्षी कुबेर एवं वैरोट्या (अपराजिता) है। 11वीं शदी से पहले की इनकी मूर्ति नही मिली है। इनके साथ यक्ष–यक्षी का निरूपण भी नहीं मिलता है।

11वीं शती ई की उन्नाव से प्राप्त एक श्वेताम्बर की मूर्ति राज्य संग्रहालय लखनऊ में संग्रहित है। यह मल्लि की नारी मूर्ति हें जिसमें वक्षःस्थल को नारी के समान उभार लिए दिखया गया है। नारी के रूप में मल्लि का यह रूपायन अकेला उदाहरण है। दिगम्बर परम्परा की कुछ मूर्तियॉ सतना, बारभूजी एवं त्रिशूल गुफाओं से मिली है।

20–मुनिसुव्रत :– राजगृह के शासक सुमित्र 20वें जिन मुनिसुव्रत के पिता और पद्रमावती इनकी माता थी। इनका लाछन कूर्म और यक्ष–यक्षी क्रमशः वरूण, नरदत्ता (बहुरुपिणी) है।

लगभग नवी शदी ई0 से ही मुनसुव्रत की मूर्तियों का प्रचुर संख्या में निर्माण प्रारम्भ हुआ। इनके साथ लांछन तथा यक्ष–यक्षी का निरूपण 10वीं–11वीं शदी0 ई0 में हुआ। मूर्तियों में यक्ष–यक्षी पारम्परिक लक्षणों वाले नहीं है। आगरा से प्राप्त मूर्ति प्रतिमालक्षण की दृष्टि से विशेष महत्व की है। इस मूर्ति में कूर्म लांछन के साथ ही मुनिसुव्रत का नाम उत्कीर्ण है।

मुनिसुव्रत के जीवन तथ्यों के अंकन भी मिले है। ये हस्यांकन स्वतंत्र पटटों पर बने ह। और उनमें एक ही कथा दिखाई है। गुजरात एवं राजस्थान में जालौर के पार्श्वनाथ मंदिर कुंभारिया के महावीर एवं नेमिनाथ मंदिर में 12–13वीं शदी में ऐसे पट्टे सुरक्षित है।

21– नमिनाथ :– नमिनाथ इक्कीसवें तीर्थकर थे। इनके पिता का नाम विजय तथा माता का नाम वप्रा था। इनका लांछन नीलोत्पल और यक्ष–यक्षी क्रमशः भृकुटि, गान्धारि हैं। नमिनाथ की ज्ञात मूर्तियॉ 11वी–12वीं शदी की है। ये मूर्तियॉ कुंभारिया, लूणवसही, बारभूजी गूफा और पटना संग्रहालय में है। पश्चिमी भारत की मूर्तियों में इनके साथ यक्ष–यक्षी के रूप में सर्वानूभूति तथा अम्बिका की आकृतियॉ उत्कीर्ण हैं इन मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष–यक्षी का अंकन नहीं मिलता है।

22–नेमिनाथ :– महाराज समुद्र विजय 22वें जिन नेमिनाथ के पिता थे तथा इनकी माता का नाम शिवा देवी था। समुद्रविजय के अनुज वसुदेव थे। जिनकी दो पत्नियों रोहणी एवं देवकी से कमशः बलराम और कृष्ण उत्पन्न हुये। इस प्रकार कृष्ण और बलराम नेमिनाथ के चचेरे भाई थे। इस परम्परा के कारण ही मथुरा देवगढ पघवली कुभारिया विमलवासही एवं लूणवसही की मूर्तियॉ में नेमिनाथ के साथ कृष्ण और बलराम का भी रूपायित किया गया है।

इनका लांछन शंख है और इनके यक्ष–यक्षी गोमेघ एंव अम्बिका है। नेमिनाथ की मूर्तियॉ में यक्षी सर्वदा अम्बिका ही हैं पर यक्ष के रूप में गोमेघ के

स्थान पर प्राचीन परम्परा के सर्वानूभूति को निरूपित किया गया है। मथुरा से पहली शताब्दी से चौथी के मध्य की नेमि की 5मूर्तियॉं मिली हैं।

23–पार्श्वनाथ :– जैन परम्परा के अन्तर्गत 23वें तीर्थंकर के रूप में पार्श्वनाथ का नाम विदित है।

वाराणसी के महाराज अश्वसेन इनके पिता, और वामा इनकी माता थीं।कहा जाता है जब पार्श्वनाथ तपस्यारत थे। उस समय उनके पूर्वजन्म के बैरी मेघमाली नामक असुर ने इनकी तपस्या तोडने हेतु तरह–तरह के विघ्न उत्पन्न किये जिससे पार्श्वनाथ जरा भी विचलित नहीं हुये अन्त में मेघमाली ने अतिवृष्टि द्वारा पार्श्वनाथ को डुबो देना चाहा तब पार्श्वनाथ की रक्षा के लिये नागराज धरणेन्द्र नागदेवी पद्रमावती के साथ वहॉं उपस्थित हुये और उनके पूरे शरीर को ढकते हुये सिर के ऊपर 7 सर्पकणों की छाया की । जबकि पद्रमावती ने एक लंबे छत्र द्वारा तीर्थंकर के सिर पर छाया की । अन्त में मेधमाली ने अपनी पराजय स्वीकार करके पार्श्वनाथ से क्षमा याचना की पार्श्वनाथ का लांछन सर्प है। तथा इनके यक्ष–यक्षी क्रमशः पार्श्व (धरण,) पदमावती हैं। पार्श्वनाथ की मूर्तियौं में पीठिका पर सर्प लांछन का अंकन सामान्यतः नहीं हुआ है।

24– महावीर :– महावीर या वर्द्धमान अन्तिम जिन है। इनके पिता का नाम सिघर्थ तथा मॉं का नाम त्रिशला था।

महावीर का जन्म पटना के समीप कुण्डाग्राम मे लगभग 599ई0,पू0, में और निर्वाण 72 वर्ष की आयु में राजगिर के निकट पावापुरी में सन 527ई0,पू0 में हुआ था।

महावीर बुद्ध के समकालीन और ऐतिहासिक व्यक्ति थे। इनका लांछन सिंह और यक्ष–यक्षी मातंग एवं सिद्वायिका है। महावीर की प्राचीनतम मूर्ति कुषाणकाल की है। मथुरा से मिली ऐसी सात मूर्तियों में पीठिका लेख पर वर्धमान या महावीर का नाम उत्कीर्ण है।

जैन परम्परा के अनूसार वस्त्राभूषणों से सज्जित महावीर ने अग्रज के आग्रह पर दीक्षा–पूर्व कुछ समय तक राजमहल में ही तपस्या की थी। इसी कारण जीवन्तस्वामी मूर्तियों में वस्त्राभूषणों से सज्जित महावीर को कायोत्सर्ग मुद्रा में

तपस्यारत दिखाया गया है। महावीर की मूर्तियों के साथ उनके यक्ष–यक्षी का पारम्परक या कोई स्वतन्त्र स्वरूप कभी भी स्थिर नही हो सका। केवल देवगढ, खजुराहो, गयारसपुर एवं राजपूताना संग्रहालय अजमेर की कुछ मूर्तियों में ही स्वतंत्र लक्षणों वाले यक्ष–यक्षी निरूपित है।

जैन धर्म एक प्रचीन धर्म हैं। जिसके प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव थे जिनका उल्लेख वेद और पुराणों में भी मिलता है। ये जम्मू दीप के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट थे।[1] जैन परम्पराओं के अनुसार 22वें तीर्थकर अरिष्टनेमिनाथ का सम्बन्ध महाभारत के प्रसिद्ध श्रीकृष्ण से था।[2] 23वें तीर्थकर पार्श्वनाथ[3] का समय (877ई0पू0 – 777ई0पू0) महावीर स्वामी के प्रादुर्भाव से लगभग 250 वर्ष पूर्व था। वे बनारस के राजा अश्वसेन के पुत्र थे। 30 वर्ष की आयु में इन्हें वैराग्य हुआ। 83 दिन तक घोर तपस्या की 84वें दिन उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ । 70 वर्ष तक उन्होंने निरंतर धर्म का प्रचार किया । 100 वर्ष की आयु में 777ई0पू0 में एक पर्वत की चोटी जो पार्श्वनाथ पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है पर निर्वाण प्राप्त किया ।

पार्श्वनाथ के अनुसार जैन भिक्षु के लिये निम्नलिखित चार व्रत लेने आवश्यक थे। 1– में जीवित प्राणियों की हिंसा नही करूँगा। 2– में सदा सत्य भाषण करूँगा। 3– में चोरी नही करूँगा और में कोई सम्पत्ति नही रखूँगा। इनके अनुसार भिक्षु लोग वस्त्र धारण कर सकते थे।

1– भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, ले0 सत्यकेतू विघालंकार, पृ0–133
2– (अ) स्टडीज इन जैन आर्ट, भाग–1 ले0 उमाकान्त प्रेमानन्द झाड, पृ0–3–4
(ब) जैन साइंस इन इण्डिया, ले0 ओ0पी0टण्डन, पृ0–3
3– (अ) जैन साइंस इन इण्डिया, ले0 ओ0पी0 टण्डन, पृ0–3
(ब) भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास , ले0 सत्यकेतू विघालंकार, पृ0–133–3

जैन धर्म के क्षेत्र में महावीर स्वामी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका जन्म वैशाली के समीप कुण्डग्राम नामक स्थान पर ज्ञात्रिक जाति के क्षत्रिय सिद्धार्थ के घर 599 ई0पू0 में हुआ था। कतिपय विद्वानों में इनका जन्म 540 ई0पू0 माना हें । 30 वर्ष की आयु में इन्होंने घर–बार छोड़ कर तपस्या प्रारंभ की बारह वर्ष तक कठोर तप किया । तेरहवें वर्ष जुम्भिका ग्राम के समीप अजूपालिका नदी तट पर शाल वृक्ष के नीचे इन्हें ज्ञान की उपलब्धि हुई और उन्होंने केवलिन पद प्राप्त किया। अब इन्हें वीर, महावीर जिन, अरिहन्त सम्मान सूचक नामों से सम्बोधित किया गया। इसके पश्चात इन्होंने बारह वर्ष के तपस्या काल में जो सत्य ज्ञान प्राप्त किया थे उसका प्रचार करना प्रारंभ किया । इसमें इनके कुछ प्रमुख शिष्यों आनन्द, कामदेव, चुलातिपिया, सुरदेव, चुल्लसयक, कुण्डकोलिय, सदालपुत, महासयक, नन्दिदनीप्रिया और सल्हीपिया ने काफी सहयोग दिया। महावीर की ख्याति शीघ्र ही दूर–दूर तक पहुँच गयी। अनेक लोग इनके शिष्य होने लगे । महावीर ने इस समय जिस नवीन सम्प्रदाय की स्थापना की उसे निर्ग्रन्थ नाम से जाना जाता हैं, जिसका अभिप्राय बन्धनों से मुक्तलोगों के सम्प्रदाय से है। महावीर के शिष्य भिक्षु लोग निर्ग्रन्थक्षा निःग्रन्थ कहलाते थे। इन्हें जैन भी कहा जाता था क्योंकि ये जिन के अनूयायी होते थे। महावीर का धर्म–प्रचार का कार्य 30 वर्ष तक चला। अन्त में 72 वर्ष की आयु में राजगृह के निकट पावा नामक स्थान पर उन्होंने 527 ई0पू0 में निर्वाण पद प्राप्त किया। जैन परम्परा के अनुसार उनके 14000 श्रवण, 36000 श्रवणियाँ, 159000 श्रावक और 31800 श्राविकायें थीं।[1]

1– भारत भूमि का इतिहास , ले0 शिवनारायण सिंह राणा, पृ0 54–56

जैन धर्म के सिद्धान्त :– महावीर केवल एक बहुत बडे दार्शनिक ही नहीं थे वरन उन्होंन दर्शन को जीवन की व्यवहारिकता की कसौटी पर कसकर ही किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उनके सिद्धान्त अधिकांशतः प्रायोगिक हैं पर कुछ विशुद्ध दार्शनिक हैं जिनकी मौलिकता में संदेह होना स्वाभाविक है।

परावर्ती भारतीय दर्शन पर इन दार्शनिक सिद्धान्तों का काफी प्रभाव पडता है। जैन धर्म के कुछ दार्शनिक सिद्धान्त निम्न प्रकार के हैं।–

1–आत्मा :– जैन धर्म आत्मा पर विश्वास करता हैं ईश्वर में उसका कोई विश्वास नही हैं। जब संसार अनादि और अनन्त है तो जीव भी अनादि और अनन्त है। सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र आत्मा या जीव के तीन स्वाभाविक गुण हैं । पर समस्त आत्माओं में ये तीनों गुण हैं। पर समस्त आत्माओं में ये तीनों गुण अपने स्वाभाविक रूप में इसलिये नही मिल पाते हैं। क्योंकि कर्मो का आचरण उन्हें ढकें रहता हें । जो जीव समस्त स्वाभाविक गुणों से मुक्त रहते हैं वे शुद्ध जीव हैं और उन्हें मोक्ष प्राप्त हो चुका है। जो जीव कुछ शुद्ध और कुछ विकृत हैं, वे मिश्र जीव हैं । पर जिनमें स्वभाविक गुण बिल्कुल ही विकृत हो चुके हैं वे अशुद्ध जीव हैं। इससे स्पष्ट है। कि जैन धर्म वाले आत्मा को विकृत भी मानते है पर उसका विकार सम्यक ज्ञान व सम्यक दर्शन से सम्यक, चरित्र की प्राप्ति के आधार पर दूर किया जा सकता है।

2–तत्व – जैनियों के सात प्रकार के तत्व बताये गये हें – जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा, तथा, मोक्ष।

(अ) जीव :– इसके सम्बन्ध में उपर्युक्त आत्मा का संदर्भ अंकित है।

(ब) अजीव – अजीव के पांच भेद होते हैं छुदगल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल।

पुदगल – स्पर्श, रस, गन्ध एवं वर्णयुक्त द्रव्य पुदगल कहलाता हैं।

धर्म – यह अमुर्तीक और सर्वव्यापी है । यह जीव तथा पुदगल की गति में सहायता प्राप्त करता है ।

अधर्म – यह अमूर्तीक और सर्वव्यापी है तथा जीव और पुदगल की गति में ठहराव लाता है ।

आकाश – यह सब पदार्थो को अवकाश देता है ।

काल – समस्त द्रव्यों के परिवर्तन में योग देता है ।

(स) आश्रव – जैनियो का यह मत है कि राग और द्वेष के कारण शरीर मन या वचन से जो क्रियाए की जाती है उनसे कर्म परमाणु आत्मा के पास खिच जाता है। यही आश्रव कहलाता है ।

(द) बन्धत्व – राग द्वेष आदि से प्रभावित कर्म से आश्रव को अर्थात क्रिया के प्रकार अनुसार कर्म रूपी द्रव्य् का आत्मा संलग्न हो जाने को बन्धत्व कहलाता है ।

(य) संवर– राग द्वेष आदि के प्रभाव से कर्म के आश्रव को रोकने को कहा जाता है।

(र) निर्जरा– जो कर्म हमारी आत्मा से बद्ध है उनको तप योगादि से दूर करने को निर्जरा कहते है।

(ल) मोक्ष– सांसारिक बन्धन (भले बुरे हर प्रकार के कर्म) से मुक्ति पाने को मोक्ष कहते है ।[1]

धर्मोपदेश– महावीर स्वामी ने प्रयोगिक रूप में समझकर अपने धर्मोपदेशो को दो भागो में विभक्त किया था एक तो सन्यासियों के लिए और दूसरा गृहस्थियों के लिए।[2] उन्होने गृहस्थो या श्रावणो के लिए पाँच प्रकार के अणुवृत बताये –

1:–अहिंसा अणुबृत – जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि अहिंसा व्रत का पालन करें परन्तु सांसारिक मनुष्यो के लिए पूर्ण अहिंसा व्रत धारण करना कठिन है इसलिए इनके लिए स्थूल अहिंसा का विधान किया गया। स्थूल अहिंसा का अभिप्राय यह है। कि निरपराधीयों की हिंसा नही की जावे।

1–जैन साइंस इन इण्डिया , ले0 ओ0 पी0 टण्डन, पृ0 3,
2– भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, ले0 सत्यकेतू विघालंकार, पृ0 139–14

2:– सत्याणुव्रत – मनुष्यों में असत्य भाषण करने की प्रवृति अनेक कारणों से होती है। द्वेष, स्नेह तथा मोह का उद्वेश्य इसमें प्रधान कारण है। इन सब प्रवृत्तियों को दबा कर सर्वदा सत्य बोलना सत्याणुव्रत कहलाता है।

3:– अचौर्याणुव्रत – किसी भी प्रकार से दूसरों की चोरी न करना, गिरी हुई, पड़ी हुई, रखी हुई, वस्तु को स्वंय ग्रहण न कर उसे उसके स्वामी को दे देना अचौर्याण व्रत कहलाता है।

4:– ब्रह्मवर्योणुव्रत – मन वचन तथा कर्म द्वारा पर स्त्री का समागम न कर अपनी पत्नी में ही सन्तोष तथा स्त्री के लिये मन वचन व कर्म द्वारा पर पुरूष का समागम न कर अपने पति में ही सन्तोष रखना ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाता हैं।

5:– परिग्रह – परिमाण–अणुव्रत–आवश्यकता के बिना बहुत से धन–धान्य को संग्रह न करना परिग्रह परिमाण अणुव्रत कहलाता है। ग्रहस्थों के लिये यह तो अवश्यक हें कि धन का उपार्जन करें पर उसी में लिप्त हो जाना और अर्थ संग्रह के पीछे भागना पाप है।

तीन गुण व्रत – उपरोक्त अणुव्रतों का पालन तो ग्रहस्थों कों सदा करना ही चाहिये पर इनके अतिरिक्त समय समय पर अधिक कठोर व्रतों का पालन करना भी उपयोगी हें । सामान्य सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए ग्रहस्थों को चाहिये कि कभी–कभी अधिक कठोर व्रतों की दीक्षा लें । यह कठोर व्रत जैन धर्म ग्रन्थों में फूकर्क गुण व्रत के नाम से कहे गए हैं । ये निम्न प्रकार से हैं ।

1– दिग्विरति– ग्रहस्थ को चाहिये कि कभी–कभी यह व्रत ले लें कि मैं इस दिशा में इससे दूर नही जाऊँगा। यह व्रत लेकर निश्चित किये गये प्रवेश में ही निवास करें कभी उस परिमाण का उल्लंघन न करे।

2– अनर्थ दण्उ विरति – मनुष्य बहुत से ऐसे का करता हें जिनसे उसका कोई सम्बंध नही होता हें ऐसे कार्यो से सर्वथा बचना चाहिए।

3– उपभोग परियोग परिमाण– ग्रहस्थों को यह व्रत ले लेना चाहिये कि में परिमाण में इतना भोजन करूँगा, भोजन में इतने से अधिक वस्तुयें नही खाऊँगा, इससे अधिक भोग नही करूँगा–इत्यादि।

इस प्रकार के व्रत लेने से मनुष्य अपनी इन्द्रियों का संयम बहुत सुलभता से कर सकता है।

चार शिक्षा व्रत – उपरोक्त तीन गुण व्रतों के अतिरिक्त चार शिक्षा व्रत हैं जिनका पालन भी ग्रहस्थों को करना चाहिये –

1– देशविरति – एक देश व क्षेत्र निश्चित कर लेना जिससे आगे ग्रहस्थ न जावे और न अपना व्यवहार करे।

2– सामाजिक व्रत – निश्चित समय पर (सब सांसारिक कृत्यों से विरत होकर सब राम–द्वेष छोड साम्य भाव धारण कर शुद्ध आत्मस्वरूप में लीन होने की किया को सामाजिक व्रत कहते है।

3–पीषधोपवास व्रत – प्रत्येक अष्टमी व चतुर्दशी के दिन सांसारिक कार्यो का परित कर मुनियों के समान जीवन व्यतीत करने के प्रयत्न को पीषधोपवास व्रत कहते हैं इस दिन ग्रहस्थ को सब प्रकार का भोजन त्याग कर धर्म कथा श्रवण करने में ही अपना समय व्यतीत करना चाहिये।

4–अतिथि–संविभाग व्रत – विद्वान अतिथियों का और विशेषतया मुंनियों का सम्मानपूर्वक स्वागत करना अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है।

इन गुण व्रतों और शिक्षा व्रतों का पालन ग्रहस्थों के लिए बहुत लाभदायक है। इन्हें इनसे अपना जीवन उन्नत कर मुनि बनाने के लिए उचित तैयारी करनी चाहिए । प्रत्येक मनुष्य मुनि नहीं बन सकता । संसार का व्यवहार चलाने के लिये ग्रहस्थ धर्म का पालन करना भी आवश्यक है। अतः जैन धर्म के अनुसार ग्रहस्थ जीवन को व्यतीत करना बुरी बात नहीं है। पर ग्रहस्थ होते हुए भी मनुष्य को अपना जीवन इस ढंग से व्यतीत करना चाहिये कि पाप लिप्त न हो। मोक्ष साधनों में तत्पर रहें।

पांच महाव्रत – जैन मुनियों के लिये आवश्यक हें कि वे पांच महाव्रतों का पूर्ण रूप से पालन करें। मुनि लोगों के लिए जो कि मोक्ष पद प्राप्त करने के लिए संसार त्याग कर साधना में तत्पर हुए हें, पापों का सर्वथा त्याग अनिवार्य है। इसलिए उन्हें निम्न पांच महाव्रतों का पालन करना चाहिए।

1–अहिंसा महाव्रत – जैन मुनि के लिए अहिंसा व्रत बहुत ही महत्व रखता है। किसी भी प्रकार के प्राणी की जानबूझकर या बिना जाने बूझे हिंसा करना महापाप है। अहिंसा व्रत का सम्यक पालन करने के लिए निम्न व्रत उपयोगी माने जाते है।

(अ) ईर्यासमिति – चलते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वही हिंसा न हो जाये। इसके लिए उन्हीं स्थानों पर चलना चाहिये जहां भली–भंति अच्छे मार्ग बने हों क्योंकि वहां जीव–जन्तुओं के पैर से कुचले जाने की संभवना बहुत कम होगी।

(ब) भाषा–समिति – भाषण करते हुए सदा मधुर तथा भाषा बोलनी चाहिये। कठोर वाणी से वाचिक हिंसा होती है और साथ ही इस बात की भी संभावना रहती हें कि शाब्दिक लड़ाई न हो जाये।

(स) एषणा समिति – भिक्षा ग्रहण करते हुए मुनि को यह ध्यान रखना चाहिए कि भोजन में किसी प्राणी की हिंसा तो नही की गयी हें अथवा भोजन में किसी प्रकार के कृमि तो नहीं हैं।

(द) आदान क्षेपण समिति – मुनि को अपने धार्मिक कर्तव्यों का पालन करने के लिये जिन वस्तुओं को अपने पास रखना आवश्यक हें उसमें यह निरंतर देखते रहना चाहिये कि कहीं कीड़े तो नहीं हैं।

(य) व्युतसर्ग समिति – पेशाब और मल त्याग करते समय भी यह ध्यान रखना चाहिये कि जिस स्थान पर वे यह कार्य कर रहे है वहां कोई जीव–जन्तु तो नहीं है।

जैन मुनि के लिए अहिंसा व्रत का पालन करना अत्यंत आवश्यक है।

2–असत्य त्याग महाव्रत – सत्य परन्तु प्रिय भाषण करना सत्य त्याग महाव्रत कहलाता है। यदि कोई बात सत्य भी हो परन्तु कटु हो तो उस नही बोलना चाहिए। इस व्रत के पालन में पांच भावनायें बहुत उपयोगी है। अनुबिम भाषी–भली–भांति विचार किये बिना भाषण नहीं करना चाहिये, कोर्ह परिजानाति– जब क्रोध व अहंकार का वेग हो तो भाषण नही करना चाहिये लोभ परिजानाति– लोभ का भाव जब प्रबलि हो तो भाषण नही करना चाहिए भय परिजानाति– डर

के कारण असत्य भाषण नहीं करना चाहिए और हास परिजानाति– हंसी में की भाषण नहीं करना चाहिये।

3–अस्तेय महाव्रत – किसी दूसरे की किसी भी वस्तु को बिना उसकी अनुमति के ग्रहण न करना तथा जो वस्तु अपने को नही दी गयी हें उसको ग्रहण न करना तथा ग्रहण करने की इच्छा भी न करना अस्तेय महाव्रत कहलाता है। इस महाव्रत का पालन करने के लिए मुनि लोगों को निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(अ) जैन मुनि को किसी घर में तब तक प्रवेश नहीं करना चाहिये– जब तक कि गृहपति की अनुमति न ले ली जावे। (ब) भिक्षा में जो भी भोजन प्राप्त हो उसे तब तक न ग्रहण करे जब तक कि गुरू को दिखला कर उनसे अनुमति न ले ली जावे। (स) जब मुनि को किसी घर में निवास करने की आवश्यकता हो तो पहले गृहपति से अनुमति ले ले और यह निश्चित रूप से पूछ ले कि घर के कितने हिस्से में और कितने समय तक वह रह सकता है। (द) गृहणी की अनुमति के बिना घिर में वियतान किसी आसन शैया व अन्य वस्तु का उपयोग न करे। (य) जब कोई मुनि किसी घर में निवास कर रहा हो या तो दूसरा मुनि भी उस घर में गृहपति की अनुमति के बिना निवास न करे।

4– ब्रहमचर्य महाव्रत – जैन मुनियों के लिये ब्रहमचर्य महाव्रत का भी बहुत महत्व है। अपने विपरीत लिंग के व्यक्ति से किसी प्रकार का संसर्ग रखना मुनियों के लिये निषिद है। ब्रहमचर्य महाव्रत का पालन करने के लिये निम्न भावनाओं का विधान किया गया है।

(अ) किसी स्त्री से वार्तालाप न किया जाय (ब) किसी स्त्री की तरफ दृष्टिपात भी न किया जाए, (स) ग्रहस्थ जीवन में स्त्री संसर्ग से जो सुख प्राप्त होता सथा उसका मन में भी चिन्तन न किया जाए। (द) अधिक भोजन न किया जाए। मसाले कामातिक्त पदार्थ आदि ब्रह्मचर्य नाशक आदि भोजनों का परित्याग किया जाये और यह जिस घर में कोई स्त्री रहती हो वहां निवास न किया जाये।

साध्वियों के लिए नियम इनसे सर्वथा विपरीत है। किसी पुरूष का अवलोकन करना और पुरूष का चिंतन करना उनके लिये निषिद्ध है।

5– अपरिग्रह महाव्रत– किसी सभी वस्तु रस व व्यक्ति के साथ अपना संबंध न रखना तथा सबसे निर्लेप रह कर जीवन व्यतीत करना अपरिग्रह महाव्रत का पालन कहलाता है। जैन मुनियों के लिये अपरिग्रह महाव्रत का अभिप्राय बहुत विस्तृत तथा गम्भीर है।– सम्पत्ति का संचय न करना तो साधारण बात है पर किसी भी वस्तु के साथ किसी प्रकार का महत्व न रखना जैन मुनियों के लिए आवश्यक है। मनुष्य इन्द्रियों द्वारा रूप, रस, गन्धि, स्पर्श तथा शब्द का जो अनुभव प्राप्त करता है उन सबसे विरत हो जाना अपरिग्रह महाव्रत के पालन के लिए आवश्यक है। इस व्रत के सम्यक प्रकार पालन से मनुष्य अपने जीवन के चरम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करने के योग्य बनता है। सब विषयों तथा वस्तुओं से निर्लिप्स तथा विरक्त होकर वह इस जीवन में ही शीघ्र सिद्ध अथवा केवलीय बन जाता है।

साधू का आदर्श– जैन ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर साधु का आदर्श वार्णित है। कुछ श्लोकों का अनुवाद निम्न हैं –

" जिन वस्तुओं के साथ तुम्हारा पहले स्नेह रहा हो उससे स्नेह तोड दो। अब नई वस्तु से स्नेह न करो । जो तुम से स्नेह करते हसैं उनसे भी स्नेह न करो। तभी तुम पाप और घृणा से मुक्त हो सकोगे। "

" साधु को चाहिये कि आत्मा के सब बन्धनों को काट दे। किसी वस्तु से घृणा न करे। किसी से स्नेह न करे। किसी प्रकार की मौज में अपने को न लगावे। "

" जीवन के आनन्दों पर विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है। निर्बल लोग उन्हें सुगमता से नहीं छोड़ सकते। पर जिस प्रकार व्यापारी लोग दुर्गम समुद्र पार उतर जाते है। उसी प्रकार साधुजन संसार के पार हो जाते है। "

" स्थावर व जंगम किसी भी प्राणी को मन, बचन व कर्म से किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंचानी चाहिये।"

" यदि सारी पृथ्वी भी किसी एक आदमी की ही जावे तो भी उसे सन्तोष प्राप्त नही हो सकता। सन्तोष प्राप्त कर सकना तो बहुत कठिन है। जितना तुम प्राप्त करोगे उतनी ही तुम्हारी कामना बढती जावेगी। तुम्हारी सम्पत्ति के साथ

तुम्हारी आकांक्षाओं भी बढती जावेगी। तुम्हारी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए दो माश ही काफी है पर सन्तोष तो तुम्हारा एक करोड़ से भी नहीं हो सकता।"

जैन–सम्प्रदाय– ईसा से पूर्व चौथी शताब्दी के अंत में जैनियों के दो सम्प्रदाय हो गये।[1] ऐसे जैनी जो अब भी वस्त्रहीन रह कर महावीर के सिद्धान्तों का अनुकरण करते थे वे दिगम्बर कहलाये लेकिन जो श्वेत वस्त्र धारण कर महावीर के सिद्धान्तों से दूर हो गए वे श्वेताम्बर कहलाये। जनपद ललितपुर में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय का प्रभाव व प्रचार प्रारंभ से ही रहा है।[2]

जैन मंदिरों के विकास का इतिहास

तीर्थ[3] – प्रत्येक धर्म और सम्प्रदाय में तीर्थों का प्रचलन है। हर सम्प्रदाय के अपने तीर्थ हैं जो उनके किसी महापुरूष एवं उनकी किसी महत्वपूर्ण घटना के स्मारक होते है। प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने तीर्थो की यात्रा करते है। तीर्थ स्थान पवित्रतार, शान्ति और कल्याण के धाम माने जाते है। जैन धर्म में भी तीर्थ क्षेत्र का विशेष महत्व रहा है। जैन अनुकृतियों के अनूसार तीर्थ क्षेत्र ही पूजा स्थल और मंदिर होते है।[4] जैन धर्म के अनुयायी प्रति वर्ष बड़े श्रद्धा सभाव से अपने तीर्थ की यात्रा करते हैं उनका विश्वास हें कि तीर्थ यात्रा से पुण्य संचय होता हैं और परम्परा से यह मुक्ति लाभ का कारण होती है।

तीर्थ शब्द तृ धातु से निष्पन्न हुआ हैं। तृ धातु के साथ थक् प्रत्यय लगाकर तीर्थ शब्द की निष्पत्ति होती हें । इसका अर्थ है – जिसके द्वारा अथवा जिसके आधार से तरा जाय।

जैन शास्त्रों में भी तीर्थ शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है।

यथा— संसाराध्येरपारस्य तरणे तीर्थमिष्यते।

चेष्टिवं जिननाषानां तस्योक्तिस्तीर्थसंकथा।।[5]

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन,बलभद्र जैन, प्रक्कथन पृ0 8,

2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन,बलभद्र जैन, प्रक्कथन पृ0 8,

3– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : संकलन–सम्पादन 5 बलभद्र जैन प्राक्कथन पृ 7–8

4– जैन साइंस इन इण्डिया , ले0 ओ0 पी0 टण्डन, पृ0 5

5– आदि पुराण : जिन सेन 4/8

अर्थात जो इस अपार संसार समुद्र से पार करे उसे तीर्थ कहते हैं। ऐसा तीर्थ जिनेन्द भगवान का चरित्र ही हो सकता है। अतः उनके कथन करने को तीर्थ स्थान कहते है।

पुष्पदन्त– भूतबलि प्रणीत षद्रखण्डागम (भाग 8 पृष्ठ 191) तीर्थंकर को धर्म तीर्थ का कर्ता बताया है। आदिपुराण में श्रेयान्सकुमार को दानतीर्थ का कर्ता बताया है आदिपुराण में (2/39) मोक्ष प्राप्ति के उपायभूत सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान, सम्यक चरित्र, को तीर्थ बताया है।

आवश्यक निर्युक्ति में चातुर्वर्ण अर्थात मुनि–अर्जिका श्रावक–श्राविका इस चतुर्थिध संघ अथवा चतुर्थध संघ अथवा चतुर्वर्ण को तीर्थ माना है। इनमें भी गणवरों और उनमें भी मुख्य गणवर को मुख्य तीर्थ माना है और मुख्य गणधर ही तीर्थकर के सूत्र रूप उपदेश को विस्तार देकर भक्तजनों को समझाते हैं। जिससे वे अपना कल्याण करते हैं। कल्पसूत्र में इसका समर्थन दिया गया है।

तीर्थ और क्षेत्र मंगल – कुछ प्राचीन जैन आचार्यो ने तीर्थ के स्थान पर क्षेत्रमंगल शब्द का प्रयोग किया है।

गुणपरिणत – आसन क्षेत्र अर्थात जहां पर योगासन, वीरासन, इत्यादि अनेक आसानों से तदनुकूल अनेक प्रकार के योगाभ्यास, जितेन्द्रियता आदि गुण प्राप्त किये गये है ऐसा क्षेत्र, परिनिष्क्रमण क्षेत्र, केवल ज्ञानोतपत्ति क्षेत्र और निर्वाण क्षेत्र आदि को क्षेत्र मंगल कहते हैं। इसके उदाहरण गिरनार चम्पा पावा आदि नगर क्षेत्र है। अथवा साढें तीन हाथ से लेकर पांच सौ पच्चीस धनुष तक के शरीर में स्थित और केवल ज्ञानारिद को व्याप्त आकाश प्रदेशों को क्षेत्र मंगल कहते है। अथवा लोक प्रमाण आत्मप्रदेशों से लोकपूरणसमुदायात दशा में व्याप्त किये गये समस्त लोक के प्रदेशों को क्षेत्र–मंगल कहते हैं।[1]

आचार्य यति वृषभ ने तिलोयपण्णत्ति नामक ग्रन्थ में कल्याणक क्षेत्रों को क्षेत्र मंगल की संज्ञा दी है।[2]

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन, बलभद्र जैन, प्रक्कथन पृ0 8,

2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन, बलभद्र जैन, प्रक्कथन पृ0 9,

तीर्थों की संरचना के कारण – तीर्थ शब्द क्षेत्र या क्षेत्र मंगल के अर्थ में बहुप्रचलित एवं रूढ़ है। तीर्थ क्षेत्र न कह कर केवल तीर्थ शब्द कहा जाये तो उससे भी प्रायः तीर्थ क्षेत्र या तीर्थ स्थान का आशय लिया जाता है। जिन स्थलों पर तीर्थकरों के गर्भ जन्म अभिनिष्क्रमण केवल–ज्ञान और निर्वाण कल्याणकों में से कोई कल्याणक हुआ हो अथवा किसी निर्ग्रन्थ वीतराग तपस्वी मुनि को केवल्य ज्ञान या निर्वाण प्राप्त हुआ हो वह स्थान उन तीतराग महर्षियों के संसर्ग से पवित्र हो जाता है। इसलिए वह पूज्य भी बन जाता है।[1] वादीभ सिंह सूरि ने क्षण चूडामणि (6/4–5) में इस बात को बडे ही बुद्धिगम्य तरीके से बताया है।

अर्थात महापुरूषों के संसर्ग से स्थान भी पवित्र हो जाते है। फिर जहां महापुरूष रह रहे हो वह सभूमि पूज्य होगी ही इसमें आश्चर्य की क्या बात है। जैसे रस अथवा पारस के स्पर्श मात्र से लोहा सोना बन जाता है।

मूलतः पृथ्वी पूज्य–अपूज्य नहीं होती । उसमें पूज्यता महापुरूषों के संसर्ग के कारण आती है। पूज्य तो वस्तुतः महापुरूषौं के गुण होते है। किन्तु ये गुण (आत्मा) जिस शरीर में रहते है। वह शरीर भी पूज्य बन जाता है। संसार उस शरीर की पूजा करके ही गुणों की पूजा करता है। महापुरूष के शरीर की पूजा भक्त का शरीर करता है और महापुरूष की आत्मा में रहने वाले गुणों की पूजा भक्त की आत्मा अथवा उसका अंतःकरण करता हैं इसी प्रकार महापुरूष, वीतिराग तीर्थकर अथवा मुनिराज जिस भूमिखण्ड पर रहे, वह भूमिखण्ड भी पूज्य बन जाता है। बस्तुतः पूज्य तो वे वीतिराग तीर्थकर या मुनिराज है। किन्तु वे वीतिराग जिस भी भूमिखण्ड पर रहें उसी भूमिखण्ड की भी पूजा होने लगती है । उस भूमिखण्ड की पूजा भक्त का शरीर करता है। उस महापुरूष की कथा–वार्ता स्तुति स्त्रोत और गुण संकीर्तन भक्त की वाणी करती हैं और उन गुणों का चिन्तन भक्त की आत्मा करती है। क्योंकि गुण आत्मा में रहते है। उनका ध्यान अनुचिन्तन और अनुभव आत्मा में ही किया जा सकता है।

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन , बलभद्र जैन, प्राक्कथन पृ0 – 9.

वीतिराग तीर्थकरों और महर्षियों ने संयम, समाधि, तपस्या और ध्यान के द्वारा जन्म–जरा मरण से मुक्त होने की साधना की ओर संसार के प्राणियों को संसार के दुखों से मुक्त होने का उपाय बताया। जिस मिथ्या मार्ग पर चल कर प्राणी अनादि काल से नाना प्रकार के भैतिक और आत्मिक दुख उठा रहे है। उस मिथ्या मार्ग को ही इन दुखों का कारण मात्र बता कर प्राणियों को सम्यक मार्ग बताया । अतः वे महापुरूष संसार के प्राणियों के अकारण बन्धु है, उपकारक है। इसी लिये उन्हें मोक्ष मार्ग का नेता माना जाता है। उनके उपकारों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने और उस भूमि खण्ड पर धटित घटना की सतत स्मृति बनाये रखने और उन सबके माध्यम से उन सबके माध्यम से उन बीतराग देवों और गुरूओं के गुणों का अनुभव करने के लिए उस भूमि पर उन महापुरूषों का कोई स्मारक बना देते हैं । संसार के सम्पूर्ण तीर्थ भूमियों या तीर्थ क्षेत्रों की संरचना में भक्तों की महापुरूषों के प्रति यह कृतज्ञता की भावना ही मूल कारण है।[1]

तीथों के भेद– दिगम्बर जैन परम्परा में संस्कृत निर्वाण भक्ति और प्राकृत निर्वाण काण्ड प्रचलित है। अनुश्रुति के अनुसार ऐसा मानते है। कि प्राकृत निर्वाण काण्ड आचार्य कुन्द कुन्द की रचना है। तथा संस्कृत निर्वाण भक्ति पात्र पादपूज्य स्वामी विरचित है। प्राकृत निर्वाण भक्ति के दो खण्ड है। – एक निर्वाण काण्ड और दूसरा निर्वाणेत्तर काण्ड। निर्वाण काण्ड में 19 निर्वाण क्षेत्रों का विवरण प्रस्तुत करके। शेष मुनियों के जो निर्वाण क्षेत्र है। उनके नाम उल्लेख न करके सबकी वन्दना की गयी है। निर्वाणेत्तर काण्ड में कुछ कल्याणक स्थान और अतिशय क्षेत्र दिये गये है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृत निर्वाण भक्ति में तीर्थ भूमियों की इस भेद कल्पना से ही दिगम्बर समाज में तीन प्रकार के तीर्थ क्षेत्र प्रचलित हो गये । सिद्ध क्षेत्र (निर्वाण क्षेत्र) कल्याण क्षेत्र, और अतिशय क्षेत्र।[2]

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन, बलभद्र जैन , प्रक्कथन पृष्ठ – 9

2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन, बलभद्र जैन , प्रक्कथन पृष्ठ – 10

निर्वाण क्षेत्र –. वे क्षेत्र कहलाते हैं जहां तीर्थकरों या किसी तपस्वी मुनिराज का निर्वाण हुआ हो। तीर्थकरों के निर्वाण क्षेत्र कुल पांच हैं – कैलाश, चम्पा, पावा, उरणयन्त और सम्मेद शिखर। पूर्व के क्षेत्रों में कमशः ऋषभदेव, वासुपूज्य, महावीर और नेमिनाथ मुक्त हुए शेष बीस तीर्थकरों ने सम्मेद शिखर में मुक्ति प्राप्त की।[1]

कल्याणक क्षेत्र – वे क्षेत्र हैं जहां किसी तीर्थकर का गर्भ–जन्म–दीक्षा और केवल ज्ञान कल्याणक हुआ है। जैसे – हस्तिनापुर, ढोरीपुर, अहिच्छत्र, वाराणसी, काकन्दी, कंकुभ ग्राम आदि।[2]

अतिशय क्षेत्र – जहां किसी मंदिर में या मूर्ति में कोई चमत्कार दिखाई दे तो वह अतिशय क्षेत्र कहलाता है। जैसे श्री महावीर जी, देवगढ, हुम्मच, पदमावती आदि। अतिशय क्षेत्रों के प्रति जन साधारण का आकर्षण भौतिक या सांसारिक होता है। आध्यात्मिक नहीं होता है लोग या तो ऐहिक कामानावश वहां जाते है। अथवा उनके मन में अद्रभुत कुतूहल होता है।[3]

तीर्थ क्षेत्रों की स्थापना के मूल में जिस आध्यात्मिक भावना का विकास हुआ था। वह भावना थी आत्मिक शान्ति लाभ और उस क्षेत्र से संबंधितं बीतराग तीर्थकर या महर्षियों के आदर्श से अनुप्राणित होकर आत्म कल्याण की किन्तु अतिशय क्षेत्रों में भौतिक प्रलोभन ही आकर्षक के केन्द्र बिन्दु होते है। यह भट्टारक परम्परा की देन है। अतिशय क्षेत्र प्रायः आठवीं नवीं शताब्दी के बाद के है।[4]

तीर्थो का महात्म्य– संसार में प्रत्येक क्षेत्र स्थल समान हैं किन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का प्रभाव हर स्थान को दूसरे स्थान से पृथक कर देता है। द्रव्यगत विशेषता, क्षेत्रकृत प्रभाव और कालकृत परिर्वतन हम नित्य देखते है। इससे भी अधिक व्यक्ति के भावों और विचारों का चारों ओर के वातावरण पर प्रभाव पड़ता है। जिनसे आत्मा में विशुद्ध या शुद्ध भावों की स्फुरणा होती है उनमें से

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन, बलभद्र जैन , प्रक्कथन पृष्ठ – 10
2– वही प्राक्कथन पृ0 11
3– वही प्राक्कथन पृ0 11
4– वही प्राक्कथन पृ0 11

शुभ परमाणुओं की तरंगें निकल कर आस पास के सम्पूर्ण वातावरण को व्याप्त कर लेती है। उस वातावरण में सुचिता, शान्ति, निर्वैरता और निर्भयता व्याप्त हो जाती है। यह तरंगें कितने वातावरण को घेरती है। इसके लिए यही कहा जा सकता है कि उन भावों में उस व्यक्ति की सुचिता आदि में जितनी प्रब्लता और वेग होगा उतने वातावरण में वे तरंगें फैल जाती है।[1]

प्रायः सर्वस्व त्यागी और आत्म कल्याण के मार्ग के राही एकान्त शन्ति की इच्छा से वनों में गिरि कन्दराओं में सुरम्य नदी तटों पर अपना ध्यान लगाया करते थे। ऐसे तपस्वी जनों के शुभ परमाणु उस तारे वातावरण में फैल कर उसे पवित्र कर देते थे।[2]

तीर्थ में जाने पर मनुष्यों की प्रवृत्ति संसार की चिन्ताओं से मुक्त होकर उस महापुरूष की भक्ति से आत्मा कल्याण की ओर होती हें घर पर मनुष्य को नाना प्रकार की सांसारिक चिन्तायें और आकुलतायें रहती हैं उसे घर पर आत्म कल्याण के लिए बिल्कुल अवकाश नहीं मिल पाता। तीर्थ स्थान प्रशान्त स्थानों पर होते हैं। प्रायः तो वे पार्वतों पर या एकान्त वनलों में नगरों के कोलाहल से दूर होते हैं फिर वहां के वातावरण में भी प्रेरणा के बीज छितराये होते है। अतः मनुष्य का मन वहां शान्त निराकुल और निश्चिन्त होकर भगवान की भक्ति और आत्म साधना में लगता हें और उसे आत्म सिद्धि होने में विलंब नहीं लगता। तीर्थ भूमि के मार्ग की राह सुहावनी अधिक होती है कि उसके आश्रय से मनुष्य कर्म मल रहित हो जाता है। तीर्थो पर भ्रमण करने से संसार का भ्रमण छूट जाता है। तीर्थ पर धन व्यय करने से अविनाशी सम्पदा मिलती हें और जो तीर्थ पर जाकर भगवान की शरण ग्रहण कर लेते हैं अर्थात भगवान के मार्ग को जीवन में उतार लेते है। वे जगत–पूज्य हो जाते है।[3]

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन, बलभद्र जैन , प्रक्कथन पृष्ठ – 11

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन, बलभद्र जैन , प्रक्कथन पृष्ठ – 11

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन, बलभद्र जैन , प्रक्कथन पृष्ठ – 12–13

मंदिर – भारत धर्म प्रधान देश है। भारत में सभ्यता के आदिकाल से ही धार्मिक भावनायें किसी न किसी रूप में विधमान रही है। धार्मिक भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए मंदिर होते हैं। जैन धर्म में मंदिर दो प्रकार के बताये गये है। अकृत्रिम और कृत्रिम। अकृत्रिम चैत्यालय नन्दीश्वर दीप, सुमेर, कुलाचल, वैताहय पर्वत, शाल्मली वृक्ष, वक्षार गिरि, चैत्य वृक्ष, रतिकर गिरि, रूचक गिरि, कुण्डल गिरि, मानसोत्तर पर्वत, ईष्वाकार गिरि, अंजनि गिरि, दधिमुख पर्वत, व्यान्तरलोक, स्वर्गलोक, ज्योतिलोक और भवन वासियों के पाताल लोक में पाये जाते है। इनकी कुल संख्या 85697481 बतलाई गई है।

मंदिरवास्तु का उद्भव – कालांतर में मंदिर निर्मात करवाये गये। ये कृत्रिम मंदिर कहलाये।

सुमेरू – मंदिर स्थापत्य का आधार श्रोत – धार्मिक तृप्ति के लिये अपनाये गये साधनों में अपने उपास्य देव के निवास की कल्पना की थी। सुमेरू के नाम से एक ऐसे पर्वत की कल्पना की गयी। जो लौकिक पर्वतो से आकार–प्रकार में सर्वथा भिन्न था। सुमेरू पर स्वर्गीय सुविधायें और वातावरण था। उसके बीच अभिष्ट देव का निवास था। परन्तु भक्त अपने वर्तमान जन्म में वहां तक पहुंच नही सकता था। जबकि उसे अपने उपास्य का दर्शन क्षण–क्षण अनिवार्य प्रतीत होता गया। अतः उसने स्वयं सुमेरू की रचना करने की ठानी जिस पर अवतीर्ण होकर उसका उपास्सय विराजमान होता। सुमेरू की कल्पना के साथ ही मंदिर स्थापत्य का उपक्रम हुआ।[1] सुमेरू एक ऐसा विशिष्ट पर्वत है जहां से पर्वत श्रेणियां निकल कर चारों दिशाओं में फैलती है। अनेक विद्वानों ने इसे पामीर पर्वत माना है। अनेक ने इसका अभिज्ञान हिमालय से किया है किन्तु आर0 जी0 हर्षे इसकी स्थिति अलसाई पर्वत के क्षेत्र में मानते है।[2] डा0 बल्देव उपाध्याय पश्चिमी साइबेरिया में स्थित अलताई पर्वत को सुमेरू मानते है।[3] प्रो0 सैययद मुजफ्फर अली पामीर को सुमेरू प्रमाणित करते है।

1– देवगढ़ की जैन कला , ले0 भागचन्द्र जेन, पृ0 – 49
2– मेरू होमलैण्ड आफ दि आर्यन्स : विश्वेश्वरानन्द भारतभारती (होशियारपुर 1974) लेखमाला 109,
3– पुराणविमर्श , ले0 बल्देव उपाध्याय, पृ0 320

कैलाशः शिखर संरचना का प्रेरणा :– भक्त जानते थे कि उनका उपास्य देव कैलाश पर भी निवास करते हैं उस तक पहुंचने में असमर्थ भक्तों ने कैलाश की भी रचना का सूत्रपात किया। यह परिकल्पना भी मंदिर स्थापत्य का सूत्रपात कही जा सकती है।[1]

सुमेरू और कैलाश की अनुकृतियों का एक मुख्य अंग शिखर भी माना गया। प्राचीन भारत में इस विशेष मान्यता दी गयी।

मुद्राओं पर अंकित मंदिर आकृतियों – ई0 पू0 पांचवीं चौथी शदी के सिक्कों पर भी शिखराकृतियां अंकित मिलती है।[2] कुछ आहत मुद्राओं पर मंदिरों का प्रारंभिक रूप देखने को मिलता है। ई0 पू0 द्वितीय तथा प्रथम शदी की मुद्राओं के अतिरिक्त अनेक मूर्तियों पर भी मंदिर आकृतियों उत्कीर्ण की गई थीं।

वेदिकाओं परं अंकित मंदिर आकृतियॉ – मथुरा की वेदिकाओं पर अंकित मंदिराकृतियों से उत्तर भारत के मंदिरों के प्रारंभिक रूप का ज्ञान होता है।[3]

प्राचीन मंदिर स्थापत्य की दो विशेषतायें – ई0 पू0 द्वितीय – प्रथम शताब्दी के मंदिरो की दो विशेषतायें वेदिका और शिखर है। वेदिका जिसे वेष्टनी (बाड) भी कहते है। प्रारंभ में पवित्र वृक्षों के चारों और बनायी जाती थी ग्रामों और नगरों की रक्षा भी वेष्टनी द्वारा की जाती थी जिसकी संज्ञा प्राचीर हुई। महावीर का जिन यक्षायत्नों में रूकने का उल्लेख मिलता है। वे किसी वृक्ष के नीचे होते थे और उन्हें वेष्टनी द्वारा परिवेष्ठिक कर दिया जाता था। मंदिरों की छत पर सादे शिखर का निर्माण कदाचित उत्तर भारत में सर्व प्रथम हुआ। साहित्य में अनेक प्राचीन (ई0पू0 600 से भी पहले के) मंदिरों के उल्लेख मिले हैं। मथुरा काम्पिल्यआदि में पार्श्वनाथ, महावीर आदि के मंदिर निर्मित हुए थे। ऐसा अनुमानकतिपय साहित्यिक उल्लेख से होता है। महावीर से 100 वर्ष मथुरा के कंकाली टीले पर किसी कुबेरा देवी ने पार्श्व नाथ का मंदिर बनवाया था। यह पहले सोने का था। बाद में प्रस्तर खण्डों और ईटों से आवेष्टित कर दिया गया।

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 320
2– कैटलांग आफ क्वाइन्स आफ एनशेन्ट इण्डिया इन दि ब्रिटिश म्यूजियम : एलन भूमिका तथा पृ0 297–306
3– देवगढ़ की जैन कला, ले0 ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 48

मौर्य–शुंग काल – मौर्य शुंग काल की मुद्राओं आदि से प्रबल प्रमाण मिलते है कि उसे समय मंदिरों का निर्माण बडी संख्या में होता था। इनमें बौद्ध मंदिर बहुत कम होते थे। जैन तथा वैदिक अपेक्षाकृत अधिक थे। इस समय के मंदिरों के साथ वाटिका का भी निर्माण होता था। मंदिर का निर्माण एक ऊंचे अधिष्ठान पर निर्मित स्तम्भों पर आधारित छत बना कर होता था। छत प्रायः गोलाकार होती थी। गोल आकार क्रमशः अंडाकार में परिणित होता गया। छत के आकार का यह परिर्वतन तत्कालीन शैल गृहों में भी परिलक्षित होता है। बराबर की लोमश ऋषि की गुफा[1] और उदयगिरि (उड़ीसा) की हाथी गुम्फा[2] तथा उड़ीसा की अनेक गुफाओं[3] के छत अंडाकार ही हैं। विदिशा में की गई खुदाई से ई०पू० 200 में निर्मित विष्णु मंदिर के अवशेष प्राप्त हुए है।[4] इस मंदिर के सामने युनानी राजा अंतलिकित के राजदूत हेलियोदर ने गरूणध्वज की स्थापना करवायी।

शक–सातवाहन काल– इस काल में मंदिरों का निर्माण और भी अधिक संख्या में हुआ। इस समय औदुम्बर, कुणिन्द्र और आर्जुनायन गणों की मुद्राओं पर जिस प्रकार देवों का विशेष चिन्ह बनाया जाता था।[5] उसी प्रकार का चिंन्ह मंदिरों उनके स्तम्भों तथा ध्वजाओं पर भी बनाया जाने लगा। उदाहरण के लिए जैन मंदिरों में तीर्थकर की मूर्ति और शैव मंदिरों में त्रिशूल और परशु के चिन्ह उत्कीर्णन इस काल में प्रदक्षिणा पथ का निमार्ण विशेष रूप से प्रचलित हुआ। प्रदक्षिणा पथ प्रायः काष्ठ निर्मित वेष्टनी के रूप में होते थे। जिन्हें कुषाण शासकों ने पाषाण से निर्मित कर प्रशस्त रूप दिया।

1– दि आर्ट आफ इण्डियन एशिया जिल्द 1, ले0 हेमरिच जिम्भर, पृ0 247 तथा आकृ ए 3बी
2– वही वही वही फलक 58 आकृति
3– वही वही वही फलक 46,52,56,57
4– भारतीय संस्कृति में मध्य प्रदेश का योगदान – ले0 के0 डी0 बाजपेयी, पृ0 124
5– प्राचीन भारतीय संस्कृति, ले0 बी0 एन0 लूनिया, पृ0 565

कुषाण काल- कुषाण शासकों में मंदिरों के साथ ही साथ देवकुलों को भी बहुत महत्व दिया। देवकुल वह भवन होता था। जिसमें भूत राजा की मूर्ति प्रतिस्थापित होती थी। इस प्रकार एक ही देवकुल में अनेक परंपरागत राजाओं की मूतियाँ हो जाया करती थी। कुषाण काल में मथुरा अहिच्छत्र, कौशाम्बी, काम्पिल्य और उड़ीसा में भी जैन धर्म के प्रारंभिक केन्द्र है। यहां अनेक जैन मंदिर निर्मित हुए थे।[1]

गुप्त काल- गुप्तकालीन मंदिर भीतरगांव, एरण, नचना, भूमरा, ऊचेहरा, पिगवां, मढ़िया, सांची आदि स्थानों में उपलब्ध हुए हैं।

गुर्जर प्रतिहार काल – इस समय के मंदिर बरूआ सागर, मढखेरा और कन्नौज आदि में हैं।[2]

कलचुरि काल :- इस काल के मंदिर नौहटा, विनैका, त्रिपुरी, अमरकण्टक, सुहागपुर, सिंहपुर, रतनपुर, जाजगीर, खारोद, ग्यारसपुर, कारीतलाई, बिलहारी, पठारी, बड़ागॉव, खजुराहो, आदि स्थानों में है।

चन्देल काल :- इस काल के मंदिर खजुराहो, बेड़ाघाट त्रिपुरी, चन्द्रेह, गुर्गी, जादगीर और उदयपुर आदि में प्राप्त हैं।[3]

ललितपुर के जैन मंदिर के विभिन्न रूपः- स्मारकों अभिलेखों और अन्य श्रौतों के अध्ययन से ज्ञात होता है। कि जनपद ललितपुर में जैन वैष्णव तथा शैव धर्म समान रूप से विकास पाते रहे। जैन धर्म का प्रभाव यहाँ बहुत प्राचीन काल से प्रारंभ होकर अब तक चल रहा है। जैनों में पर्वत की सुरंग अधिपत्यका को तो अपनी निर्माण स्थली बनाया ही उपत्यका पर भी कुछ मंदिरों का निर्माण कराया।[4] जैन धर्म का प्रचार जनपद ललितपुर में पर्याप्त रहा यह तो उपलब्ध श्रोतों से भलीभांति प्रकट होता है। पर इनसे यह प्रकट नहीं होता कि वह प्रचार किस रूप में रहा। स्मारकों की विशालता और विपुलता और विपुलता, मूर्तियों की कलात्मकता और अधिकता तथा अभिलेखों की बड़ी संख्या से धार्मिक प्रभावना की

1- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 50,
2- देवगढ़ की जैन कला , ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 51
3- सागर विश्वविघालय पुरातत्व पत्रिका सं0 1,1967 : मध्य प्रदेश का सांस्कृतिक और एतिहासिक अनुशीलन, ले0 कृष्णदत्त बाजपेयी, पृ0 87

अधिकता का बोध तो होता है। पर उनसे यह नहीं मालूम पड़ता कि वह प्रभावना समाज में किन विभिन्न रूपों में स्थान पाती थी। मूर्तियों में तीर्थकर तथा यक्ष–यक्षियों की मूर्तियों का बहुत बड़ा अनुपात है पर यहां जन जीवन के विभिन्न पक्षों का अंकन बहुत कम है। इसी प्रकार अभिलेखों में भी मंदिरों के निर्माण और मूर्तियों की स्थापना के अतिरिक्त किसी अन्य अनुष्ठान या धार्मिक प्रभावना आदि की चर्चा नगण्य है। फलतः विभिन्न युगों में जनपद ललितपुर में जैन धर्म किस गति से और किस रूप में विकसित हुआ यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता।[1]

यहां का साधुवर्ग श्रावकों पर अच्छा प्रभाव रखता था। स्थान–स्थान पर श्रावक श्राविकाओं को साधु व साध्वियों की विनय या उपासना करते हुए दिखाया गया है। साधुवर्ग स्वयं भी प्रबुद्व था। यहां भट्टारकों का प्रचार और प्रभाव भी बहुत अधिक था। भट्टारकों के कारण एक ओर जैन धर्म को सुरक्षा और प्रभावनार का वरदान मिला तो दूसरी ओर आडम्बरप्रियता और भौतिकता का अभिशाप भी मिला।[2] निवृति प्रधान जैन धर्म में मुक्ति के साधक, गृह त्यागी, तपस्वी, श्रदण साधुओं की परंपरा प्राचीन काल से है इसके मुल संघ में ऐसे मुनियों का समुदाय था जो शास्त्रोक्त मुनि चरित्र का पालन करता था। तत्पश्चात्र काल दोष से मुल संघ में श्रेष्ठ मुनि बिरले रह गए और उनके साथ शिथिलाचारी, मठवासी, नाम मात्र मे नग्न साधुओं की परंपरा चल पड़ी।[3] कालान्तर में यह लोग मठों और मंदिरों में निवास करने लगे, जागीरें रखने लगे, राज सभाओं में जाने लगे, किन्तु अपने आप को मूल संघी ही प्रदर्शित करते रहे। कालांतर में दिगम्बर परंपरा ने साधुओं में वस्त्र धारण की प्रथा प्रारंभ हो गयी।[4] ये वस्त्र धारण करके भी मुनि कहलाते थे तथा स्वयं को मूल संघी कहते थे। इस प्रकार दिगम्बर परंपरा ने मुनियों के तीन रूप या प्रतिरूप सामने आयेः यथा शास्त्र मुनि, शिथिलाचारी नग्न मुनि, भट्टारक।

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 118,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 118–19,
3– दर्शनसार : देवसेन सूरि : संपादक नाथूराम प्रेमी, पृ0 24–28
4– योगेन्द्र देवः परमात्म प्रकाश : ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका, पं0 मनोहरलाल शास्त्री संपादित गथा 216 की टीका, पृ0 231–32

भट्टारकों से सम्बद्ध विभिन्न उल्लेखों से ज्ञात होता है कि दिगम्बर जैन धर्म में मूल संघ में भट्टारकों की दो परंपराये रही है। पहला सेनगण की और दूसरी बलात्कार गण की ।[1] सेन गण वाले भट्टारक अपने को पुष्करगच्छ का कहते है। और वृषभसेनान्वय लिख कर अपना मूल वृषभसेन (ऋषभदेव के गणधर) से प्रारंभ करते है। दूसरी परंपरा के बलात्कारगण वाले भट्टारक अपने को सरस्वतीगच्छ का कहते है। तथा कुंदकुंदान्वय लिखा कर अपना मूल कुंदकुंदाचार्य से आरंभ करते है। इन्होंने बड़ी मात्रा में जैन साहित्य का सृजन किया। साथ ही अनेक जैन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठायें भी कीं। उत्तर प्रदेश की शाखओं के मूल आधार भट्टारक पद्रमनन्दी थे।[2]

जनपद ललितपुर में जैन धर्म के प्रभाव के परिणाम स्वरूप यहां के विभिन्न स्थानों में जैन मंदिरों का निर्माण भिन्न-भिन्न समयों में हुआ। यहां के मंदिर अतिशय क्षेत्र कहे जाते है। गुप्त काल से लेकर 19वीं शताब्दी तक यहां जैन मन्दिरों का निर्माण होता रहा था। ये मंदिर देवगढ़, चांदपुर-जहांजपुर, मदनपुर, बानपुर, पावगिरि, सिरोंन, सेरोंनजी, गिरार, और ललितपुर आदि स्थानों में निर्मित हुए थे। इनके निर्माण हुए थे। इनके निर्माण पर गुप्त काल, गुर्जर प्रतिहार काल, कलचुरि काल, चन्देल काल, बुन्देला काल और मुगल काल की शैलियों का प्रभाव पड़ा है।[3]

मंदिरों के विकास में सहायक तत्व व प्रश्रयदाता – इतनी उत्कृष्ट और विपुल कृतियों के विकास में जनपद की जनता का सहयोग, शासक वर्ग का प्रोत्साहन व संरक्षण, कलाकारों के स्थानीय होने से सरलता से उपलब्धि और निर्माण स्थल पर ही पाषाण की प्राप्ति बहुत सिद्ध हुयी।[4]

1– भट्टारक संप्रदाय , ले0 विघाधर जोहरापुरकर, प्रस्तावना पृ0 4 और आगे,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 121,
3– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 50–53,
4– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 53,

बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थलों में प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात होता है कि यहां अनेक मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण आभिकाओं और साधुओं की प्रेरणा या उपदेश द्वारा हुआ। आर्यिकाओं में इन्दुआ, गणी, धर्मश्री, नवासी और मदन आदि का नाम मिलता हें जिन्होंने मूर्तियों के निर्माण में महत्वपूर्ण प्रेरणा दी या प्रतिष्ठा करायी। इसी प्रकार साधुओं में लोकनन्दी के शिष्य गुणनन्द, कमलसेनाचार्य और उनके शिष्य श्रीदेवी, त्रिभुवनकीर्ति, जयकीर्ति, भावनन्दी, चन्द्रकीर्ति, यशःकीर्ति, आचार्य नागसेनाचार्य, कनकचन्द्र, लक्ष्मीचन्द्र, हेमचन्द्र, धर्मचन्द्र, रत्नकीर्ति, प्रभाचन्द्र, पद्रमनन्दी, शुभचन्द्र, देवेन्द्रकीर्ति आदि ने यहां मंदिर निर्माण की प्रेरणा दी अथवा प्रतिष्ठा करायी।[1]

बुन्देलखण्ड में जैन मंदिरों के विकास में निम्नलिखित का योगदान विशेषरूप से सराहनीय है :– देवपत और खेवपत। 12वीं शताब्दी के अंत और तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में देवगढ़ और खेवपत नाम के दो भाई निवास करते थे। किंवदन्ती के अनुसार उन्हें पारस पत्थर उपलब्ध था जिसके कारण वे अत्यंत वैभव संम्पन्न हो गये थे। अपनी अपार धनराशि का उपयोग इन दोनों ने यहां जैन धर्म के विकास, भव्य जैन देवालय बनवाने, नगर एवं दुर्ग के सोन्दर्य बढ़ाने में किया। उन्होंने सन् 1203 ई0 के लगभग देवगढ़ पाली में एक महान जैन महोत्सव कराया था।[2] परंपरा से देवगढ़ के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि इस स्थान के निर्माता उक्त देवपात के कारण ही यह स्थान देवगढ़ कहलाता है। हालांकि यह विचार सही नहीं माना जाता है,[3] पर यह सही है कि उन्होंने यहां कई मंदिरों का निर्माण करया था। जैसे भात भोयरे (गुफा मंदिर) का निर्माण कराया। ये सात भोयरे देवगढ़, सेरोनजी, करगुंवर, चन्देरी, थूवौन, पपीरा, और पावागिरी में निर्मित करवाये गये थे।[4]

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–सम्पादन, बलभद्र जैन, पृ0 193

2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 131,

3– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 7,

4– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमाऐं ले0 कमलेश कुमार, पृ0 52

देवगढ़ और बुधई के कुछ विशाल मंदिरों के निर्माता भी यही दोनों भ्राता थे। किवंदती के अनुसार दुधई के पश्चिमी समूह – मंदिरों – बड़ी बारात और छोटी बारात नामक जैन मंदिरों का निर्माण इन्हीं जैन बनिया बन्धु देवपत और खेवपत ने कराया था।[1]

850 से 969 संवत् में देवगढ़ के गुर्जर प्रतिहार वंशी शासकों ने विशेष रूप में श्रीभोज ने संवत्र 919 में मंदिर निर्माण व विकास में महान योगदान दिया था। संवत्र 1121 तक गुर्जर प्रतिहार शासक राजपाल द्वारा देवगढ़ मंदिर संख्या 18 का निर्माण कराया गया था। संवत 1210 में महासामंत उदयपाल ने मूर्तियों के निर्माण में आर्थिक सहयोग दिया था। चन्देल वंशीय शासकों ने भी देवगढ़ में मंदिर निर्माण कार्य में सहयोग दिया था।[2]

इन्द्राणी बहू – सेरोनजी में जैन मंदिरों के निर्माण में भोज वंश और चन्देल वंश के शासकों ने महान योगदान दिया था। यहां मान स्तंम्भ व एक मढ़िया का निर्माण बांसी (ललितपुर) में निवास करने वाली इन्द्राणी बहू ने करवाया था।[3]

देवपाल – इन्होने बानपुर में सहस्त्रकूट चैत्यालय बनवाया था।

उदयपाल– चांदपुर में जैन मंदिरों का निर्माण महा सामंत उदयपाल ने करवाया था।[4]

इन्हीं सबके महत्वपूर्ण योगदानों के परिणामस्वरूप बुन्देलखण्ड के जैन मंदिरों का विकास हो सका था। जिससे यह जनपद दिगम्बर जैन धर्मावलंबियों का पवित्र तीर्थ स्थल बन सका है।

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदुपर, दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र कुमार वर्मा, पृ0 70

2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 104–06,

3– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : सेरोनजी, ले0 लाल चन्द्र जैन, राकेश पृ09 37, 39,

4– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष एवं चांदपुर–दुधई का योगदान ले0 महेन्द्र कुमार वर्मा, पृ0 68

जैन धर्म का विभाजन

जैन धर्म का विभाजन :– महावीर स्वामी के प्रधाम शिष्य थे। उनमें से केवल एक जिसका नाम सुधर्मन था महावीर की मृत्यू के बाद जैन धर्म का मुख्य प्रचारक बना। उसने 22वर्ष तक इस पद पर कार्य किया। इसके पश्चात जम्बू जैन धर्म गुरू के पद पर आसीन हुये उन्होंने 44वर्ष तक इस पद पर कार्य किया। जब मगध में नंद वंश का शासन प्रारम्भ हुआ तब उनकी गृत्यू हुयी। इसके बाद तीन पीढ़ियाँ ऐसे ही बीत गयीं। मगध के अन्तिम नन्द नरेश के समय जैन धर्म के दो गुरू थे। सम्भूत विजय और भद्रबाहु ये दोनो ही उच्च चरित्र वाले तथा विद्धान थे। ऐसा माना जाता हें कि चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में मगध में एक भयंकर अकाल पड़ा। उस समय भद्रबाहु अपने अनुयायियों के साथ दक्षिण में मैसूर की ओर चले गये जबकि कुछ जैन साधुओं ने स्थूल भद्र को अपना मुखिया मान लिया और वे उनके साथ मगध में ही रहे।

स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र में एक सभा का आयोजन किया। इसमें उन्होंने जैन साहित्य को व्यवस्थित कर उसे नया नाम अंग दिया। इससे पूर्व जैन साहित्य की पुस्तकें पूर्व के नाम से विख्यात थी। इस सभा में जैनियों के प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ 12 अंगों की रचना की गयी। अब मगध के जैन साधुओं में प्रविष्ट किया।

जब 12 वर्ष पश्चात् भद्रबाहु अपने अनुयायियों के साथ मगध लौटे तो उन्होंने स्थूल भद्र के नेतृत्व में जो परिवर्तन हुये थे। उन्हें मानने से इनकार कर दिया। उन्होंने वस्त्र धारण करने का भी विरोध किया। परिणामस्वरूप जैन धर्म दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गया – नग्न रहने वाले साधु दिगम्बर कहलाये, जबकि श्वेत वस्त्र धारण करने वाले श्वेताम्बर कहलाये। दिगम्बर सम्प्रदाय की अपेक्षा श्वेताम्बर सम्प्रदाय का अधिक प्रसार हुआ।

दिगम्बर व श्वेताम्बर में अन्तर

1– श्वेताम्बर सम्प्रदाय के साधु सफेद वस्त्र धारण करते है। जबकि दिगम्बर सम्प्रदाय के साधु नग्न रहते है।

2– दिगम्बर सम्प्रदाय में जैन धर्म के सिद्धान्तों का कठोरता से पालन किया जाता हें जबकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में नियमों का पालन उतनी कठोरता से नहीं किया जाता है।

3– दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार वस्त्र मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में बाधक है। जबकि श्वेताम्बर मोक्ष प्राप्ति के लिए नग्न रहना अनिवार्य नहीं मानते ।

4– दिगम्बर के अनुसार स्त्रियों को मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, जबकि श्वेताम्बर के अनुसार स्त्रियों को भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

5– दिगम्बर के अनुसार ज्ञान प्रप्ति के बाद मनुष्य को भोजन की आवश्यकता नहीं रहती वह निराहार रह सकता है। जबकि श्वेताम्बर के अनुसार भोजन आवश्यक है।

6– दिगम्बर के अनुसार महावीर स्वामी ने विवाह नहीं किया था। जबकि श्वेताम्बर के अनुसार उन्होंने विवाह किया था और उनके प्रियदर्शना नाम की पुत्री भी थी।

7– दिगम्बर के अनुसार 19वें तीर्थकर मल्लिनाथ पुरूष थे, जबकि श्वेताम्बर उनको स्त्री मानते है।

8– श्वेताम्बर के मंदिर में मूर्ति के नेत्र होते है। जबकि दिगम्बर के मंदिर में मूर्ति के नेत्र नहीं होते है।

अध्याय-चार

बुन्देलखण्ड के जैन मन्दिरों का इतिहास

अध्याय—4

बुन्देलखण्ड के जैन मंदिरों का इतिहास

भारत देश के हृदय बुन्देलखण्ड क्षेत्र का महत्व सर्व विदित है। इतिहास के पन्ने और संस्कृति इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस क्षेत्र के महत्व, महिमा और प्रतिष्ठा के अनेक कारण रहे हैं। पर उनमें जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण परिलक्षित होता है वह है यहां की अत्यंत प्राचीन और धनी संस्कृति व संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग प्राचीन धार्मिक केन्द्र जो इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण है कि यह क्षैत्र प्रारंभ से ही श्रद्धा—परायण, आचारवान और विचारवान धर्मात्माओं का केन्द्र रहा। परिवर्तन प्रकृति का नियम है और यह क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। इस क्षेत्र की प्राचीन संस्कृति इस बात की ओर संकेत करती है कि यह क्षेत्र पूर्व में देश का सम्पन्न, उन्नत व विकसित क्षेत्र रह चुका है पर हमारा ये दुर्भाग्य ही है कि आज हम इस मूल्यवान निधि प्राचीन संस्कृति की रक्षा के प्रति उदासीन हैं और इसी लिये यह अत्यंत मूल्यवान निधि शनैः शनैः नष्ट होती जा रही है और यदि समय रहते ध्यान नहीं दिया गया तो वह दिन दूर नहीं जब यह सम्पूर्ण निधि अनायास ही काल के गाल में समा जायेगी।

बुन्देलखण्ड में सभी हिन्दू सम्प्रदाय के प्राचीन धर्म—स्थल है पर बहुलता व कलात्मक दृष्टि से जैन धर्म—स्थल का महत्व अधिक है। यहां के हिन्दू धर्म और जैन धर्म से संबंधित मंदिरों के निर्माण में तत्कालीन शासकों की धार्मिक सहिष्णुता तो प्रदर्शित होती ही है पर साथ ही साथ कुशल कलाकारों के कृदय में व्याप्त अप्रत्यक्ष कला का अनोखा सौन्दर्य भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है । इतना ही नहीं इन मंदिरों के निर्माण में जहॉ एक ओर कलाप्रिय शासकों ने अपनी कलाप्रियता का प्रदर्शन किया है वहां दूसरी ओर उस काल की जनता ने भी अपने असीम धार्मिक भावनाओं का प्रदर्शन अनेक मंदिरों के निर्माण द्वारा कराया।

बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थनों में अनेक जैन मंदिर जो आज भी जीर्ण—शीर्ण अवस्था में मौजूद है। (अ) देवगढ़ (ब) चांदपुर—जहाजपुर (स) दुधई (द) मदनपुर (य) बानपुर (र) पावागिरि (ल) सिरौन (व) सिरोनजी (सीरोन खुर्द) (श) गिरार

(ष) ललितपुर व झाँसी खजुराहो इन स्थानों में प्राप्त जैन मंदिर धर्मिक और कलात्मक महत्ता के लिये प्रसिद्ध हैं। यहां प्राप्त जैन मंदिरों का विवरण इस प्रकार है –

(अ) देवगढ़ :– देवगढ़ एक महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। इस स्थान का गरिमापूर्ण इतिहास है जो भारत के ऐतिहासिक पुरातात्विक सांस्कृतिक तथा धार्मिक पटल पर अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।[1] यह उत्तर प्रदेश के ललितपुर जनपद में उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की सीमा पर बेतवा के किनारे, $24^\circ 32'$ उत्तरी अक्षांश और $78^\circ 15'$ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।[2] यह स्थल मध्य रेलवे के दिल्ली–बम्बई मार्ग के ललितपुर स्टेशन से दक्षिण–पश्चिम में 33 किलोमीटर की एक पक्की सड़क से जुड़ा है तथा उसी रेलवे के जाखलौन स्टेशन से इसकी दूरी 13 किलोमीटर है।[3]

देवगढ़ विंध्याचल की पश्चिमी उपत्यका में स्थित नैसर्गिक छटा से भरपूर छोटा सा गांव है। यह बेतवा के मुहाने पर नीचाई पर बसा हुआ है । देवगढ़ का प्राचीन दुर्ग इस पर्वत पर है वह उत्तर दक्षिण में लगभग एक मील लम्बा और पूर्व पश्चिम में लगभग छः फलांग चौड़ा है। इसके नीचे एक आधुनिक दिगम्बर जैन मंदिर, विशाल जैन धर्मशाला, साहू जैन संग्रहालय और शासकीय वन विश्राम गृह भी है। ग्राम के उत्तर में प्रसिद्ध दशावतार मंदिर तथा शासकीय संग्रहालय है। पूर्व में पहाड़ी पर उसके दक्षिण पश्चिमी कोने में एक विशाल प्राचीर है । जिसके पश्चिम में कुंज द्वारक और पूर्व में हाथी दरवाजा है। इसके मध्य एक और प्राचीर है जिसे दूसरा कोट कहते है इसी के मध्य वर्तमान जैन मंदिर और अन्य जैन स्मारक हैं।[4]

1– बुन्देलखण्ड का पुरातत्व , ले0 एस0 डी0 त्रिवेदी, पृ0 76,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 4,
3– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन– प्रकाशन, बलभद्र जैन, पृ0 179,
4– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 5,

इस स्थान का नाम देवगढ़ कब से पड़ा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यहां प्राप्त अभिलेखों से देवगढ़ के विभिन्न नामों का पता चलता है: गुर्जर प्रतिहार नरेश के शासन कालीन विक्रम संवत् 919 के शिलालेख के अनुसार पहले इस स्थान का नाम लुअच्छगिरि था।[1] 12वीं शताब्दी में चन्देलवंशी राजा कीर्ति वर्मा के मंत्री वत्सराज ने इस स्थान पर एक नवीन दुर्ग का निर्माण कराया और अपने स्वामी के नाम पर इसका नाम कीर्तिगिरि रखा। इसी कारण इस स्थान का कीर्तिगिरि पड़ा।[2]

संभवतः 12वीं शताब्दी के अंत में या 13वीं शताब्दी के प्रारंभ में इस स्थान का नाम देवगढ़ पड़ गया। देवगढ़ पड़ गया। देवगढ़ नाम पड़ने के कारण के सम्बन्ध में एकमत नहीं है। श्री पूर्ण चन्द्र मुखर्जी के मतानुसार सन् 850 से 969ई0 तक इस स्थान पर देव वंश का शासन था। इसलिए इस गढ़ कारे देवगढ़ कहा जाने लगा।[3] किन्तु यह मत इतिहास सम्मत नहीं है क्योंकि इस काल में यहां गुर्जर प्रतिहार वंशीय राज्य था।[4] मंदिर संख्या12 के अदिमण्डप के दक्षिण–पूर्वी स्तम्भ पर उत्कीर्ण संवत् 919 के अभिलेख के अनुसार उस स्तम्भ के प्रतिष्ठापक आचार्य कमलदेव के शिष्य श्रीदेव बड़े प्रभावशाली थे। उन्होंने यहां पर भट्टारक गढ़ी की स्थापना की थी। अतः यह सम्भावना है कि आचार्य श्रीदेव के नाम पर उनके भक्तों और अनुयायियों ने इस स्थान को देवगढ़ नाम से प्रसिद्ध किया हो।[5] तीसरा मत जो अधिक बुद्धिगम्य प्रतीत होता है यह कि यहां दुर्ग के अंदरी देवमूर्तियों की प्रचुरता होने के कारण इस स्थान का नाम देवगढ़ पड़ा। एक बहु विदन्ती के अनुसार इस स्थान में देवपत और खेवपत नामक दो भाई रहते थे।

1– मंदिर संख्या 12 के अर्द्ध मण्डप के दक्षिण–पूर्वी स्तम्भ पर उत्कीर्ण विक्रम संवत 919 का अभिलेख – देखिए परिशिष्ट। क्रमांक 4,

2– देवगढ़ दुर्ग के दक्षिण–पश्चिम में राजघाटी के किनारे कीर्ति वर्मा के मंत्री वत्सराज द्वारा संवत 1154 मुं उत्कीर्ण अभिलेख देखिए परिशिष्ट क्रमांक 5

3– रिपोर्ट औन दि एन्टीक्विटीज इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर भाग–1 : ज्योति प्रसाद जैन वीर विशेषांक , 1956,पृ0 42

4– दि एज आफ इम्पीरियल कन्नौज : भारती विघा भवन, जिल्द 4 पृ0 83,

5– मंदिर सं0 12 के अर्द्ध मण्डप के दक्षिण–पूर्वी स्तम्भ पर उत्कीर्ण संवत 919 का अभिलेख देखिए परिशिष्ट। क्रमांक 4

उनके पास पारस मणि थी जिससे वे वैभव सम्पन्न हो गये थे। अपनी सम्पत्ति का उपयोग उन्होंने भव्य देवालय बनवाने में किया। सम्भवतः उसी देवपत के नाम पर इसका नाम देवगढ़ पड़ गया।[1] दूसरी किंवदन्ती के अनुसार इस स्थान की रचना देवों द्वारा की गयी थी तथा उनकी सूक्ष्म कला की स्मृति के रूप में इसे देवगढ़ि कहा जाता है।[2]

निष्कर्ष रूप में विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि यहां उपलब्ध सहस्त्रों देव प्रतिमाओं और देवायतनों के कारण ही यह स्थान देवगढ़ के नाम से विख्यात हुआ।

इस क्षेत्र के चमत्कार के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की किंवदन्तियां प्रचलित है। कुछ लोगों का विश्वास है कि इस क्षेत्र पर रात्रि के समय देव लोग पूजन के लिये आते है। वे आकर नृत्यगान पूर्वक पूजन करते है। कुछ ऐसे प्रत्यक्षदर्शी भक्त लोग हैं जिन्होंने रात्रि के समय मंदिरों से नृत्य और गान की ध्वनि आती सुनी है। शान्तिनाथ भगवान मनोकामना पूर्ण करते है। ऐसा लोगों का कहना है। इसीलिये यह क्षेत्र अतिशय क्षेत्र कहा जाता है।[3]

देवगढ़ के जैन मंदिर– देवगढ़ के सभी जैन मंदिरों का सूक्ष्म सर्वेक्षण किया गया है। जो मंदिर ध्वस्त हो चले है उनकी मौलिकता का अनुमान बिखरे हुए अवशेषों, श्री ए0 कनिंघम, डा0 फयूहरर, सर जान मार्शल तथा दयाराम साहिनी आदि के विवरणों, चित्रों और विशेषताओं के आधार पर किया गया है। मंदिरों के क्रमांक, सुविधा की दृष्टि से मैंने वही स्वीकार किये हैं जो श्री साहनी द्वारा, उनके स्थित क्रम से निर्धारित किये गये थे। और वह कालांतर में शिलाओं पर उत्कीर्ण कराये जाकर मंदिरों से संलग्न कर दिये गये थे। परन्तु वर्तमान में श्री देवगढ़ मैनेजिंग दिगम्बर जैन कमेटी ललितपुर ने पूर्व क्रमांक बदल कर नये क्रमांक संलग्न कर दिये हैं।[4]

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 7,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 7,
3– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 194,
4– नये क्रमांक के लिए परिशिष्ट 2 देखिए,

यहां पर 25 बड़े जैन मंदिर और 9 छोटे जैन मंदिर है।[1] इस प्रकार यहां कुल 34 जैन मंदिर है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

(अ) बड़े मंदिर–

मंदिर संख्या– 1

माप– अधिष्ठान की लम्बाई (पूर्व–पश्चिम) – 33फी, 3इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 31फी, 6इंच

अधिष्ठान की ऊंचाई – 3फी, 10इंच

मण्डप की लम्बाई (उत्तर–दक्षिण) – 20फी, 1,1/2इंच

मण्डप की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 7फी, 4इंच

लम्बाई में एक स्तम्भ से दूसरे स्तम्भ का अंतर – 5फी,12इंच

चौड़ाई में एक स्तम्भ से दूसरे स्तम्भ का अंतर – 5फी, 6इंच

स्तम्भ की कुर्सी समचतुष्कोण – 1फी, 1,1/2इंच

मण्डप की ऊँचाई – (अधिष्ठान से) 9फी, 3इंच

विवरण– ऊपर जाते समय सीधे हाथ की ओर यह मंदिर है। इस मंदिर का उल्लेख श्री कर्निंघम[2] और श्री साहनी[3] ने मंदिर संख्या 2 के रूप में किया है। उन्होंने मंदिर संख्या 1 के रूप में किसी मंदिर का उल्लेख नहीं किया है।

यह पूर्वाधिमुख मंदिर जो कभी 20 स्तम्भों पर आधारित रहा होगा अब 4–4 स्तम्भों की दो पंक्तियों पर आधारित है। स्तम्भों पर एक सादा मण्डप है। जिसका पुनर्निर्माण बाद में हुआ प्रतीत होता है। मध्य के चार स्तम्भ इसके मौलिक अंश है। जब कि शेष चार किसी अन्य स्थान के स्तम्भों की प्रथम पंक्ति के मध्य भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा मोतियां जड़ दी गयी हैं। इनमें खड्गासन और पद्मासन दोनों ही अवस्थओं की मूर्तियां हैं। पश्चिम की दीवार पर पंच–परमेष्ठियों की मूर्तियां भिन्न – भिन्न अवस्था में उकेरी हुई हैं।

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 180, 185–86

2– आर्कलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्टस् ए0 कर्निंघम, जिल्द – पृ0 104

3– एनुअल प्रोग्रेस रिर्पोट आफ दि सुपरिन्टेन्डेन्ट, हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट मोनूमेन्ट्स, नार्दन सर्किल, 1918 : दयाराम सहनी, पृ0 9,

मंदिर संख्या— 2

माप— अधिष्ठान की लम्बाई (पूर्व—पश्चिम) — 24फी, 7इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (उत्तर—दक्षिण) — 23फी, 2इंच

अधिष्ठान की ऊंचाई — समतल

मण्डप की चौड़ाई (पूर्व—पश्चिम) — 7फी,

अधिष्ठान से छत की ऊँचाई — 8फी,

गुमटी का अधिष्ठान समचतुष्कोण — 7फी, 10इंच

गुमटी की (उसके आधार से) ऊंचाई — 7फ, 6इंच

गुमटी की परिधि — 17 फी,

विवरण— सादी बनावट और गर्भ गृह आदि के आभाव से इस मंदिर को उक्त युग का माना जा सकता है।[1] मूलरूप में यह चार—चार स्तम्भों की चार पंक्तियों पर आधारित था लेकिन आज पूर्व के चारों स्तम्भ नहीं है। इनमें से दो की चौकी आज भी है। बाहरी स्तम्भों का अन्तर शिलाखण्डों द्वारा बन्द है। अतः मंदिर के मध्य में केवल दो स्तम्भ ही रह गए है। शेष दीवारी के अंग बन गएं हैं।[2]

इस पूर्वाधिमुख मंदिर के पश्चिम में भी एक द्वार है जो पत्थर की जाली से बन्द कर दिया गया है।[3] इस मंदिर से लगा हुआ कोई मण्डप भी रहा हो जिसके अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं।[4]

मंदिर में स्थयी रूप से मूर्तियों को स्थापित करने के लिये कोई वेंदी नहीं है इस कारण तथा पूर्व और पश्चिम की ओर के दो बरामदों या मण्डपों की सम्भावना से प्रतीत होता है कि यह भवन प्रारंभ में मंदिर के रूप में नहीं बल्कि साधुओं या भट्टारकों आदि के निवास के रूप में उपयोग में लाया जाता रहा होगा। इस समय इसमें दस मूर्तियां स्थपित हैं।

1— देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 12,
2— भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन— बलभद्र जैन, पृ0 181,
3— भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन— बलभद्र जैन, पृ0 181,
4— स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर : भाग 1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रून, पृ0 33,

मंदिर संख्या– 3

माप– अधिष्ठान की लम्बाई (पूर्व–पश्चिम) – 40फी, 8इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 37फी, 9इंच

अधिष्ठान की ऊंचाई – 1फी, 6इंच

मण्डप की चौड़ाई – 7फी, 4इंच

मण्डप के आगे के खुले चबूतरे की चौड़ाई – 5फी, 1इंच

अधिष्ठान से छत की ऊँचाई – 9फी, 2इंच

विवरण– यह उत्तराभिमुख है। यह पूर्व–पश्चिम की आठ–आठ स्तम्भों की तीन और सात स्तम्भों की दो पंक्तियों पर आधारित है। प्रथम और द्वितीय पंक्ति पर खुला मण्डप और द्वितीय से पाँचवा स्तंम्भ पंक्ति पर मंदिर आधारित है। इसमें पूर्व की ओर दो द्वार हैं। यह सम्पूर्ण मंदिर चौथे और पांचवे स्तम्भ के मध्य (उत्तर–दक्षिण) 8इंच चौड़ी दीवार द्वारा दो भागों में विभाजित था। परन्तु अब दीवारी तोड़ कर एक दूसरे को संबंधित कर दिया गया है। इसके उत्तरार्द्ध की छत सपाट थी लेकिन पूर्वार्द्ध पर दूसरी मंजिल भी थी। दूसरी मंजिल गिर जाने से अब यह एक ही मंजिल का रह गया है।[1]

पूर्वार्द्ध में 11 खंडित मूर्तियां हैं। जिसमें भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति अत्यन्त भव्य है। उत्तरार्द्ध में 26 शिला फलक विद्यमान हैं। जिन पर विभिन्न मूर्तियां अंकित हैं।[2]

मंदिर संख्या– 4

माप– अधिष्ठान की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 28फी, 6इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 24फी, 8इंच

अधिष्ठान की ऊंचाई – 1फी, 6इंच

1–(अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग: संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 18
(ब) स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग – 1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रून, पृ0 33,
2–(अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग: संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 18
(ब) स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग – 1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रून, पृ0 33,

मण्डप की लम्बाई (पूर्व–पश्चिम) – 7फी, 3इंच

मण्डप की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 4फी, 11इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई – 8फी,

छत से गुमटी के अधिष्ठान की ऊंचाई – 10इंच

गुमटी का अधिष्ठान समचतुष्कोण – 6फी,

गुमटी की परिधि – 17 फी,

गुमटी की उसके अधिष्ठान से ऊंचाई – 5फी, 10इंच

विवरण – यह दक्षिणाभिमुख है। 18 स्तम्भों पर आधारित है। आगे को निकले हुए दो स्तम्भ मण्डप का निर्माण करते हैं। जिसके ऊपर चार स्तम्भों पर आधारित एक सादी गुमटी है दायां स्तम्भ एक अतिरिक्त चतुष्कोण चौकी पर स्थित है। उसके चारों ओर विभिन्न देवियों का अंकन है। इसके ऊपर वह अष्टकोण हो जाता है। चारों कोनों पर एक फिट तीन इंच लम्बी साकलों सं घंटियों लटक रही है। चतुष्कोंण शीर्ष के चारों ओर तीर्थकरों और उपाध्याओं की पद्रमासन मूर्तियां अंकित हैं।

प्रवेश द्वार अलंकृत है। मंदिर के अठारह स्तम्भों में से दो स्तम्भ मंडप के अन्तर्गत है। बारह को दीवार में चुन दिया गया है और शेष चार मंदिर के बीच में स्थित है। चारों स्तम्भ एक अतिरिक्त चतुष्कोंण चौकी पर स्थित है। दीवारों के भीतर अनेक मूर्तियां जड़ी हुयी हैं।

इसका दो बार जीर्णोद्वार हुआ है प्रथम बार बारहवी शदी में, जिसका संकेत प्रवेश द्वारा के दायें पक्ष में उत्कीर्ण एक लेख में मिलता है। और दूसरी बार 1917–18 में।[1]

मंदिर संख्या – 5

माप– प्रथम अधिष्ठान समचुष्कोण – 18फी, 2इंच

प्रथम अधिष्ठान की ऊंचाई – 2फी, 6इंच

1– ए0 प्रो0 रि0 भाग–2 दयाराम साहनी, 1918, पृ0 9

द्वितीय अधिष्ठान समचतुष्कोण – 11फी, 7,1/2इंच

द्वितीय अधिष्ठान की ऊँचाई प्रथम अधिष्ठान से – 2फी, 1इंच

प्रथम अधिष्ठान से शिखर के अधिष्ठान की ऊँचाई–12फी, 4इंच

शिखर के अधिष्ठान से शिखर की प्रथम मेखला–4फी, 3इंच

शिखर के अधिष्ठान से शिखर की अनुमानित ऊंचाई–13फी,

विवरण – इस मंदिर का नाम सहस्त्रकूट चैत्यालय पूर्णतः सार्थक है। एक सहस्त्र चैत्यों (प्रतिमाओं) का आलय (स्थान) जहां उसे सहस्त्रकूट चैत्यालय का नाम देना उचित ही है। पूर्वी द्वार के भीतर की ओर ऊपर जड़े हुऐ एक शिलालेखा के आठवीं पंक्ति से इसकी पुष्टि होती है। श्री कर्निंघम ने किसी स्थानीय व्यक्ति के कहने से इसके लखपुतली का मंदिर कहा है ।[1]

यह पूवाधिमुख है पुर्व और पश्चिम की ओर दो द्वार की आकृति का कटाव है और उसमें एक–एक कपाट की बनावट में शिलाफलक संयोजित किया गया है। इससे दोनों दिशाओं में एक–एक बन्द दरवाजे का आभास होता है। चैत्यालय में 1008 मूर्तियां बनी हुयी हैं। मंदिर के द्वार पर चैवरधारी यक्ष–यक्षिणी और द्वारपाल की मूर्तियां बनी हुई हैं।[2]

मंदिर संख्या– 7

माप–

प्रथम अधिष्ठान समचुष्कोण – 12फी, 4,1/2इंच

द्वितीय अधिष्ठान समचुष्कोण – 8फी, 1,1/2इंच

प्रथम अधिष्ठान की ऊँचाई – 2फी, 9इंच

द्वितीय अधिष्ठान की ऊँचाई प्रथम अधिष्ठान से – 9इंच

प्रथम अधिष्ठान से शिखर के अधिष्ठान की ऊँचाई – 10फी,

1– ए0 एस0 आई0 आर , जिल्द 10 कर्निघम, पृ0 104,

2–(अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 15,

(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ : प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन पृ0181

शिखर के अधिष्ठान से शिखर की ऊंचाई – 6फी, 9इंच

शिखर की परिधि – 16 फी,

चरणपादुका की वेदी की ऊंचाई – 3इंच

चरण पादुका का शिलापट समचतुष्कोण – 2फी, 5इं

विवरण– यह पूर्वाधिमुख मंदिर चार स्तम्भों पर आधारित है। तथा चारों ओर से खुला है इसमें प्रवेश के लिये सीढ़ियाँ उत्तर और दक्षिण में है। इसकी छत का अन्तर्माग अलंकृत है। इसमें चरण पादुकाओं के दो शिलाफलक विघमान हैं।[1]

मंदिर संख्या– 8

माप– अधिष्ठान की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 21फी, 11इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 20फी,

अधिष्ठान की ऊंचाई – 5इंच

अधिष्ठान से छत की ऊँचाई – 8फी,

छत से गुमटी के अधिष्ठान की ऊंचाई –8फी, 6इंच

मंदिर की लंबाई – 17फी, 11इंच

मंदिर की चौड़ाई – 9फी, 1इंच

विवरण – आठ स्तम्भों पर आधारित लम्बाकार मण्डप और तीन द्वारों वाला यह पूर्वाधिमुख मंदिर किसी भी लक्षण से मंदिर सिद्ध नहीं होता। डा0 भागचन्द्र जैन के अनुसार इसमें साधु या कोई अन्य व्यक्ति निवास करता रहा होगा। बांयी ओर के द्वार की चौखट के ऊपर तीर्थकर की मूर्ति अंकित है। परन्तु यह द्वार का हिस्सा कभी जीर्णोद्वार के संदर्भ में बदला गया होगा।[2]

मंदिर संख्या– 9

माप– अधिष्ठान की ऊंचाई – 8इंच

मण्डप की लम्बाई (उत्तर–दक्षिण) – 22फी, 11इंच

1–(अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 16,

(ब) स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग–1 दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़ ले0 क्लाउज ब्रून, पृ0 34,

2–(अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 15,

मण्डप की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 20फी, 2इंच

इसके पश्चात् आकार कम होकर निम्नमात्र रह जाता है

गर्भ गृह की लं0 (उत्तर–दक्षिण) – 19फी, 10इंच

गर्भ गृह की लं0 (पूर्व–पश्चिम) – 8फी,

विवरण– इस पूर्वाधिमुख मंदिर के अग्र भाग (पूर्व) में एक चबूतरा है जिस पर कदाचित पहले अतिरक्त मण्डप रहा होगा। जैसा कि इस पर बांयी ओर विधमान अर्द्ध खण्डित दीवार तथा उष्णीश रखने के शेष शीर्षो से अनुमान होता है। इस चबूतरे की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) 11फी, 9इं0 है। और अधिष्ठान से छत की ऊंचाई 10फी, 3इंच है। छत सपाट है।

मंदिर का प्रवेश द्वार अलंकृत है। द्वार पर गंगा–यमुना तथा अन्य देवी–देवताओं का अंकन है। इस मंदिर के गर्भ गृह में 6इंच ऊंची, 1फी, 10इंच चौ0 तथा 7फी,8इंच लम्बी एक वेदी है। जिस पर 12 शिलाफलकों पर विभिन्न मूर्तियां विद्धमान हैं।

मंदिर संख्या– 10

माप– अधिष्ठान समचतुषकोण – 12फी, 2,1/2इंच

अधिष्ठान की ऊंचाई – 1फी, 2इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई – 8फी, 10इंच

शिखर के अधिष्ठान से शिखर की ऊंचाई– 4फी, 8इंच

विवरण– यह मंदिर चार अठपहलू स्तम्भों पर आधारित साधारण से गुमटीदार मण्डप के रूप में है। इसके मध्य में उत्तर से दक्षिण एक पंक्ति में तीन चतुष्कोण स्तम्भ स्थित है। इसमें प्रत्येक की गुमटी खण्डित है। स्तम्भ 6फीट ऊंचे हैं। इन तीनों स्तम्भों के चारों ओर देवकुलिकांओं में तीर्थकर साधु, साध्वी और उदासीन श्रावकों की मूर्तियाँ अंकित हैं। और कई अभिलेख उत्कीर्ण हैं।[1]

1– (अ) देवगढ़ की जैन क़ला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 17–18,

मंदिर संख्या– 11

माप– मंदिर की लंबाई – 40फी, 4इंच

मंदिर की चौड़ाई – 30फी,

अधिष्ठान समतल एवं मंदिराकार

अधिष्ठान से पहले खण्ड की ऊंचाई – 8फी, 1इंच

पहले खण्ड की छत से दूसरे खण्ड की छत की ऊंचाई – 9फी,

ऊपर की गुमटी की ऊंचाई – 3फी, 9इंच

ऊपर की गुमटी की परिधि – 5फी, 1इंच

विवरण – यह उत्तराधिमुख दो मंजिल का पंचायतन शैली का मंदिर है। इसके वहिर्भाग पर सादी पंक्तियां हैं। 8 स्तम्भों पर इसका मण्डप बना हुआ है प्रवेश द्वार सुन्दर एवं अलंकृत है। इसमें एक महामण्डप है। महामण्डप में भित्तियों में चुने हुए बारह स्तम्भों के अतिरिक्त चार मध्यवर्ती स्तम्भ हैं। गर्भ गृह में तीन तीर्थकर मूर्तियां हैं। जिनमें से एक दूसरे खण्ड से लाकर रखी गयी है।

उत्तर पूर्व के कोने में दूसरे खण्ड के लिए सीढ़ियां हैं। दूसरे खण्ड पर महामण्डप का द्वार भी अलंकृत है। उन पर मूर्तियां बनी हुयी है। यहां 25 शिलाफलक हैं जिनमें 18 पर खड्गासन (कायोत्सर्ग) और सात पर पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां बनी हुयी हैं। दक्षिण की ओर वेदी पर (गर्भगृह में) पांच मूर्तियां स्थापित हैं। जिनमें से एक नवीन सफेद संगमरमर की है। गर्भगृह का प्रवेश द्वार अलंकृत है।[1]

दूसरे खण्ड की छत पर गर्भगृह के ऊपर एक वायु शिखराकार पाषाण खण्ड स्थापित है। डा0 भागचन्द्र जैन के अनुसार इसे जीर्णोद्वार के समय स्थापित किया गया है।[2]

1– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 18,
(ब) स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग–1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रून, पृ0 35

2–(अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 18,

मंदिर संख्या–13

माप– अधिष्ठान की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 35फी,
अधिष्ठान की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 18फी,
अधिष्ठान – समतल
मण्डप की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 25फी, 6इंच
मण्डप की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 8फी, 5इंच
गर्भगृह की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 8फी, 5इंच
गर्भगृह की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 6फी, 2इंच
अधिष्ठान से छत की ऊँचाई – 10फी,

विवरण– इस मंदिर का मण्डप उत्तराधिमुख है, जब कि इसका गर्भगृह पूर्वमुख है। इसके मण्डप में 20 शिला पट्टों पर विभिन्न तीर्थकरों की कायोत्सर्ग आसन और पदमासन मूर्तियां हैं। गर्भगृह में चार वेदियों पर विघमान सात शिलापट्टों पर तीर्थकरों की आठ मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। यह मूर्तियां कला और सज्जा की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।[1]

मंदिर संख्या– 16

माप– अधिष्ठान की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 49फी, 4इंच
अधिष्ठान की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 29फी, 10इंच
अधिष्ठान की ऊंचाई – 1फी,
अधिष्ठान से अर्धमण्डप की छत की ऊंचाई – 10फी, 2इंच
अधिष्ठान से महामण्डप की छत की ऊंचाई – 11फी,
महामण्डप की छत से गुमटी के छत की ऊंचाई – 7फी,
गुमटी की छत से शिखर की ऊंचाई – 8फी, 8इंच
गुमटी की परिधि – 17 फी,

1– (अ) देवगढ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 20,
(ब) स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग–1 दि जिन इमेजेज आफ देवगढ, ले0 क्लाउज ब्रून, पृ0 39,

विवरण – यह पश्चिमाभिमुख मंदिर है। इसमें चार स्तम्भों पर मण्डप बना है और 6–6 स्तम्भों की 3 पंक्तियों पर एक महामण्डप बना है। इसका तोरण अलंकृत है। महामण्डप के बाहर 14 स्तम्भों की दीवार में चुना दिया गया है, अतः इसके मध्य केवल चार स्तम्भ शेष है। महामण्डप में 25 विशालाकार शिलापट्टों में से आठ पर पद्मासन तथा 16 पर कायोत्सर्गासन तीर्थकर तथा एक पर अम्बिका की मूर्तियां अंकित हैं।[1]

मंदिर संख्या– 17

माप– अधिष्ठान की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 44फी, 8इंच
अधिष्ठान की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 42फी, 2इंच
अधिष्ठान की ऊंचाई – 2फी, 5इंच
मण्डप (पूर्व–पश्चिम) – 8फी,
महामण्डप की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 34फी,
महामण्डप की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 24फी, 6इंच
अधिष्ठान से छत की ऊँचाई – 10फी, 11इंच
छत पर विघमान गुमटी के अधिष्ठान की ऊंचाई – 10इंच
छत से गुमटी के छत की ऊंचाई – 8फी, 9इंच
गुमटी के आधार की ऊंचाई – 1फी, 1इंच
गुमटी की छत से शिखर की ऊंचाई – 8फी, 8इंच
शिखर की परिधि – 14फी, 10इंच

विवरण– यह पश्चिमाभिमुख मंदिर है इसका मण्डप 8 स्तम्भों पर खड़ा है। जिसके सामने के 4 स्तम्भों के अतिरिक्त अन्य 4 स्तम्भ दीवार में चुने हुए हैं। मण्डप में 3 शिलापट्टों पर कायात्सर्गा–सन तीर्थकर मूर्तियां हें। प्रवेश द्वार अलंकृत है। महामण्डप में मध्यवर्ती 4 स्तम्भ अपनी मूल स्थिति में हैं। शेष 12 दीवारों में चुने हुए हैं। महामण्डप में 31 शिलापट्ट हैं। जिनमें से 22 पर कायोत्सर्गासन और 9 पर पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां अंकित है।

1– स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर, भाग–1 दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रून, पृ0 39,

मंदिर संख्या– 18

माप– अधिष्ठान की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 67फी, 6इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 26फी, 9इंच

अधिष्ठान की ऊंचाई – 4फी,

मण्डप के आगे के छायाहीन चबूतरे की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 26फी,

मण्डप के आगे के छायाहीन चबूतरे की चौड़ाई(उत्तर–दक्षिण) 25फी,6इंच

महामण्डप के चबूतरे के अधिष्ठान की ऊंचाई – 1फी, 10इंच

चबूतरे की छत की ऊंचाई – 12फी, 6इंच

छत से शिखर के आधार की ऊंचाई – 12फी, 6इंच

आधार से 90°के कोण तक 4फी, 10इंच और इसके पश्चात् शिखर अठपहलू हो जाता है।

विवरण– यह दक्षिणाभिमुख मंदिर है। इसकी शैली खजुराहो के स्मारकों जैसा प्रतीत होती है। चबूतरे पर 2 स्तम्भ खड़े हैं। मण्डप 8 स्तम्भों पर आधाति है जिनमें पीछे के 4 स्तम्भ दीवार में चुने हुए हैं। मण्डप में सात शिलापट हैं जिनमें 3 शिलापट्टो पर पद्मासन और 4 पर कायोत्सर्गासन तीर्थकर उत्कीर्ण हैं।

महामण्डप का प्रवेश द्वार अत्यंत अलंकृत है और उस पर अंकित मदनिकायें युग धार्मिक–सामाजिक एवं संगीत प्रधान दृश्य अंकित हैं। महामण्डप 16 स्तम्भों पर आधारित है जिसके 12 स्तम्भ दीवारों में चुने हुए हैं। इसमें 11 शिलापट्टों पर पद्मासन और 8 पर कायोत्सर्गासन तीर्थकर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इस मंदिर के गर्भगृह के प्रवेश द्वार का शिरदल बहुत नीचा है प्रतीत होता है कि चौखट का ऊपरी भाग बदला गया है। द्वारपक्षों पर गंगा–यमुना का अंकन है। गर्भगृह में 5 शिलापट्ट जड़े हुए है। गर्भगृह में 7फी, 7इंच 2फीट 2,1/2इंच की एक विशालाकार कायोत्सर्गासन मूर्ति है। अनुमान है कि पहले मूर्ति स्थापित की बाद में गर्भगृह का निर्माण किया गया और द्वार फोड़ कर उसे मूल मंदिर से संबंधित कर दिया गया होगा।[1]

1– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 23,

(ब) स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग –1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रून , पृ0 40–41

मंदिर संख्या– 19

माप– अधिष्ठान की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 16फी,

अधिष्ठान की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 28फी,

अधिष्ठान की ऊंचाई – 8इंच

अधिष्ठान की छत की ऊंचाई – 10फी, 2इंच

छत से गुमटी के अधिष्ठान की ऊंचाई – 1फी, 5इंच

छत से गुमटी के छत की ऊंचाई – 11फी, 10इंच

गुमटी की छत से गुमटी के शिखर की ऊंचाई – 7फी, 3इंच

शिखर की परिधि – 16फी, 9इंच

विवरण– यह दक्षिणाभिमुख मंदिर हे। प्रवेश द्वार गंगा–यमुना, नाग–नागी, तीर्थकर मूर्तियों तथा बाहुबली और चक्रवर्ती भरत की मूर्तियों से सुसज्जित है। इसके मण्डप में 8 स्तम्भ हैं जिसमें मध्य के 4 स्तम्भों के अलावा शेष 12 स्तम्भ दीवारों में चुने हुए हैं। इसमें 12 शिलापट्टट हैं जिनमें से 7 के शीर्षक कटे हुए हैं।[1]

मंदिर संख्या – 20

माप– अधिष्ठान मंदिराकार – 3 इंच ऊंचा

मंदिर की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 25फी, 8इंच

मंदिर की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 23फी, 8इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई – 10फी,

विवरण– इस दक्षिणभिमुख मंदिर के प्रवेश द्वार पर गंगा–यमुना और तीर्थकर आदि की मूर्तियां का अंकन है। मण्डप में 24 स्तम्भ हैं जिसमें से 4 बारह पहलू स्तम्भों के अलावा शेष 12 स्तम्भ दीवारों में चुने हुए है। इसमें 27 शिलापट्ट हैं जिनमें से 14 पपर कायोत्सर्गासन और 13 पर पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां अंकित हैं। गर्भगृह का द्वार साधारण अलंकृत है। गर्भगृह में 5 शिलापट्ट हैं जिनमें से 3पर पद्मासन और 2 पर कायोतसर्गासन मूर्तियां अंकित हैं। भगवान महावीर की पद्मासन मूर्ति अत्यंत सुन्दर एवं मनोज्ञ है।

1– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 23,
(ब) स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग –1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रून , पृ0 40–41

मंदिर संख्या – 22

माप– मंदिर की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 6फी, 9इंच

मंदिर की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 5फी, 2इंच

अधिष्ठान (मंदिराकार) की ऊंचाई – 5इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई – 7फी, 8इंच

छत से शिखर के आधार की ऊंचाई – 10इंच

छत से शिखर की ऊंचाई – 6फी, 4इंच

शिखर की परिधि – 16फी, 9इंच

विवरण – यह दक्षिणाभिमुख मंदिर है। इसका मण्डप 2 स्तम्भों और प्रवेश द्वार के उष्णीष पर आधारित है। प्रवेश द्वार के ऊपर एक पंक्ति पर अभिलेख उत्कीर्ण है। दीवार के वाहिभाग पर तीनों ओर शिखराकृतियां अंकित हैं। गर्भगृह में तीन शिलापट्ठों पर 3 पद्मासन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[1]

मंदिर संख्या – 23

माप – मंदिर की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 14फी, 10इंच

मंदिर की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 8फी,

मंदिर के सामने बढ़ा हुआ अधिष्ठान – 6फी, 10इंच

सतह से अधिष्ठान की ऊंचाई – 2फी, 8इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई – 6फी, 3इंच

छत से गुमटी के आधार की ऊंचाई – 3फी, 10इंच

छत से गुमटी की ऊंचाई – 5फी, 3इंच

गुमटी – चतुष्कोण

विवरण – गर्भगृह के सामने अतिरिक्त अधिष्ठान शायद मण्डप का अवशेष है। प्रवेश द्वार अलंकृत है। इसके ऊपर 22वें तीर्थकर नेमिनाथ के यक्ष पार्श्व का

1– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 24–25,
(ब) स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग –1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रून , पृ0 41,

अंकन है। गर्भगृह में 1फी, 6इंच ऊंची, 1फी, 7इंच चौ0 और 3फी, 10इंच लंबी वेदी पर एक भी मूल मूर्ति स्थापित नहीं है। यहां 5 शिलापट्ट हैं जिनमें से 3 पर कायोतसर्गासन और 1 पर पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां तथा एक पर अम्बिका की मूर्ति अंकित है। यह मंदिर अपने आकार प्रकार से सहस्त्रकूट चैत्यालय का आभास देता है।[1]

मंदिर संख्या– 24

माप– अधिष्ठान की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 15फी, 2इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 9फी, 3इंच

अधिष्ठान की ऊंचाई – 2फी, 8इंच

अधिष्ठान से मण्डप के छत की ऊंचाई – 7फी, 7इंच

अधिष्ठान से गर्भगृह के छत की ऊंचाई – 7फी, 11इंच

गर्भगृह के छत से गुमटी के आधार की ऊंचाई – 9इंच

गर्भगृह के छत से शिखर की ऊंचाई – 7फी, 11इंच

गुमटी – अठपहलू

विवरण– यह दक्षिणभिमुख मंदिर अधिष्ठान और उसके ऊपर लगभग 2फी, की ऊंचाई तक ही मूल रूप में अवशिष्ट है। जीर्णोद्वार के समय इसे इसके मूल रूप के अनुयप ही निर्मित कराया गया है। इसके मण्डप से आगे अलंकृत प्रवेश द्वार है। जिस पर गंगा–यमुना तथा तीर्थकर मूर्तियों का भव्य अंकन है। प्रवेश द्वार के ऊपर एक पंक्ति का अभिलेख हैं। गर्भगृह में 5 शिलापट्ट दीवारों में चुने हुये हैं इनमें 2 अभिलिखित हैं। शिलापट्टों में से 32 पर पद्मासन, एक पर कायोतसर्गासन तीर्थकर मूर्तियां और एक पर घणेन्द्र –पद्मावती (यक्ष–यक्षी) का अंकन है।[2]

1– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 26,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 184,
2– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 26,
(ब) स्टडीज इन साउथ एशियन कल्चर भाग –1 : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़, ले0 क्लाउज ब्रून , पृ0 41–42
(स) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 184,

मंदिर संख्या – 25

माप– अधिष्ठान की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 25फी, 10इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 15फी, 10इंच

अधिष्ठान की ऊंचाई – 1फी, 1इंच

अधिष्ठान से मण्डप के छत की ऊंचाई – 7फी, 7इंच

अधिष्ठान से गर्भगृह के छत की ऊंचाई – 7फी, 6इंच

गर्भगृह के छत से शिखर की ऊंचाई – 5फी, 5इंच

शिखर में 14 चतुष्कोण मेखलायें

विवरण – यह पूर्वाधिमुख मंदिर है। इसका मण्डप 4 स्तम्भों पर आधारित है। जिनमें से सामने के दो स्तम्भों के अतिरिक्त शेष 2 दीवारों में चुने हुए हैं। प्रवेश द्वारा साधारण है। उसके शिरदल के मध्य में कायोतसर्गासन पार्श्वनाथ का अंकन है। इस मूर्ति के बांये एक पंक्ति का अभिलेख उत्कीर्ण है। गर्भगृह में 5 शिलापट्ट हैं। जिनमें 2 पर पद्मासन और 3 पर कायोतसर्गासन तीर्थकर मूर्तियों का अंकन है। एक मूर्ति अभिलिखित भी है।[1]

मंदिर संख्या – 28

माप– अधिष्ठान की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 20फी, 8इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 21फी,

अधिष्ठान की ऊंचाई – समतल

मंदिर की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 25फी,11इंच

मंदिर की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 16फी,

मण्डप के छत की ऊंचाई – 9फी, 8इंच

गर्भगृह के छत की ऊंचाई – 11फी, 6इंच

अंग–शिखर की 90 के कोण तक ऊंचाई (गर्भगृह की छत से) – 6फी,

उसके ऊपर बने त्रिकोण की अनुमानित ऊंचाई – 5फी,

मुख्य शिखर की अनुमनित ऊंचाई (गर्भगृह की छत से) – 23फी,

1– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 26,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 184,

विवरण – यह पूर्णभद्र शैली में निर्मित दक्षिणाभिमुख मंदिर है। इसका अर्धमण्डप वर्तमान में छायाहीन है। उसके सामने के 2 स्तम्भों के चिन्हों से और मण्डप की छत से इसकी छत के जुड़े होने के स्पष्ट प्रमाणों से निश्चित है कि इस पर छाया थी। मण्डप का प्रवेश द्वार अलंकृत है। मण्डप का आकार बहुत छोटा है। गर्भगृह 2 सीढ़ी उतर कर निचाई पर है। इसमें 7 शिलापट्ट हैं। जिनमें 2 पर पद्मासन और 5 पर कायोतसर्गासन मूर्तियां है। इनमें से 3 अभिलिखित हैं।

मुख्य शिखर अधिष्ठान से प्रारंभ होता है और लगभग 16फी. तक कम और उसके ऊपर अधिकाधिक पतला होता जाता है। दक्षिण में प्रवेश द्वार के ऊपर एक अंगशिखर है जिस पर सुन्दर अलंकरण एवं परिकर के मध्य तीर्थकर मूर्तियां हैं। इसकी एक देवकुलिका का तोरण और मुख्य मूर्ति टूट कर गिर गयी थी। जीर्णोद्वार के समय दूसरी मूर्ति तो वहां स्थापित कर दी गयी है परन्तु तोरण आज भी अनुपस्थित है।[1]

मंदिर संख्या – 29

माप– मंदिर की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 12फी. 3इंच

मंदिर की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 12फी.

अधिष्ठान – समतल

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई – 7फी.

विवरण– यह पश्चिमाभिमुख मंदिर है। इसका प्रवेश द्वार सामान्य अलंकृत है और इसके शिरदल पर 3 तीर्थकर मूर्तियां हैं। मंदिर में एक मात्र लघु कक्ष है। इसकी वेदी पर 6 शिलापट्ट हैं। इनमें से एक (संवत् 1201 अभिलिखित) चौबीसी और दूसरा किसी विशाल मूर्ति के अलकरण का अंश, महत्वपूर्ण हैं। चौबीसी के पृष्ठ भाग में, एक शिलापट्ट पर मात्र मण्डल और सिंहासन शेष हैं। अनुमान है कि इसकी मूर्ति भंजक द्वारा काट ली गयी है।[2]

1– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 28,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 185,
2– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 28,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 185,

(ब) लघु मंदिर –

लघु मंदिर संख्या –1

माप– अधिष्ठान की लंबाई (उत्तर–दक्षिण) – 12फी, 8इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (पूर्व–पश्चिम) – 8फी, 6इंच

अधिष्ठान – समतल

अधिष्ठान से मण्डप के छत की ऊंचाई – 7फी, 5इंच

अधिष्ठान से गर्भगृह की ऊंचाई – 8फी,

विवरण – यह लघु उत्तर मुख मंदिर, मंदिर सं0 12 के दक्षिण में पूर्व की ओर स्थित है। इसका 4 स्तम्भों पर आधारित मण्डप साधारण और प्रवेश द्वार अलंकृत है। प्रत्येक दीवार के बाहरी भाग पर 4 स्तम्भाकृतियां हैं और उनके मध्य में एक–एक शिखरायुक्त देवकुलिका का अंकन है। जिनमें एक–एक पद्मासन तीर्थकर उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह में 5 शिलापट्ट हैं। जिनमें से 2 पर पद्मासन और शेष पर कायोत्सर्गासन तीर्थकर मूर्तियां हैं।[1]

लघु मंदिर संख्या – 2

माप– अधिष्ठान मंदिराकार समतल

मंदिर की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 5फी, 10इंच

मंदिर की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 5फी, 9इंच

अधिष्ठान से मण्डप के छत की ऊंचाई – 7फी, 5इंच

विवरण – यह लघु उत्तरमुख मंदिर, मंदिर सं0 12 के दक्षिण में मध्य में है। इसका प्रवेश द्वार साधारण है। पार्श्व की दीवारों पर 5–5 और पीछे की दीवार पर 4 अलंकृत स्तम्भाकृतियां हैं। गर्भगृह में 3 शिलापट्ट हैं। जिनमें एक पर कायोत्सर्गासन और 2 पर पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां हैं।[2]

1–(अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 30,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 185,
2–(अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 30,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 185,

लघु मंदिर संख्या – 3

माप– अधिष्ठान मण्डपाकार

मण्डप की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 8फी,

मण्डप की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 7फी, 1इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई – 11फी, 1इंच

विवरण– यह लघु मंदिर, मंदिर सं0 12 के दक्षिण में पश्चिम की ओर है। यह मंदिर मण्डपाकार है और तीन ओर से खुला है। इसमें एक (7फी 3इंच, 2फी 2इंच) तीर्थकर मूर्ति है जिसके दोनों ओर चंवरधारक थे लेकिन बांयी ओर की चंवरधारक मूर्ति काट ली गयी है।

लघु मंदिर संख्या – 4

माप– अधिष्ठान – समतल

मंदिर की समचतुष्कोण – 5फी, 7इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई – 7फी, 3इंच

छत से शिखर की ऊंचाई – 5फी, 6इंच

शिखर की परिधि – 15फी, 5इंच

विवरण – यह लघु मंदिर, मंदिर सं0 13 के सामने है। यह दक्षिणामुख एक गुमटीदार मंदिर है जिसका जीर्णोद्वार बहुत बड़ी मात्रा में किया गया है। प्रवेश द्वार साधारण अलंकृत है। द्वार पक्षों पर नीचे गंगा–यमुना और शिरदल पर मध्य में एक पद्मासन तीर्थकर मूर्ति है। पश्चिमी दीवार पर 4 स्तम्भाकृतियां हैं, और उनके मध्य में एक शिखरयुक्त मण्डपाकृति है जिसमें एक कायोत्सर्गा–सन तीर्थकर अंकित हैं। उत्तरी ओर पूर्वी दीवार पर भी वही दृश्य अंकित है, परन्तु पूर्वी दीवार पर शिखरयुक्त मण्डपाकृति मध्य में न होकर तीसरे और चौथे स्तम्भों के मध्य में है। गर्भ गृह में एक 5इंच ऊंची, 2फी 7इंच, लंबी और 2फी 3इंच, वेदी है जिस पर कायोत्सर्गासन पार्श्वनाथ की मूर्ति है। इसके अतिरिक्त 2 शिलापट्ट भी हैं। जिन पर पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां अंकित हैं।[1]

1–(अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 30,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 185,

लघु मंदिर संख्या – 8

माप– अधिष्ठान की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 21फी, 7इंच

अधिष्ठन की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 8फी, 4इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई – 7फी,

विवरण– यह लघु पूर्वाधिमुख मंदिर, मंदिर सं0 26 के उत्तर में है। प्राचीन मंदिर का जीर्णाद्वार करके बनाया गया है। प्रवेश द्वार के शिरदल के मध्य में कायोत्सर्गासन तीर्थकर अंकित हैं। गर्भगृह में चार शिलापट्ट हैं जिनमें चार कायोत्सर्गासन और एक पद्मासन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति पर अभिलेख भी है।[1]

लघु मंदिर संख्या – 9

माप– अधिष्ठान की लंबाई (पूर्व–पश्चिम) – 21फी, 5इंच

अधिष्ठान की चौड़ाई (उत्तर–दक्षिण) – 13फी, 10इंच

अधिष्ठान से छत की ऊंचाई – 6फी, 10इंच

विवरण– यह लघु पूर्वाधिमुख मंदिर, मंदिर सं0 27 के दक्षिण में है यह 2 कक्षों में विभाजित है। दोनों में प्रवेश द्वार हैं। यह पूर्णतः खण्डित किसी भवन पर निर्मित आधुनिक मंदिर है। बांये कक्ष में 2 शिलापट्ट हैं जिन पर 2 पद्मासन और 2 कायोत्सर्गासन तीर्थकर मूर्तियां अंकित हैं। दांये कक्ष में 1 शिलापट्ट है जिस पर 2 कायोत्सर्गासन तीर्थकर मूर्तियां अंकित हैं और 2 छोटे–छोटे अभिलेख अंकित हैं।[2]

स्तम्भ – यहां छोटे बड़े 19 स्तम्भ हैं जिनका विवरण इस प्रकार है– स्तम्भ सं01, यह मंदिर सं0 1 के आगे बना हुआ है। इसकी ऊंचाई 5फी, 3इंच और परिधि 3फी, 1इंच है। इसके ऊपर 4 देवकुलिकायें बनी हुयी हैं।

1– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 32,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 186,
2– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 26,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 184,

उनमें 4 कायोत्सर्गासन मूर्तियां अंकित हैं। दक्षिणी देवकुलिका के नीचे अर्धचन्द्रलांछन बना हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि यह मूर्ति चन्द्रप्रभ भगवान की है । इस सादे स्तम्भ के पूर्वी भाग में एक स्तम्भ लेख है।[1]

स्तम्भ संख्या 2– यह मंदिर सं0 1 के पीछे उत्तर में स्थित है। इसके नीचे के भाग में 4 देवकुलिकाओं में अम्बिका, चक्रेश्वरी, धरणेन्द्र और पद्मावती बने हैं। स्तम्भों के मध्य में कीर्तिमुखों के चारों ओर घंटियां लटक रही हैं। इसके ऊपर 4 देवकुलिकायें बनी हुई हैं जिनमें 3 पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां बनी हैं और दक्षिणी देवकुलिका में उपाध्याय परमेष्ठी के उपदेश मुद्रा में अंकित है। इसके निकट एक चौकी है पीछी कमण्डल भी अंकित है। उनके बांयी ओर हाथ जोड़े हुए एक भक्त बैठा है। पश्चिमी देवकुलिका में पंचफणावली युक्त सुपार्श्वनाथ की मूर्ति है। शेष 2 मूर्तियां चिन्ह रहित है। स्तम्भ की ऊंचाई सवा दस फी. है।[2]

स्तम्भ सं0 3 – यह मंदिर सं0 1 के पीछे मध्यवर्ती मानस्तम्भ है। इसके नीचे के भाग में 4 देवकुलिकायें बनी हैं। उत्तर की देवकुलिका में सिंहासनारूढ़ अम्बिका अपने दोनों बालकों और आम्रगुच्छक सहित हैं। पूर्व में गरूड़ पर बैठी चक्रेश्वरी हैं। दक्षिण में नाग और पश्चिम में नागिन है । इनके ऊपर कीर्तिमुखों से कलापूर्ण घंटियां लटक रही हैं। कीर्तिमुखों के ऊपर देवकुलिकायें बनी हैं। पूर्व में पीछी कमण्डलू सहित 6 मुनि उपदेश मुद्रा में हैं। दक्षिण में पीछी–कमण्डलू सहित विलय मुद्रा में 6 अर्जिकायें, पश्चिम में 3 साधु, 3 अर्जिकायें क्रम से पीछी सहित और उत्तर की ओर से श्रावक–श्राविका और साधु साथ जुड़े हैं। इनके मध्य में आचार्य परमेष्ठी उपदेश मुद्रा में आसीन हैं। यहां तक स्तम्भ चतुष्कोण हैं। इसके कोचकों के ऊपर 4 देवकुलिकाओं में चार पद्मासन मूर्तियां हैं।

1– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 35,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 186,
2– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 35,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 186,

स्तम्भ सं0 7– यह मंदिर सं0 6, 7, 8 के मध्य में है। इसके पूर्व और पश्चिम में देवकुलिकायें बनी हुयी हैं। जिसमें गले में माला धारण किये हुऐ कायोत्सर्ग मुद्रा में भट्टारक की एक मूर्ति है। पूर्व में एक पंक्ति का और पश्चिम में तीन पंक्ति का लेख है। यह चौकी सहित 5 फी, 5 इंच का है।[1]

स्तम्भ सं0 8 – यह मान स्तम्भ मंदिर सं0 12 के सामने चबूतरे पर है। अधोभाग में 4 देवकुलिकायें हैं। उत्तर में सिंहवाहिनी पूर्व में मयूरवाहिनी, दक्षिण में जरारूढ़ा और पश्चिम में वृषभारूढ़ा चतुर्भुजी देवी की मूर्तियां हैं। मध्य भाग में कीर्तिमुख से लम्बी लम्बी 3 श्रंखलाओं में बंधी हुयी पंटिकायें लटकती हुयी अंकित हैं। इसके ऊपर भाग में 4 देवकुलिकायें बनी हैं जिनमें एक–एक कायोत्सर्गासम तीर्थकर मूर्तियां हैं। यह अठपहलू है और 13फी 8इंच, ऊंचा है।[2]

स्तम्भ सं0 9 – यह मंदिर सं0 12 के सामने बांयी ओर है। यह 16 पहलू और 8फी, 7इंच ऊंचा है। इसपर कोई अंकन या अलंकरण नहीं है। यह किसी स्मारक के स्तम्भ का अवशिष्ट मध्य भाग मात्र है।[3]

स्तम्भ सं0 10 – यह स्तम्भ मंदिर सं0 12 के मामण्डप में रखा है। इस पर क्मशः 2 और 10 पंक्तियों के 2 अभिलेख उत्कीर्ण हैं। उसके ऊपर देवकुलिका में पदमासन तीर्थकर मूर्ति बनी हुयी है। यह उत्यन्त साधारण, चौकोर और 6फी, 2इंच ऊंचा है।[4]

स्तम्भ सं0 11– यह मान स्तम्भ मंदिर सं0 11 के सामने तथा मंदिर सं0 12 के दक्षिणर में है। यह तीन कटनीदार चौकी पर स्थित है। और सतह से 18 फी, 5इंच ऊंचा है। इसके निचले भाग में 4 देवकुलिकायें है। इनमें उत्तर की ओर धरणेन्द्र –पद्मावती, पूर्व में करूड़वाहिनी 10 भुजी चक्रेश्वरी, दक्षिण में द्वादश भुजी मयूर वाहिनी महामानसी, पश्चिम में वृषभारूढ़ा अष्ट भुजी काली देवी उत्कीर्ण हैं।

1– (अ) देवगढ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 35–36,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 187,
2– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 36,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग:संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 187–88,
3– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 36,
4– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 36,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 188,

स्तम्भ पर फूल पत्तियां, श्रंखलायुक्त घंटियों का अंकन बहुत सुन्दर है। ऊपर के भाग में चारों दिशाओं में 4 कोष्ठक हैं। उत्तर की ओर आचार्य परमेष्ठी उपदेश मुद्रा में पदमासन में हैं। उनके दोनों ओर पीछीधरी एक साधु और अंजलिबद्ध दो–दो भक्त बैठे हैं। पूर्व की ओर विक्रम संवत् 1111 का एक अभिलेख है। उसके ऊपर उपदेश देती हुयी एक अर्जिका है। उसके दोनों ओर वस्त्राभूषणधारिणी अंजलिबद्ध 3–3– श्रीविकायें बैठी हुयी हैं। दक्षिण में उपदेश मुद्रा में अर्मिका अंकित है। उनके पीछी कमण्डलू दोनों हैं। उनके दोनों ओर एक–एक आर्मिका और 2–2 श्राविकायें विनय मुद्रा में आसीन हैं। पश्चिम में मध्य में उपाध्याय परमेष्ठी उपदेश मुद्रा में बैठे हैं उनके दोनों ओर एक–एक साधु और दो–दो श्रावक बैठे हैं। इनके भी ऊपर 4 देवकुलिकायें बनी हुयी हैं। इनके शिखरों के ऊपर लघु आमलक और कलश बने हैं। इनके दक्षिण में सप्तफणोच्छादित पार्श्वनाथ कायोत्सर्गासन मुद्रा में हैं। शेष तीन ओर कयोत्सर्गासन तीर्थकर प्रतिमायें हैं।[1]

स्तम्भ सं0 12– यह मंदिर सं0 12 के दक्षिण में स्थित है। इसके चारों ओर 11–11 पंक्तियों में 4–4 पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां अंकित हैं। यह चौकी समेत 18फी, 7,1/2इंच, ऊंचा चतुष्कोण स्तम्भ है।[2]

स्तम्भ सं0 13– यह मान स्तम्भ मंदिर सं0 14 के सामने दांयी ओर है। इसके अधोभाग में चारों ओर देवकुलिकायें बनी हुयी हैं। पश्चिम की देवकुलिका में अम्बिका तथा शेष में यक्षी हैं। इनके ऊपर चारों ओर 11–11 पंक्तियों में 4–4 तीर्थकर प्रतिमायें हैं। मूर्ति समूह के ऊपर छोटे–छोटे दो आमलक और उनके ऊपर कलश हैं। यह 11फी1इंच, ऊंचा है।

स्तम्भ सं0 14 – यह मंदिर सं0 15 के सामने स्थित है। अधोभाग में 18 मेखलायें हैं। यह किसी स्मारक का शेष अंश है। इसे लाकर स्थापित कर दिया गया है। कीर्तिमुखों के ऊपर लताओं और पत्रों का सुन्दर अंकन है। ऊपरी भाग में एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा है जिसमें चारों ओर कयोत्सर्गासन तीर्थकर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इसकी ऊंचाई सतह से 6फी, 9इंच है।[3]

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 37,
2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 188,
3– देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 38,

स्तम्भ सं0 15 और 16 – यह दोनों स्तम्भ मंदिर सं0 18 के सामने हैं। अधोभाग में मंगलघट बने हुए हैं। जिनमें ऊपर पत्र–पुष्पों का अलंकरण है। मध्य में जंजीरों में घंटियों लटकी हुयी है। दांयी ओर के स्तम्भ पर विक्रम संवत् 1121 का एक लेख है। श्रंखलाओं के ऊपर कीर्तिमुख है। ऊपर चारों ओर कोष्ठक बने हुए हैं। दोनों स्तम्भों पर उत्तर की ओर ग्रंथ हाथ में लिये आचार्य परमंष्ठी हैं। पादपीठ में पीछी–कमण्डलु है। इनके नीचे की ओर अर्यिकायें हैं। शेष तीनों ओर पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां हैं। बायें स्तम्भ पर आचार्य परमेष्ठी के सामने साधु और अर्यिकायें उपदेश श्रवण करते हुए दिखाये गये हैं। ये 16 पहलू और 13फी, 10इंच ऊंची हैं।[1]

स्तम्भ सं0 18 – यह मंदिर सं0 26–27 के मध्य में है। इसके अधोभाग में देवकुलिकायें बनी हैं, जिन में धरणेन्द्र–पद्मावती, अम्बिका आदि देवियां उत्कीर्ण हैं इनके ऊपर पत्रावली लतायें हैं। मध्य में कीर्तिमुखों से घंटियां लटक रही हैं। उनके ऊपर देवकुलिकायें हैं जिनमें पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां हैं। यह 16 पहलू पैर सतह से 4फ, 9इंच ऊंचा है।[2]

कुंजद्वार – यह द्वार पर्वत के पश्चिम की ओर है और प्राचीन दुर्ग का मुख्य द्वार है। यह 19 फी, ऊंचा और 10,1/2 फी, चौड़ा है। यह वर्तमान में जीर्ण–शीर्ण स्थिति में है। इसके दोनों पाश्वों में पस्तर निर्मित दो चौकियां हैं तथा दुर्ग में प्रवेश करने हेतु 1फी, 9इंच चौड़ी 3 सीढ़ियां हैं। इस द्वार के दोनों ओर 15फी, चौड़ा प्राचीन दुर्ग का प्रथम प्राचीर है। इसका तोरण भव्य और कलापूर्ण है। इस द्वार के दक्षिण में लगभग 100 गज की दूरी पर मुख्य सड़क और मंदिरों के बीच एक पक्का मार्ग बन गया है। 3

हाथी दरवाजा– दुर्ग के प्रथम प्राचीर में पूर्व की ओर दरवाजा है। हाथियों का आवागमन इसी से होता था इसी कारण इसका नाम हाथी दरवाजा पड़ा।

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 188,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 39,
3– (अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 41,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग : संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 189,

द्वार के भीतर बांयी ओर एक शिलाफलक 8फी, की ऊंचाई पर लगा है। जिसमें उपाध्याय परमेष्ठी अंकित है। हाथ में ग्रंथ लिये हुये हैं किन्तु वह कुछ खण्डित हो गया है। इनके दोनों ओर अंजलिबद्ध साधु खड़े हैं। उनके हाथों में पीछी है। उपाध्याय परमेष्ठी अंकित है। हाथ में ग्रंथ लिये हुये हैं किन्तु वह कुछ खण्डित हो गया है। इनके दोनों ओर अंजलिबद्ध साधु खड़े हैं। उनके हाथों में पीछी है। उपाध्याय के ऊपर पद्मासन में एक तथा उसके दोनों ओर कायोत्सर्गासन में एक–एक तीर्थकर प्रतिमायें हैं इसके बगल में एक देवकुलिका बनी है जिसमें एक पद्मासन तीर्थकर प्रतिमा है। किन्तु इसका मुखमण्डल खण्डित है इस प्रतिमा के कंधों पर जटायें बिखरी हुयी हैं। श्रीवत्स और अष्ट प्रातिहार्य का अंकन है। दोनों ओर एक–एक पद्मासन तीर्थाकर मूर्ति है।

द्वार के भीतर दोयी ओर सतह से 7फी, 8इंच की ऊंचाई पर एक शिलापट्ट है। इस देवकुलिका में सप्तफण युक्त कायोत्सर्गासन पार्श्वनाथ हैं। पादपीठ के दोनों ओर दो–दो मानवाकृतियां हैं जों खण्डित हैं। इसके ऊपर पद्मासन में एक तीर्थकर मूर्ति है जिसके दोनों चंवरवाहक हैं। शिलापंट के भीतर की ओर देवकुलिका में बैठे हुये यक्ष–युगल अंकित हैं। एक तीर्थकर मूर्ति कमलासन पर पद्मासन में आसीन है। शिर के ऊपर दो क्षत्र हैं।[1]

(ब) चांदपुर–जहाजपुर :–

चांदपुर–जहाजपुर ललितपुर जनपद के बालाबेहट परगना के अंतर्गत हैं। चांदपुर 24°30'उत्तरी अक्षांश तथा 78°18'पूर्वी देशान्तर पर मध्य रेलवे के ललितपुर–बीना लाइन पर धौरा स्टेशन से लगभग 3 किलोमीटर दूर उत्तर पूर्व की ओर स्थित है।[2] यह गांव जंगलों के मध्य स्थित है। इसी के निकट रेलवे लाइन के दूसरी तरफ पश्चिम की ओर जहाजपुर नाम का गांव बस गया है।[3] इस प्रकार चांदपुर पूर्व और जहाजपुर पश्चिम की ओर हैं।

1–(अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0. भागचन्द्र जैन, पृ0 41–42,
(ब)भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन–संपादन, बलभद्र जैन, पृ0 189–90,
2– डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ,झाँसी (1965) : ई0 बी0 जोशी, पृ0 333,
3– बुंदेलखण्ड का पुरातत्व, ले0 एस0 डी0 त्रिवेदी, पृ0 87

चन्देलवंश के शासक चन्द्रवर्मन (चन्द्रवर्मा) ने अपने नाम पर चन्द्रपुर की स्थापना की थी। यही चन्द्रपुर आगे चलकर अपभ्रंश रूप में चांदपुर के रूप में परिवर्तित हो गया। यहां के संवत् 1207 के इस शिलालेख द्वारा यह ज्ञात होता है। कि चांद पुर के मंदिरों का निर्माता वच्छ (वत्सराज) के गोत्र का उदयपाल नामक व्यक्ति था, जो संभवत् चन्देल शासक मदनवर्मन (1128–64 ई0) के समकालीन था। हो सकता है कि वह मदनवर्मन के समय का क्षत्रीय रहा हो या कोई समृद्धशाली व्यक्ति रहा हो।[1]

चांदपुर–जहाजपुर के जैन मंदिर – चांदपुर जहाजपुर में चन्देल शासकों की कला–प्रियता के साथ–साथ धार्मिक सहिष्णुता के अद्भुत दर्शन होते हैं। इन्होंने जहां एक ओर हिन्दू मंदिरों का निर्माण कराया वहीं दूसरी ओर जैन मंदिरों और जिन प्रतिमाओं का भी निर्माण करया। जैन मंदिरों और प्रतिमाओं का काफी महत्व है।

यहां लगभग एक किलोमीटर के क्षेत्र में प्राचीन स्मारकों के भग्नावशेष बिखरे हुये हैं। पहला मंदिर समूह रेलवे लाइन के एक ओर (पूर्व की ओर) भी हैं और इसमें सभी जैन मंदिर हैं।[2] यहां एक विशाल कोट से घिरी हुयी जगह में अब केवल 3 जैन मंदिरों के भग्नावशेष ही शेष हैं।[3]

मंदिर संख्या 1– (शान्तिनाथ का प्रथम मंदिर) – यह मंदिर ऊंचे चबूतरे पर छतरीनुमता बना है। यह सादा ही है तथा केवल 4 पहलदार स्तम्भों से युक्त वितान के रूप में है। गर्भगृह ,अंतराल, यह मण्डल अवशेष नहीं हैं पर गर्भगृह का द्वार अलंकरण युक्त है। द्वार स्तम्भ के केन्द्र में डाढ़ीयुक्त द्विभुजी आकृति है, जो कमलामाल ग्रहण किये है। उसके एक ओर नागी दूसरी ओर शालभंजिका है। द्वार स्तम्भ के नीचे वाला शिलापट्ट गज, सिंह आदि आकृतियों से भलीभांति अलंकृत है।[4]

1– ए0 एस0 आई0 आर0 : भाग 10 : ए0 कनिर्घम, पृ0 97,
2– ए0 एस0 आई0 आर0 : भाग 10 : ए0 कनिर्घम, पृ0 96,
3– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 201,
4– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर–दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 68

मंदिर संख्या 2– (शान्तिनाथ का द्वितीय मंदिर) – शान्तिनाथ के प्रथम मंदिर के पास ही उत्तर पूर्व की ओर शान्तिनाथ का दूसरा मंदिर है जो अब भग्नावशेष रूप में है। इस मंदिर का द्वार दक्षिण की ओर है और छोटा है। गर्भगृह के अन्दर लगभग 15फी, ऊंची शान्तिनाथ की विशालकाय प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। पादपीठ पर केन्द्र के युगल हिरणों के अलावा युगल सिंह और उनके दोनों ओर एक–एक ध्यानी मुद्रा में तीन तीर्थंकर प्रदर्शित हैं। दहिनी ओर के शिलापट्ट पर बीच में कायोत्सर्ग मुद्रा में 2 तीर्थंकर तथ उनके नीचे कल्पवृक्ष हैं जिसके नीचे की केन्द्र की आकृति नष्ट हो चुकी है पर इसके आस–पास एक पुरूष व एक स्त्री की आकृतियां उभंगी मुद्रा में है। इसके गर्भगृह के आगे 4 स्तम्भों से युक्त एक मण्डप के अवशेष हैं। इससे प्रतीत होता है कि यह मंदिर पंचायतन शैली में निर्मित था।[1]

मंदिर संख्या 3– उपरोक्त मंदिरों के उत्तर पश्चिम की ओर पास ही एक मंदिर भग्नावशेष रूप में है। यहां मंदिर के नाम पर केवल 3 स्तम्भ से युक्त एक वितान ही शेष है। चौथा स्तम्भ टूटा हुआ है।[2]

रेलवे लाइने के पश्चिमी और जहाजपुर में केवल 1 मंदिर में ही कुछ अंश जैनियों के मिले हैं। यहां से कुछ दूर पर और भी जैन मंदिर और मूर्तियां हैं, लेकिन पूरी तरह नष्टप्राय हैं।[3]

(स) दुधई – दुधई 24°27' उत्तरी अक्षांश तथा 78°24' पूर्वी देशान्तर पर ललितपुर से दक्षिण में लगभग 27 कि0मी0 दूर है और भौर्रा रेलवे स्टेशन से लगभग 7मील (11कि0मी0) की दूरी दक्षिण पूर्व की ओर कच्चे मार्ग पर सघन जंगलों के मध्य स्थित है।[4]

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर–दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 68–69,

2– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर–दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 69,

3– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 201,

4– (अ) झांसी गजेटियर, 1965 : ई0 वीं0 जोशी, पृ0 337,

(ब) बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, ले0 एस0 डी0 त्रिवेदी, पृ0 87.

दुधई गांव का पुराना नाम महौली था। झांसी से प्राप्त एक अभिलेख के अनुसार दुधई का पूर्व नाम दुग्धकुप्या था।[1] यहां के मंदिरों का निर्माण दसवीं से तेरहवीं शताब्दी के मध्य हुआ था।[2]

दुधई के जैन मंदिर – दुधई के जैन मंदिरों में दो श्रेष्ठ मंदिरों के अवशेष हैं और दो मंदिर पूर्णरूपेण धूल–धूसरित हो चुके हैं।[3]

मंदिर संख्या 1– (आदिनाथ का मंदिर) – यह मंदिर ब्रह्मा मंदिर एवं बाराह मंदिर के समीप ही स्थित है। इस मंदिर में वर्तमान समय में केवल गर्भगृह और मण्डप के भाग ही शेष हैं। इसकी बाहरी सीमा तथा वहां के अन्य अवशेषों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह मंदिर निश्चम ही नागा शैली में निर्मित रहा होगा।

मण्डप के चारों स्तम्भ सादे हैं पर ऊपर के शिलापट्ट कलापूर्ण हैं। इन पर संगीत, नृत्यादि की विभिन्न मुद्राओं से युक्त मूर्तियां, नागवल्लिकाओं की प्रतिमायें अंकित हैं। इनके मध्य में नजयुक्त तीर्थकर मूर्ति है। गर्भगृह के मुख्य द्वार के मध्य में पद्मासन आदिनाथ की मूर्ति है, जिसके बांयी ओर कटिहस्त मुद्रा में पुरूषाकृति है एवं पदपीठ पर ध्वज चिन्ह वृषभ तथा शासनदेव व देवियां उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह के अंदर 13फी, ऊंची विशालकाय आदिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में भव्य प्रतिमा है। इस मूर्ति के पादपीठ पर केन्द्र में एक वृषभ के अलावा एक हिरण अंकित है। आदिनाथ के शिर के चारों ओर कमलदल युक्त आभामण्डल प्रदर्शित है। मुख्य आदिनाथ की प्रतिमा के पास बांयी ओर चंवरधारी युक्त आदिनाथ की प्रतिमा है। यहां पर गज पर आरूढ़ चंवरधारी युक्त कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ की मूर्ति है। इसके ऊपर केन्द्र में त्रिछत्र, माल्यधारी तथा दोनों ओर एक–एक नग्न पुरूषाकृति व एक–एक गज अंकित है।

1–"दुग्धकुप्योहमर्थ ग्राम" अभिलेख की दसवीं पंक्ति, इपी0 इण्डिका भाग1, पृ0 214–217
2– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर–दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 67,
3–ए0 एस0 आई0 आर0 : भाग 10 : ए0 कनिंघम, पृ0 92–93

मुख्य प्रतिमां की दाहनी ओर ध्यानी मुद्रा में पार्श्वनाथ की मूर्ति है जिनके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में एक-एक तीर्थकर की प्रतिमायें अंकित हैं। ये दोनों तीर्थकर चंवरधारी पुरूषाकृतियों तथा सिंह व्याल, वृषभव्याल आदि से अलंकृत हैं। पार्श्वनाथ के ऊपर त्रिछत्र है, पर ऊपर का अन्य भाग ध्वस्त हो चुका है।[1]

मंदिर संख्या 2– (शान्तिनाथ का मंदिर) – आदिनाथ के मंदिर के सम्मुख की उत्तर दिशा में शान्तिनाथ का विशाल मंदिर है, पर वर्तमान अवस्था में इस मंदिर का गर्भगृह ही शेष है और उस पर भी इसकी छत वाला भाग नष्ट हो चुका है। इस गर्भगृह में शान्तिनाथ की 12फी, ऊंची पद्मासन मूर्ति है जिसकी भुजाओं वाला हिस्सा नष्ट हो चुका है पर पादपीठ के केन्द्र में कीर्तिमुख तथा आस पास एक–एक हिरण, एक–एक आराधक एवं एक विशालकाय शार्दूल प्रदर्शित है। इस मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर लगभग 10 फी, ऊंचाई में पार्श्वनाथ की प्रतिमायें हैं। ये प्रतिमायें चंवरधरियों तथा करिहस्त मुद्रा में दो पुरूषाकृतियों के अलावा त्रिछत्र, माल्यधारियों, विधाधरों, गजादि तथा कर्णयुक्त सर्पकुण्डली से अलंकृत है।[2]

इन मंदिरों के अतिरिक्त पश्चिमी समूह के मंदिरों में बड़ी बारात एवं छोटी बारात नामक दो जैन मंदिरों के भग्नावशेष हैं। स्थानीय लोग इन्हें बनिया की बरात कहते हैं। ये दोनों मंदिर दुधई–देवगढ़ वाले मार्ग पर प्रथम समूह के मंदिरों से लगभग आधे मील की दूरी पर स्थित हैं। इनके सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि जैन बनिया बन्धु देवपथ खेवपत ने इनका निर्माण कराया था जनश्रुति के अनुसार इस स्थल पर कभी दो बाराते आकर रूकी थीं और उसी रात को देवी प्रकोप से ये सारे बाराती पाषाणमय हो गये थे।

ये मंदिर एक दूसरे के आसने सामने तथ एक दूसरे के समीप ही हैं। कर्निंघम के मत में – ये मंदिर अधिकांशतः नष्ट हो गये हैं। इनकी मूर्तियां कुछ तो नष्ट हो गयीं हैं और कुछ अभी पूर्ण सुरक्षित हैं तथा श्रेष्ठ भी हैं।[3]

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर–दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 69,

2– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक : जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर–दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 69–70,

3– ए0 एस0 आई0 आर0 : भाग 10 : ए0 कर्निंघम, पृ0 93–95

मंदिर संख्या 2 – (पंचमढ़ी) ग्राम के उत्तर की ओर पर्वत पर लगभग 500 मी0 की दूरी पर यह स्थित है। यहां एक चबूतरे पर 5 मढ़ बने हुये हैं। 4 मढ़ चारों कोनों पर और एक सबके मध्य में बना है। चारों मढ़ों की ऊंचाई 15फी, तथा बीच के मढ़ की ऊंचाई 20फी, है। प्रत्येक मढ़ में एक–एक कायोत्सर्गासन मूर्ति देसी पत्थर की 5फी, 6इंच की दीवार से जोड़ कर खड़ी की गई हैं। प्रत्येक मूर्तिपर लेख अंकित हैं। सभी मढ़ पूर्वाभिमुख हैं।[1]

मंदिर संख्या 4 – (खण्डित मढ़) – शान्तिनाथ मंदिर से लगभग 300 गज आगे यह खण्डित मढ़ है। अब यह टीले के रूप में है। इसके अंदर स्थित 9फी, ऊंची एक मूर्ति घुटनों तक दबी खड़ी है।

मंदिर संख्या 5 -- (चम्पोमढ़) – खण्डित मढ़ से उत्तर की ओर लगभग 200 मी0 की दूरी पर चम्पोमढ़ है। इस समय यहां एक ही मढ़ है, किन्तु चारों ओर मूर्तियों और मंदिरों के इतने अवशेष हैं जिससे अनुमान होता है कि यहां भी चारों कोनों पर चार मढ़ बने रहे होगें। मंदिर के बाहर चार पायों पर मण्डप बना हुआ है। प्रवेश द्वार पर नाना प्रकार के देवी –देवता, पशु–पक्षियों, देव विमान एवं जिन मूर्तियां तथा पत्थर का तोरण द्वार बने हैं। प्रवेश द्वार से गर्भगृह 4,1/2 फी, नीचाई में है। गर्भगृह में अष्टप्रातिहार्य युक्त तीन मूर्तियां हैं। मध्य की मूर्ति 9फी, 3इंच ऊंची है, इसके दांये–बायें 7–7 फी, ऊंची भगवान महावीर की मूर्तियां हैं। इनके चरणों के समीप 2,1/2–2,1/2 फी, के 6 इन्द्र और चार वाहक हैं। मूर्तियों के हाथ खण्डित हैं, इनके ऊपर दीवार में 2 पद्मासन लाल पाषाण की मूर्तियां अंकित हैं।

इस मढ़ के तीनों कोनों पर वर्तमान में कोई मढ़ नहीं है, केवल भग्नावशेषों के टीले हैं। लेकिन मढ़ के दक्षिण की ओर एक अर्द्ध–भग्न मढ़ है। इस मढ़ में शान्तिनाथ–कुन्थुनाथ–अरनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्तियां हैं। मध्य की मूर्ति 10फी, और शेष दोनों मूर्तियां 7–7 फी, ऊंची हैं।[2]

1–(अ)बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः मदनपुर ले0 विमलकुमार, जैन सोंरया पृ0 79–80,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 201,
2–(अ)बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः मदनपुर ले0 विमलकुमार, जैन सोंरया पृ0 80,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 204,

इस मढ का नाम चम्पोमढ़ पड़ने का कारण चम्पोवृक्ष का अधिक मात्रा में होना है।

मंदिर संख्या 6 – (मोदीमढ़) – चम्पोमढ़ से पाटनपुर नगर की ओर 2 फर्लांग की दूरी पर मोदीमढ़ स्थित है। यह पूर्वाधिमुख है। इसका शिखर जीर्ण–शीर्ण है। गर्भगृह का फर्श उखड़ा हुआ है। मढ़ की दीवारें 5फी, 6इंच चौड़ी और 25फी, ऊंची हैं। इसमें तीन मूर्तियां हैं। मध्य में शान्तिनाथ की 9फी, ऊंची हैं। इसमें तीन मूर्तियां हैं। मध्य में शान्तिनाथ की 9फी, ऊंची मूर्ति है, उसके दांये ओर बांये कुन्थुनाथ और अरनाथ की प्रतिमायें हैं। तीनों पर लेख है। इसके चारों तरफ प्राचीन फर्श, दालान के अवशेषों के साथ चारों कोनों पर चार मढ़ होने के प्रमाण हैं। दांयें कोने वाला मढ़ धराशायी हो गया है परन्तु भगवान ऋषभदेव की 8फी, ऊंची कायोत्सर्गासन मूर्ति एक वृक्ष की जड़ के आधार से झुकी हुयी खड़ी है।[1]

(य) बानपुर – बानपुर क्षेत्र ललितपुर जनपद के अंतर्गत ललितपुर से 32 मील महरौनी से 9 मील और निकटवर्ती मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जिले से केवल 6 मील की दूरी पर स्थित है। इस क्षेत्र से एक मील आगे बानपुर गांव हैं।

बानपुर का बाणपुर नाम से संस्कृत महाभारत में अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। पौराणिक गाथाओं के अनुसार यह दैत्यराज बाणासुर की राजधानी रही थी। कदाचित् उसी के नाम पर इसका नाम बाणपुर पड़ा जो कालांतर में बानपुर कहलाने लगा। जैन शासन के अनुसार यहां वन्यकुमार नाम का राजा हुआ था जो जैन धर्म का अनन्य भक्त था। कहते हैं उसने यहां दुर्ग की भी स्थापना की थी। सम्भव है उसके नाम पर यह बानपुर कहलाया हो।[2]

1–(अ) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः मदनपुर ले0 विमलकुमार, जैन सोंरया पृ0 81,
(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 205,
2– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाशमड़वैया, पृ0 18–19

बानुपर के जैन मंदिर – बानपुर की दक्षिणी दिशा से बानपुर–महरौनी मार्ग पर दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र स्थित है। यह क्षेत्र लगभग 250 फी ग 185 फी, में स्थित है। इसके चारों ओर परकोटा बना है किन्तु यह कहीं–कहीं से टूट गया है। क्षेत्र में कुल 5 जैन मंदिर हैं। प्रथम 4 मंदिर चबूतरे पर बने हैं। पांचवां मंदिर चबूतरे के नीचे बने हौज के दूसरी ओर है।

मंदिर संख्या 1 – प्रवेश कक्ष में देशी प्रस्तर से निर्मित 5फी, ऊंची कायोत्सर्गासन तीर्थकर मूर्ति है। मूर्ति पर तीर्थकर की पहचान का कोई संकेत शेष नहीं है। मुख्य मूर्ति के दोनों ओर अन्य तीर्थकरों व शासन देवियों की मूर्तियां अंकित हैं। अन्दर की आधुनिक ढंग से सज्जित वेदिका पर विक्रम संवत् 1142 की संगमरमर पाषाण भगवान ऋषभनाथ की मूर्ति है।

मंदिर संख्या 2 – यह मंदिर प्रथम मंदिर से ही संलग्न है। मंदिर के बाहरी हिस्से में एक तीर्थकर मूर्ति 9फी, 9इंच की है। इसके भीतरी भाग में 8फी, 6इंच की कायोत्सर्गासन मूर्ति है। इस मूर्ति के चरणपाद के दोनों ओर छोटी–छोटी मूर्तियां अंकित हैं।

मंदिर संख्या 3– यह क्षेत्र के मध्य का मुख्य मंदिर है। प्रवेश द्वार के ऊपरी तोरण पर क्षेत्रपाल की मूर्ति है। अंदर को वेदी पर श्रीचरण स्थापित है। साथ ही एक भव्य संगमरमर की 8इंच की पद्मासन तीर्थकर मूर्ति भी है। इस मंदिर के वाह्य दीवारों पर तीनों तरफ 19 आलों की आकृति वाले आयतों में युगादि देव, यक्ष, अप्सरा, युगलदेव आदि की मूर्तियां अंकित हैं।

मंदिर संख्या 4– इस मंदिर को शान्तिनाथ जिनालय अथवा बड़े बाबा का मंदिर कहते हैं। इस शिखर रहित मंदिर में 15फी, ऊंची तीर्थकर शान्तिनाथ की मूर्ति है। इसके कुछ अंग खण्डित हैं। इस मूर्ति के बांये दायें तीर्थंकर कुंन्थुनाथ और अरनाथ की 7–7 फी, की ऊंची कायोत्सर्गासन मूर्तियां हैं। इन पर लेख अंकित हैं। इसके वाह्य पार्श्वभित्ति पर एक पद्मासन मूर्ति अंकित है।[1]

1–(अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 205,
(ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाशम्ड़वैया, पृ0 19,

मंदिर संख्या 5 – (सहस्त्रकूट चैत्यालय) – उपरोक्त मंदिरों के सामने यह सहस्त्रकूट चैत्यालय है। यह लगभग 40फी, ऊंचा और 22फी,चौड़ा है। यह कलात्मक और पच्चीकारी युक्त है । इसके निर्माण सम्बन्धी विवरण सिद्ध क्षेत्र अहारजी (मध्य प्रदेश) क्षेत्र पर शान्तिनाथ के पादपीठ पर उत्कीर्ण लेख से प्राप्त होते हैं।

इस सहस्त्रकूट चैत्यालय का निर्माण काल विक्रम संवत् 1001 है। इसके परिक्रमापथ की दीवारों में बाहर भीतर अनेक प्राचीन सरस्वती, गंगा–यमुना, अम्बिका आदि की मूर्तियां अंकित हैं। अन्तर्भाग में 8फीX4फी के शिलाखण्ड पर चारों ओर एक सहस्त्र अष्ठमूर्तियां अंकित हैं।[1]

इस क्षेत्र के अहाते में कई मंदिरों और मूर्तियों के भग्नावशेष हैं। इस अतिशय क्षेत्र के अतिरिक्त बानपुर कस्बे में दो विशाल जैन मंदिर और हैं। जो अति भव्य और रमणीक हैं। इनमें बड़ा मंदिर तो बहुत प्राचीन और बहुत ऊंचा है।[2]

(र) पावागिरि (पावाजी) – पावागिरि 25°5′ उत्तरी अक्षांश तथा 78°28′ पूर्वी देशान्तर पर ललितपुर जनपद के अंतर्गत ललितपुर से झांसी जाने वाले बस मार्ग पर ललितपुर से 48 कि0मी0 दूरी पर दो पहाड़ियों सिद्ध की पहाड़ी एवं पवा की पहाड़ी के मध्य चेलना नदी के बांये तट पर स्थित है।

जैन मंदिर क्षेत्र सिद्धों की पहाड़ी पर स्थित है। यहाँ पर दो मढ़ियां बनी हैं। जिसमें चरण–चिन्ह बने थे परन्तु वे अब नहीं हैं। कहा जाता है कि एक साधु पहाड़ी की मढ़िया पर आकर रहा जो कभी नीचे नहीं उतरा वहीं उसकी मृत्यु और दाह संस्कार भी हुआ। हो सकता है कि उसी की स्मृति में इसका नाम सिद्धों की मढ़िया पड़ा।

1–(अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 203,
(ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाशम्ड़वैया, पृ021–22,
2–(अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 203,
(ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाशम्ड़वैया,पृ0 22,

पावागिरि के जैन मंदिर –

नायक की गढ़ी – यहां गढ़ी के पूरे निशान, परकोटा बावड़ी सीढ़ियां तथा कमरों के भग्नावशेष अब भी हैं। वस्तुतः यह नायक की गढ़ी नहीं बल्कि एक विशाल जैन मंदिर का खण्डहर है। इसकी पुष्टि वर्तमान नवीन विशाल जैन मंदिर के भेयरे से होती है।[1]

यह 1800 वर्ष प्राचीन बतायी जाती है और यह बुन्देलखण्ड के प्राचीन 7 भेयरे (देवगढ़, सेरोनजी, करगुवां, चन्देरी, फुवोन, पकौरा, पवाजी) में से एक है। कहा जाता है कि ये सातों भोयरे देवपत होवपत भाइयों के बनवाये हुए हैं। इस भोयरे का प्रवेश द्वार बहुत ही छोटा है। इसकी ऊंचाई और चौड़ाई लगभग 5फी. है। चार सीढ़ियों को पार करने के पश्चात द्वितीय द्वार अंदर की ओर मिलता है, जो लगभग 2फी. ऊंचा और इतना ही चौड़ा है। इस द्वितीय द्वार को पार करने पर एक लम्बा गर्भगृह है, जिसमें 2फी. ऊंची वेदी पर सामने की ओर तीन मूर्तियां और बांयी ओर तीन मूर्तियां हैं। ये समस्त मूर्तियां काले तेलिया पत्थर की हैं। सामने की तीन पद्मासन मूर्तियां पार्श्वनाथ, आदिनाथ और सम्भवनाथ की हैं। प्रथम दो मूर्तियां 3 फी. ऊंची और अंतिम तीसरी मूर्ति 2फी. ऊंची है। मूर्तियों की पादपीठ पर अपभ्रंश भाषा के लेख अंकित हैं। बांयी की ओर की 3 पद्मासन मूर्तियां मल्लिनाथ, नेमिनाथ एवं अजितनाथ की है। इनमें नेमिनाथ की मूर्ति 3फी. ऊंची और शेष दोनों मूर्तियां लगभग 2फी. ऊंची हैं। मूर्तियों की पादपीठ पर लेख अंकित हैं।[2]

क्षितिपाल (क्षेत्रपाल) की मढ़िया – इसी गर्भगृह के सम्मुख एक छोटी सी मढ़िया है जो क्षितिपाल की मढ़िया कहलाती है। इसके एक कक्ष में अनेक मूर्तियां हैं। जो संवत् 299 से लेकर सवत् 1345 तक की हैं। इनमें से एक आदिनाथ की पौने दो फी. ऊंची पद्मासन मूर्ति है जिस पर संवत् 299 अंकित है। पंचपीठ पर सर्वो का अंकन है एवं दोनों ओर 2–2 आराधिकायें अंजलिबद्ध मुद्रा में है। ऊपर 2 विधाधर हैं।

1–(अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 203, (ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 कमलेश कुमार, पृ0 52

2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 203,

सिद्ध का मंदिर – वर्तमान नवीन मंदिर के समीप दांयी ओर मंदिर के पृष्ट भाग में एक ऊंची पहाड़ी पर 1 मंदिर है जिसे सिद्ध का मंदिर या सिद्ध की गुफा कहा जाता है। इसमें एक शिलाखण्ड पर 4 मुनियों के चरण–चिन्ह अंकित है। और उनके ऊपर 30फी, ऊंची छतरी बनी हुयी है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में स्वर्णभद्र आदि 4 मुनियों ने इसी स्थान पर तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया था। हिन्दी निर्वाण काण्ड में कहा गया है "

"स्वर्णभद्र आदि मुनिचार, पावागिविर शिखर मझार।
चेलना नदी तीर के पास, मुक्ति गये वन्दों नित तास।",[1]

इसी के समीप भूनरे बाबा का चबूतरा है। यहां के भूरे बाबा सभी की कामना पूरी करते हैं। इस कारण इसे अतिशय क्षेत्र कहा जाता है। सिद्धों की मढ़िया तथा सिद्धों को मंदिर पर मुनियों के निर्वाण प्राप्त करने के कारण इसे सिद्ध क्षेत्र भी कहा जाता है।[2]

(ल) सिरौन का जैन मंदिर – ललितपुर जनपद के महावरा नगर से 6 कि0मी0 दक्षिण–पूर्व की ओर सिरौन ग्राम है। यहां 50 फी, ऊंचा एक भव्य जैन मंदिर है, जिसमें एक पद्मासन तीर्थकर प्रतिमा है। गांव के निकटवर्ती जंगल में अनेक खण्डित मूर्तियां बिखरी पड़ी हुयी हैं। जो 11वीं शताब्दी से लेकर 13वीं शताब्दी तक की है।

(व) सेरोनजी (सीरोन खुर्द) – सेरोंजी ललितपुर जनपद के अन्तर्गत ललितपुर के उत्तर–पश्चिम में 78°19' पूर्वी देशान्तर तथा 24°49' उत्तरी अक्षांश में लगभग 20 कि0मी0 दूर खेडर नदी के किनारे स्थित है।[3]

वर्तमान सेरोनजी ग्राम प्राचीन काल में सीयहोणि के नाम से प्रसिद्ध था जिसकी पुष्टि ग्राम से प्राप्त अभिलेख से होती है। लगभग 10वीं शताब्दी में यहां का राज्यपाल उन्दभट यहां सीयहोणि में रहता था।

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 199,
2– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक: पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें, ले0 कमलेश कुमार, पृ0 53–54,
3– झांसी गजेटियर – 1965 : ई0 बी0 जोशी, पृ0 362,

निश्चय ही यह विस्तृत क्षेत्र का प्रशासनिक केन्द्र रहा होगा । यहां प्राप्त शिलालेखों के अनुसार विक्रम संवत् 954 से लेकर संवत् 1451 तक यहां का निर्माण कार्य होता रहा था।[1]

सेरोनजी के जैन मंदिर – श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र गांव से कुछ दूर पर स्थित है। क्षेत्र के चारों ओर 200 फी. लम्बा परकरेटा बना हुआ है। जिसका निर्माण 200 वर्ष पूर्व देवीसिंह ने कराया था। क्षेत्र के द्वार में प्रवेश करते ही सामने मान स्तम्भ है, जिसे बांसी की इन्द्राणी बहू ने बनवाया था।[2]

प्रांगण में पहले मंदिर में एक बड़ा गर्भगृह है, जिसमें एक वेदी है। इसमें प्राचीन मूर्तियां हैं। वेदी के चारों ओर दीवार के सहारे खण्डित, अखण्डित प्राचीन मूर्तियां रखी हैं।

दूसरा मंदिर भगवान शान्तिनाथ का है। यह भोयरेनुमा मंदिर है। इसका निर्माण किंवदन्ती के अनुसार देवपत खेवपत ने करवाया था। मंदिर में एक शिलापट्ट पर 18 फी. ऊंची मूर्ति अंकित है। इसके अगल बगल अरनाथ और कुन्दनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्तियां अंकित हैं। मंदिर का प्रवेश द्वार बहुत छोटा, है पौने तीन फी. ऊंचा और 1,1/2 फी. चौड़ा है। द्वार के तोरण पर द्वादस राशियां (देवियां) अंकित हैं। चौखट पर कायोत्सर्गासन और पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां अंकित हैं। दरवाजे की दोनों ओर दो शिलाओं पर सहस्त्रकूट चैत्यालय का दृश्य अंकित है। भगवान के अभिषेक के लिये दोनों ओर जीने बने हुए हैं।

शान्तिनाथ मंदिर के बगल में दो मंदिर जीर्ण–जीर्ण अवस्था में हैं। जिनमें प्राचीन मूर्तियां हैं। मंदिर से बाहर धर्मशाला है। जिसके दीवार के सहारे तीर्थकर और देवी–देवताओं की प्राचीन मूर्तियां रखी हैं। बाहुबली की एक अद्भुत मुर्ति भी है।[3]

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 197,
2–(अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 195,
(ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः सेरोनजी, ले0 लालचन्द्र जैन राकेश, पृ0 38–39,
3–(अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0196,
(ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः सेरोनजी, ले0 लालचन्द्र जैन राकेश, पृ0 38,

गांव में और आस पास दो-तीन मील के घेरे में प्राचीन मंदिरों के अवशेष हैं। एक टीले पर जो कि एक विशाल मंदिर का खण्डहर है एक पद्मासन जैन (भगवान महावीर) मूर्ति रखी हुयी है। इसका सिर नहीं है। इसके धड़ तक का भाग 9फी. ऊंचा है। इसे लोग बैठादेव कह कर पूजते हैं।[1]

इसी प्रकार यहां चारों ओर बिखरे हुए टीलों की संख्या 42 है जो प्राचीन मंदिरों के भग्नावशेष माने जाते हैं। प्राचीन मंदिरों के धराशायी होने से ये टीले बन गये हैं। बैठादेव के पश्चिम में एक बावड़ी और कुंआ है तथा उसी के निकट आठ जैन मंदिरों के खण्डहर हैं प्रत्येक में धर्मचक्र हैं।[2]

परकोटे के बाहर दांयी ओर सन् 1961 ई0 में खुदायी होने पर देवी निकलीं, अनेक स्तम्भ, मूर्तियां और धर्मचक्र निकले। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां कोई विशाल मंदिर था जिसका विध्वंत हो गया।[3]

परकोटे के बांयी ओर कुछ आगे चलकर एक पाषाण द्वार खड़ा हुआ है। उसके ऊपर तीर्थकर मूर्तियां अंकित हैं। इसे लोग "धोबी की पौर" कहते हैं। वस्तुतः यह किसी प्राचीन मंदिर का द्वार है। इसके पास पत्थरों का ढेर लगा हुआ है जिसमें मूर्तियों और मंदिरों के पाषाण खण्ड हैं। यहां मंदिर थे इस बात के प्रमाण अब भी इन स्थानों में हैं।[4]

इसी प्रकार क्षेत्र के पीछे मंदिरों के खडहर बिखरे पड़े हैं जिनको देखकर अनुमान होता है कि यहां लगभग 22 जैन मंदिर थे।

(श) गिरार का जैन मंदिर – श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र गिरार ललितपुर जनपद के महावरा नगर से 16 कि0मी0 दक्षिण पूर्व की ओर 24°19 उत्तरी अक्षांश और 78°56 पूर्वा देशान्तर में है। यहां भगवान वृषभ देवं (ऋषभनाथ) का एक विशाल जैन मंदिर है जो यहां के तीर्थ क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है।

1–(अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0196,
(ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः सेरोनजी, ले0 लालचन्द्र जैन राकेश, पृ0 38,
2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0196,
3– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0197
4– (अ) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0196,
(ब) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांकः सेरोनजी, ले0 लालचन्द्र जैन राकेश, पृ0 38,

(ब) ललितपुर – ललितपुर उत्तर प्रदेश के दक्षिणी कोने में 24°11 से 25°57 उत्तरी अक्षांश तथा 78°25 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। यह ललितपुर जनपद का मुख्यालय है।[1] मध्य रेलवे के झांसी–वीना जंकशन के बीच ललितपुर है।

ललितपुर के जैन मंदिर – ललितपुर नगर के बीच विशाल एवं प्राचीन चार चैत्यालय तथा चार शिखर–व्रत जैन मंदिर हैं।

चार चैत्यालय निम्न हैं।[2]

1– श्री ऋषभनाथ जिन चैत्यालय, गांधीनगर

2– श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन चैत्यालय , गांधीनगर

3– श्री दिगम्बर जैन तारण–तरण चैत्यालय, कटरा बाड़ार

4– श्री आदिनाथ दिगम्बर जिन चैत्यालय, सिविल लाइन्स।

चार जैन मंदिर निम्न हैं।[3]

1– श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अटा मंदिर, सावरकर चौक

2– श्री दिगम्बर जैन नया मंदिर ,मौठानापुरा

3– श्री दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर जी, सरदारपुर

4– श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल जी, स्टेशन रोड, सिविल लाइन्स।

श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल जी – यहां का सबसे मुख्य जिनालय है। यह रेलवे स्टेशन से 4 फर्लांग की दूरी पर एक विशाल कोट के अन्दर अद्‌भुत जिन बिम्ब एंव चैत्यालयों से सुशोभित है। इसके प्रमुख हाथी द्वार से प्रवेश करते ही सामने भव्य ऊंचा मान स्तम्भ है।[4]

1– स्टेटिस्टिकल, डेस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकर एकाउण्ट आफ दि एन0 डब्लू प्राविन्सेज आफ इण्डिया – 1874 : ई0 टी0 एटकिन्शन, पृ0 304
2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200,
3– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200,
4– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200,

मान सतम्भ के बाद की जमीन के समतल से लगभग 10 मीटर की ऊंचाई पर एक टीले पर विशाल परकोटे से वेष्टित मंदिर है जहां 9 प्राचीन वेदियां है। मंदिर नं0 3 दरवाजे के सामने ही है। यह भगवान अभिनन्दन नाथ का जिनालय है। इसमें भगवान अभिनन्दन नाथ की श्याम वर्ण पाषाण की 4 फी, ऊंची पद्मासन मूर्ति सं0 1243 की स्थापित हैं।[1]

इसी के नीचे क्षेत्रपाल जी के नाम से एक विशालखण्ड है, जिसके निकट एक कुण्ड है। इसी मंदिर की दालान के खम्भे में नीचे व ऊंचे खण्ड में भी चन्द्रप्रभ स्वामी की एक प्राचीन मूर्ति है। मंदिर नं0 4 में वि0 सं0 1223 की सफेद पाषाण की सुन्दर मूर्ति है जिसमें आवाज आती है।[2]

मंदिर जी के प्रांगण में एक विशालकाय हाथी है, जिसके संबंध में जनश्रुति है कि मध्य रात्रि के समय श्री क्षेत्रपाल जी की सवारी नगर परिक्रमा हेतू निकलती है।[3]

मंदिर नं0 7 में लगभग 7फी, ऊंची वि0सं0 1706 में निर्मित भगवान पार्श्वनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्ति चट्टान में उत्कीर्ण है जिनके चरण से लेकर मस्तक के ऊपर तक 7 फणों से युक्त सर्प चिन्ह बना हुआ है। इसकी पालिश चमकादार है।[4]

इसी के निकट प्राचीन भोयरा है जिसमें चट्टान में उत्कीर्ण 12 तीर्थकरों की तथा 35 देव–देवियों की मूर्तियां हैं। भगवान बाहुबली की मनोहर मूर्ति है। चट्टान में उत्कीण्र पार्श्वनाथ स्वामी की 6फी, ऊंची एक कायोत्सर्गासन मूर्ति भी है।[5]

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200,
2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200,
3– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200,
4– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200,
5– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः संकलन–संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200,

मंदिर संख्या 9 ऊंचाई पर स्थित है। इसके भीतर की वेदिका के पीछे अति प्राचीन विशाल कायोत्सर्गासन प्रतिमा आवरण से आवेष्टित है। वेदी के सामने ही द्वार के ऊपर एक आले के भीतर की ओर एक जिन प्रतिमा है पास ही एक वेदिका में भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित है।

क्षेत्रपाल जी के अंदर के सभी मंदिर अतिशय युक्त हैं।[1]

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग: संकलन-संपादक, बलभद्र जैन, पृ0 200.

सोनागिरी के जैन मंदिर

सोनागिरी – सोनागिरी, झाँसी–दिल्ली मार्ग पर दतया से 30 कि0मी0 दूरी पर स्थित है।

यह क्षेत्र जैन मंदिरों के कारण भारत के मानचित्र में एक उल्लेखनीय स्थान बनाये हुए है। यहां पहाड़ी पर लगभग 80 जैन मंदिर स्थित हैं। जिनमें से अधिकांश के भग्नाणशेष बचे हैं।

इन्हीं जैन मंदिरों के कारण यह क्षेत्र तीर्थ क्षेत्र कहलाता है। इस तीर्थ की स्थापना के मूल में जिस आध्यात्मिक भावना का विकास हुआ था । वह भावना थी आत्मिक शांति लाभ और इस क्षेत्र से संबंधित वीतराग तीर्थकर या महर्षियों के आदर्श से अनुप्रमाणित होकर आत्म कल्याण की । यह क्षेत्र प्रायः 9वीं शताब्दी के बाद में हैं।[1]

जैन धर्म का प्रभाव यहां प्राचीनकाल से रहा है यह तो उपलब्ध स्त्रोतों से भलीभांति प्रकट होता है। स्मारकों की विशालता और विपुलता, मूर्तियों की कलात्मकता और अधिकता से धार्मिक प्रभावना की अधिकता का बोध होता है।

मूर्तियों में तीर्थकरों तथा यक्ष–यक्षियों की मूर्तियों का बहुत बड़ा अनुपात है पर यहाँ जन जीवन के विभिन्न पक्षों का अंकन बहुत कम मात्रा में हुआ है। सोनागिरी में जैन धर्म के प्रभाव परिणामस्वरूप यहाँ के विभिन्न स्थानों में जैन मंदिरों का निर्माण भिन्न–भिन्न समयों में हुआ है।

यहाँ के मंदिर अतिशय क्षेत्र कहे जाते है। गुप्त काल से लेकर 18वीं शदी तक यहाँ जैन मन्दिरों का निर्माण होता रहा था। इनके निर्माण पर गुप्त काल गुर्जर प्रतिहार काल, कलचुरि काल, चन्देल काल और मुगल काल, की शैलियों का प्रभाव पड़ा है।

1– मध्य प्रदेश में पर्यटन , सोनागिरी विशेषांक 1999–2000 पृ0 41–44,

मंदिर संख्या 1– यह मंदिर पूर्वाधिमुखी है तथा चार स्तम्भों पर बना हुआ है। इसमें 3 तीर्थकरों की मूर्तियां स्थित हैं इसमें एक मूर्ति भगवान पार्श्वनाथ की है जिसके सिर पर सर्प फण स्थित हैं।

अन्य दो मूर्तियाँ क्रमशः शांतिनाथ व नेमिनाथ की हैं।

जैन धर्म के 16वें तीर्थकर शान्तिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थापित प्रमिमा भव्य है इसकी पादपीठ पर लांछन मृग का अंकन अत्यान्त कलात्मक हैं।

नेमिनाथ की प्रतिमा ध्यानमुद्रा में है। जिनके श्री मुख का प्रशान्त भाव अवलोकनीय है। इनके पादपीठ पर चामरधारी अनुचरों के अतिरिक्त उपसकों का अंकन दृष्टव्य है।

मंदिर संख्या 2– यह अत्यन्त प्राचीन भवय पष्चिमाभिमुख मंदिर है और पंचायतन शैली का सान्धारप्रसाद है।

पहले अर्धमण्डप बना हुआ है उसमें से 6 सीढ़ी पार करने के पश्चात् एक चबूतरा आता है। फिर 6–6 स्तम्भों की 6 पंक्तियों पर आधारित एक महामण्डप हैं। मण्डप के बांये तीन फीट के स्थान में महामण्डप के फर्श से 1फीट ऊंची व 40 फीट लंबी वेदी बना दी गयी है और उस पर 20 शिलापट स्थापित कर दये हैं। जिनमें से दो पर पद्मासन और शेष पर कायोत्सर्गासन तीर्थकर मूर्तियां अंकित हैं। महामण्डप से अन्तराल में पहुंचा जाता है जिसके दाँयें–बाँयें एक–एक–मढ़िया विघमान हैं।

यह यहाँ का ऐतिहासिक व भव्य मंदिर है। इसके महामण्डप में 18 लिपियों और भाषाओं वाला ज्ञानशिला नामक सुप्रसिद्ध अभिलेख उत्कीर्ण है।

मंदिर संख्या 3– इस मंदिर का मण्डप उत्तराधिमुख है जबकि इसका गर्भगृह पूर्वमुखी है।[1]

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, 1999 पृ0 24–25.

इसके मण्डप में 20 शिला पदों पर विभिन्न तीर्थकर की कायोत्सर्ग आसन और पदमासन मूर्तियाँ है। गर्भगृह में चार वेदियों पर विघमान साम शिलापट्टों पर तीर्थकरों की आठ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह मूर्तियाँ कला और सज्जा की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

मंदिर संख्या 4 – बीच पहाड़ी पर लगभग 1,1/2 मी0 ऊंची कुर्सी पर उत्तराभिमुख जैन मंन्दिर निर्मित है। इस मंदिर की देवकुलिका में बनी वेदिका पर 5 सर्पफणों के छत्र से शोभित एवं काले पत्थर से निर्मित सुपार्श्वनाथ जी की स्थापना प्रतिमा स्थापित है जिसकी पादपीठ पर उनका लांछन स्वास्तिक अंकित है। सुपार्श्वनाथ की मुख्य मूर्ति के दोनों पार्श्वो में संगमरमर से कायोत्सर्ग मुद्रा में निरूपित पार्श्वनाथ की दो अपेक्षाकृत छोटी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। गर्भगृह के समक्ष स्तम्भों पर आधारित मण्डप के अतिरिक्त मंदिर में तीन ओर बरामदों के साथ लघु प्रांगण का प्रावधान है।

लगभग 18वीं शदी में निर्मित इस मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार के समक्ष दो स्तम्भों पर आधारित लघु मण्डप निर्मित है, जिसके ऊपर मराठा शैली का लघु शिखर सुशोभित है गर्भगृह के ऊपर बुन्देला शैली पर आधरित अन्नत शिखर बना हुआ है जिसके पार्श्वो में छोटे गुम्बद भी प्रावधानित है। मंदिर के चारों कोणों पर निर्मित ऊंचे बुर्ज भव्य एवं सुदर्शनीय हैं।

मंदिर संख्या 5 – यह मंदिर 19वीं शताब्दी में निर्मित माना गया है। इस मंदिर की दो देवकुलिकाओं में से मुख्य देवकुलिका में संगमरमर से निर्मित चन्द्रप्रभनाथ, नेमिनाथ तथ पघप्रभनाथ की ध्यानस्थ प्रतिमाएँ हैं। मुख्य प्रतिमा के समक्ष महावीर की पीतल निर्मित प्रतिमा प्रतिष्ठित है। देवकुलिका में निर्मित विमानवेदी ज्यामितीय डिजायनों के साथ विविध पुष्पालकरणों से सज्जित है जिसमें मेहराब युक्त तीन लघु प्रवेश द्वार बने हुये हैं।[1]

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक , 1999 पृ 26–27,

दूसरी देवकुलिका में सर्पफणों के छत्र से सुशोभित पार्श्वनाथ के अतिरिक्त आदिनाथ, चन्द्रप्रभनाथ तथा शान्तिनाथ की ध्यानस्थ प्रतिमाएँ एक पंक्ति में स्थापित हैं। इसके पार्श्वो में संगमरमर निर्मित चंद्रप्रभनाथ की तीन ध्यानी प्रतिमाओं के साथ पीतल निर्मित तीन जिनों की ध्यानस्थ प्रतिमाएँ भी रखी हैं इस देवकुलिका के तीन लघु प्रवेश द्वारों की मेहराब दन्तकुलिका के तीन लघु प्रवेश द्वारों की मेहराब दन्तलिका युक्त होने के अतिरिक्त अन्य सज्जा पूर्ववर्ती देवकुलिका के समान है।

चहारदीवारी से आवृत मंदिर के प्रवेशद्वार के ऊपर निर्मित मराठा शैली के शिखर के साथ गर्भगृह के ऊपर बनाये गये अन्नत बुन्देला शिखर का संयोजन दर्शनीय है।

मंदिर संख्या 6 – पहाड़ी पर इस दिगम्बर जैन मंदिर का परिसर लगभग 100 मी० क्षेत्रफल में स्थित हैं। इस मंदिर की मुख्य देवकुलिका 6 स्तम्भों पर आधारित है। जिसके मध्य में तीर्थकर पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में निरूपित प्रतिमा स्थापित है। लगभग 19वीं शताब्दी में निर्मित इस मंदिर के गर्भगृह के ऊपर बुन्देलाशैली का शिखर बना हुआ है।

मंदिर संख्या 7 – यह लगभग 18वीं शताब्दी में निर्मित मंदिर है। इसके गर्भगृह में शीतलनाथ की श्वेत संगमरमर से निर्मित कायोत्सर्ग मुद्रा में निरूपित प्रतिमा स्थापित है। मुख्य प्रतिमा के दोनों पार्श्र्वो में तीन पक्तियों में संगमरमर तथा पीतल से निर्मित चौबीस जिनों की ध्यानों तथा खड़गासन मूर्तियां प्रतिष्ठित की गयी है।[1]

स्तम्भों पर आधारित मंदिर की विमान वेदिका अत्यन्त अलंकृत है जिसकी दीवारों पर विभिन्न वानस्पतिक डिजायनों के अतिरिक्त जैन धर्म से सम्बन्धित विभिन्न लांछन यथा वृषभ, गज, स्वास्तिक, सिंह, अश्व आदि का अंकन किया गया है।

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक , 1999 पृ 28–29,

गर्भगृह के समक्ष 12 स्तम्भों पर आधारित विशाल मण्डप बना हुआ है जो प्रवेश द्वार से जुड़ा है। छोटे किन्तु प्रभावशाली प्रवेश द्वार के ऊपर मराठा–शैली का लघु शिखर तथा गर्भगृह के ऊपर बुन्देला शैली के उन्नत प्रतिमायें उल्लेखनीय हैं।

चूंकि यह छोटा कस्बा है इसलिए पहले यहाँ आने के साधन अपर्याप्त रहा करते थे परन्तु जैसे–जैसे पर्यटकों की संख्या में वृद्धि हुयी है सोनागिरी में पर्याटकों, दर्शनार्थियों के लिए धर्मशालायें व लॉज खुल गये हैं। पर्यटन की दृष्टि से सोनागिरी एक महत्व का केन्द्र बनता जा रहा है।

यहाँ प्रतिवर्ष होली के आसपास एक विशाल मेला लगता है जिसमें भारतवर्ष से ही नहीं वरन् विदेशों से भी पर्यटक आते हैं। लगभग 10 दिन चलने वाले इस मेले में जैन मुनि प्रवचन सत्संग इत्यादि सम्पन्न करते हैं। कई ट्रेनों को इस मेले के दौरान सोनागिरी स्टेशन पर विशेष रूप से रोका जाता है।[1]

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक , 1999 पृ 30.

गर्भगृह के समक्ष 12 स्तम्भों पर आधारित विशाल मण्डप बना हुआ है जो प्रवेश द्वार से जुड़ा है। छोटे किन्तु प्रभावशाली प्रवेश द्वार के ऊपर मराठा–शैली का लघु शिखर तथा गर्भगृह के ऊपर बुन्देला शैली के उन्नत प्रतिमायें उल्लेखनीय हैं।

चूंकि यह छोटा कस्बा है इसलिए पहले यहाँ आने के साधन अपर्याप्त रहा करते थे परन्तु जैसे–जैसे पर्यटकों की संख्या में वृद्धि हुयी है सोनागिरी में पर्याटकों, दर्शनार्थियों के लिए धर्मशालायें व लॉज खुल गये हैं। पर्यटन की दृष्टि से सोनागिरी एक महत्व का केन्द्र बनता जा रहा है।

यहाँ प्रतिवर्ष होली के आसपास एक विशाल मेला लगता है जिसमें भारतवर्ष से ही नहीं वरन् विदेशों से भी पर्यटक आते हैं। लगभग 10 दिन चलने वाले इस मेले में जैन मुनि प्रवचन सत्संग इत्यादि सम्पन्न करते हैं। कई ट्रेनों को इस मेले के दौरान सोनागिरी स्टेशन पर विशेष रूप से रोका जाता है।[1]

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक , 1999 पृ 30,

खजुराहो के जैन मंदिर

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ईसवी सन् 1000 से 1300 की अवधि में मध्य भारत के राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास के प्रवाह को जिन कुछ शक्तिशाली वंशों ने प्रभावित किया उनमें से चंदेल उत्तरी भाग (जेजाकभुक्ति या बुंदेलखण्ड) पर, कलचुरि पूर्वी भाग (डाहल और महाकौशल) पर और परमार पश्चिमी भाग मालवा राज्य करते थे, किन्तु मध्य भाग पर कुछ समय कच्छपघातों का शासन रहा। इन वंशों के शासक युद्ध और शांतिकालीन कलाकृतियों के निर्माण में एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते थे, और कला, स्थापत्य एंव साहित्य के महान् निर्माता और संरक्षक भी थे। यधपि ये वंश ब्राहमण मतों के अनुयायी थे तथापि वे जैन मुनियों एंव विद्वानों का सम्मान करते थे। जैन धर्म को उनका उदार संरक्षण इसलिए भी प्राप्त था क्योंकि उनके राज्य की प्रजा का एक प्रभावशाली अंग जैन धर्मावलंबी था, जिसमें व्यापारी, साहूकार तथा शासकीय पदाधिकारी भी थे।

चंदेलों की एक राजधानी खजुराहो थी जिसमें जैन समाज प्रभावशाली था। यह तथ्य इस बात से प्रमाणित होता है कि वहाँ कुछ ऐसे मंदिर विघमान हैं। जिनमें चंदेलकालीन कला और स्थापत्य की वही उत्कृष्टता है जो ब्राहाण्य मंदिरों में। खजुराहों का जैन समाज इतना धनिक था कि वह उन बहुमंख्यक मूर्तिकारों एवं वास्तुविदों को संरक्षण प्रदान कर सका जिन्होंने वहाँ के दो भिन्न धर्मो के मंदिरों की मूर्तिकला तथा स्थापत्य संबंधी एकरूपता से होती है – एक तो चंदेल शासक यशोवर्मन् द्वारा सन् 954 से पूर्व निर्मित लक्ष्मण मंदिर, और दूसरा खजुराहों की सर्वोत्कृष्ट जैन कृति पार्श्वनाथ–मंदिर जिसका निर्माण, प्राप्त उल्लेख के अनुसार, सन् 954 में राजा धंग द्वारा सम्मानित पाहिल नामक व्यक्ति ने कराया था।[1]

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–279,

खजुराहों में कुछ जैन मंदिर और भी हैं। दसवीं से बारहवीं शताब्दी तक की जैन प्रतिमाएँ भी अनेक हैं, इनमें सबसे बाद की प्रतिमा की तिथि मदन वर्मा (सन् 1129–63) के शासनकाल की है। चंदेलों की एक अन्य राजधानी हमीरपुर जिलें में स्थित महोबा थी। यह क्षेत्र 'मध्यकालीन जैन मंदिरों और प्रतिमाओं से भरा पड़ा है। जिनमें से कुछ की निर्माण–तिथियाँ चंदेल शासक जयवर्मा (सन् 1117), मदनवर्मा और परमर्दी (लगभग सन् 1163–1201) के शासनकाल की हैं। खजुराहों एवं महोबा के अतिरिक्त झाँसी जिले और उसके समीपवर्ती, देवगढ़, चंदेरी, बूढ़ी चंदेरी, सीरोनखुर्द, चाँदपुर, दुधई और मदनपुर नामक स्थानों पर भी दसवीं से तेरहवीं शताब्दी तक जैन कला और स्थापत्य की जो समृद्धि हुई उसका कारण भी चंदेल–संरक्षण था। इसी कारण, देवगढ़ का प्रसिद्ध स्थल राजा कीर्तिवर्मा (लगभग 1070–90) के नाम पर कीर्तिगिरि के नाम से भी विख्यात हुआ। इस चंदेल –राजा के पूर्वजों ने उस प्रदेश पर प्रतीहार–साम्राज्य के बाद सत्ता प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त, दुधई में प्राप्त 66 आधार–शिलाओं पर उत्कीर्ण कराये गये अभिलेखों में प्रसिद्ध चंदेल राजा यशोवर्मा के पौत्र युवराज देवलब्धि का उल्लेख हैं, और उसके निकटवर्ती मदनपुर के बारे में अनुश्रुति है कि उसं चंदेल मदनवर्मा ने बसाया था।

मालवा के परमार तो जैनों के चंदेलों से भी अधिक उदार संरक्षक थे। प्रसिद्ध नगरी उज्जयिनी (आधुनिक उज्जैन) तथा राजधानी धारा (आधुनिक धार) जैनाचार्यो के प्रसिद्ध केंद्र थे। सत्ताईसवें जैन भट्टारक ने अपना पीठ भद्दलपुर से बदलकर उज्जैन में स्थापित किया, जहाँ सरस्वती–गच्छ और बलात्कार–गण का आरम्भ हुआ। धार में अनेक प्राचीन जैन मंदिर हैं जिनमें से दो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं – एक तो पार्श्वनाथ–मंदिर जहाँ देवसेन ने सन् 933 में दर्शनासार की रचना की, और दूसरा जिनवर–बिहार जहाँ नयनंदी ने सन् 1043 में सुदर्शनचरित लिखा। परमार मुंज (सन् 962–95) ने अमितगति, महासेन, धनेश्वर और धनपाल नामक जैनाचार्यो को राजाश्रय दिया।[1]

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–280,

राजा भोज (सन् 1000–50) ने प्रसिद्ध जैनाचार्य प्रभाचंद्र को सम्मानित किया था। वह तिलकमंजरी के रचियता धनपाल का भी आश्रयदाता था और उसने उन्हें सरस्वती की उपाधि से विभूषित किया था। कहा जाता है कि जैनाचार्य शांतिषेण ने राजा भोज की सभा के पण्डितों को पराजित किया था। राजा भोज ने जिनेश्वर–सूरि, बुद्धिसागर तथा नयनंदी नामक जैन मुनियों को भी राजाश्रय दिया। उसके शासनकाल में नेमिचंद्र ने केशोराय पटन (आश्रमनगर) में लघु–द्रव्य–संग्रह की रचना की। इसी नाम से एक अन्य जैनाचार्य ने उसी काल में भोपाल के निकट भोजपुर में शांतिनाथ की एक विशाल प्रतिमों प्रतिष्ठित की। यह भोजपुर अपने शिव–मंदिर के लिए प्रसिद्ध है, जिसे राजा भोज ने बनवाया था।[1]

चंदेल क्षेत्र––खजुराहो

सामान्य विशेषताएँ

खजुराहो स्थित जैन मंदिरों में विन्यास और उठान की वे ही विशेषताएँ हैं। जो वहाँ के अन्य चंदेल मंदिरों की हैं। वे ऐसे प्रकार–रहित उत्तुंग भवन हैं जो ऊँची जगती पर निर्मित हैं। इसी कारण आसपास के परिवेश से ये भावन और ऊँचे दिखते हैं। इनमें चारों ओर खुला चक्रमण–मार्ग एवं प्रदक्षिणा–पथ है। इनके सभी भाग बाहर और भीतर एक दूसरे से संयुक्त हैं और इनमे निर्माण की संयोजना एक ही धुरी पर की गयी है जिससे इनका स्वरूप अत्यंत संगठित और एकरूप वन पड़ा है। आयोजना के आवष्यक अंग अर्थात् अर्ध–मण्डप, अंतराल और गर्भगृह यहाँ के सभी मंदिरों में है। बड़े मंदिरों में गर्भगृह के चारों ओर एक आभ्यंतरिक प्रदक्षिणा–पथ भी है।

आयोजना के समान, इनके उठान की भी कुछ विशेषताएँ हैं। मंदिर की जगती पर एक ऊँचा अधिष्ठान है जिसकी पंक्तिबद्ध अलंकरण–पट्टियाँ जगती को सुदृढ़ रूप से जकड़े हुए हैं, और इस कारण प्रकाश तथा छाया की सुंदर व्यवस्था भी हो गयी है।[2]

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–280,
2–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–281,

ऐसे ठोस और अलंकृत अधिष्ठान पर जंघा या मंदिर का भित्ति–भाग या मध्य भाग है जिसमें अत्यंत रोचक ओर आकर्षक मूर्तियों के दो या तीन आड़े बंध हैं। जंघा के ऊपर छत के रूप में शिखर–माला है। मंदिर के विभिन्न भागों के शिखर आरोह–क्रम में ऊँचे उठते चले गये हैं। सबसे नीचा शिखर प्रवेश–मण्डप का है तो सबसे ऊँचा गर्भगृह का। ये शिखर जो एक धुरीय रेखा पर निर्मित हैं, बारी–बाकरी से ऊँचे–नीचे हैं तथा इनकी परिणति उस सर्वोच्च शिखर में होती है जिसकी संयोजना केवल गर्भगृह पर हुआ करती है। अर्ध–मण्डप और महा–मण्डप के शिखर स्तूपकार हैं किन्तु मध्यवर्ती शिखर ऊँचा और वक्राकार है। पार्श्वनाथ मंदिर में यह शिखर गौण शिखरों से भी संयुक्त है।

बहिर्भाग की भाँति इन मंदिरों के अंतःभाग में भी विस्तृत अलंकरण और मूर्ति–संपदा की विपुलता आश्चर्यकारी है जो द्वारों, स्तंभों, सरदलों और छतों पर अंकित हैं। ये गजतालू छतें जिनपर ज्यामितिक एवं पुष्प–वल्लरियों के अलंकरण हैं, असामान्य कौशल की परिचायक हैं। भीतरी भाग में अप्सराओं और शालभंजिकाओं की भी मूर्तियाँ हैं। उनके मादक अंगोपांग, आकर्षक मुद्राएँ और अति मनोज्ञ कला–कौशल आदि इन्हें मध्यकालीन मूर्तिकला की सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ सिद्ध करती हैं।

खजुराहो ग्राम के दक्षिण–पूर्व में घण्टाई नामक एक जैन मंदिर का खण्डहर है और उससे कुछ ही दूर एक नवनिर्मित प्राचीर के भीतर अनेक जैन मंदिर हैं। इस समूह में पार्श्वनाथ, आदिनाथ और शांतिनाथ के मंदिरों के अतिरिक्त अनेक नवनिर्मित मंदिर भी हैं। इनमें से कुछ तो प्राचीन मंदिरों के अबशेषों पर बनाये गये हैं और कुछ का निर्माण नये स्थानों पर प्राचीन मंदिर की अवशेष–सामग्री से हुआ है और उनमें प्राचीन प्रतिमाएँ ही हैं। अनेक प्राचीन जैन मूर्तियाँ जिनमें से कुछ उरेकित भी हैं, दीवारों में चिन दी गयी हैं। वर्तमान में जैन भक्तों के प्रमुख पूजास्थान शांतिनाथ–मंदिर में आदिनाथ की एक विशाल प्रतिमा (4.5मीटर ऊँची) है।[1]

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–281,

जिसके पादपीठ पर 1027–28 ई0 का समर्पणात्मक अभिलेख उत्कीर्ण है। इस मंदिर का बहुत अधिक नवीनीकरण हो चुका है तथापि उसके मध्य में एक प्राचीन भाग ऐसा है जिसमें अनेक देवकुलिकाओं में मध्यकालीन जैन स्थापत्य की विशेषतायुक्त अनेक प्राचीन मूर्तियाँ हैं। इन मूर्तियों में तीर्थकर के माता–पिता की मूर्ति अपनी कला–गरिमा के कारण महत्वपूर्ण है।

खजुराहो के प्राचीन जैन मंदिरों में के ये केवल दो ही मंदिर, पार्श्वनाथ और आदिनाथ, अच्छे रूप में सुरक्षित रह पाये हैं।

घण्टाई – मंदिर

घण्टाई–मंदिर को स्थानीय लोग इसलिए घण्टाई कहते हैं कि उसके ऊँचे मनोहर स्तंभों पर श्रृंखला और घण्टों का बहुत सुंदर रूपांकन हुआ है ये स्तंभ मध्ययुगीन भारत के सर्वोत्कृष्ट स्तंभों में से हैं। और अपने विशाल आकार, भव्य अलंकरण और पारंपरिक रचना की गरिमा के कारण ये महत्वपूर्ण हैं। इसका मुख पूर्व की ओर है। वर्तमान में इसका जो बाहरी ढाँचा बचा है वह यह दर्शाता है कि इसकी रूपरेखा पार्श्वनाथ–मंदिर–जैसी ही थी किन्तु इसकी संकल्पना अधिक विशाल थी और विस्तार में यह पार्श्वनाथ–मंदिर से लगभग दुगुना था। इस समय इस मंदिर के केवल अर्धमण्डप और महामण्डप ही शेष बच रहे हैं। इनमें से प्रत्येक मण्डप चार–चार स्तंभों पर आधारित हैं और एक समतल तथा अलंकृत छत को आधार दिये हुए हैं। पार्श्वनाथ–मंदिर के समान इसके महा–मण्डप और अर्ध–मण्डप को आधार देने वाले कुछ ही अर्ध–स्तंभ शेष बचे हैं। इन्हें परिवेष्टित करने वाली दीवार के साथ ही मंदिर को उप–योजना के दो महत्वपूर्ण अंगों अर्थात् अंतराल और गर्भगृह की प्रतीति उनकी अनुपस्थित में भी होती है। इसके अतिरिक्त अवशिष्ट भवन की लुप्त छत के स्थान पर अब एक समतल छत है। इससे यह भवन आकर्षक होते हुए भी एक विचित्र–सा स्थापत्य–अवशेष बनकर रह गया है।[1]

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–282,

इस मंदिर के पास जो एक अभिलेख–युक्त बुद्ध–मूर्ति मिली थी (खजुराहो में केवल यही बौद्ध प्रतिमा पायी गयी है और अब वह स्थानीय संग्रहालय में प्रदर्शित है) उसके कारण कर्निंघम ने पहले यह विचार व्यक्त किया कि यह एक बौद्ध मंदिर है किन्तु आगे चलकर उन्होंने यह मत त्याग दिया और इसकी पहचान जैन मंदिर के रूप में की ओर अब यही मत सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं। अन्य स्थानीय जैन मंदिरों की यही भाँति, घण्टाई–मंदिर भी दिगंबर–संप्रदाय का था। यह उन सोलह मंगल प्रतीकों (श्वेतांबर संप्रदाय में चौदह होते हैं) से स्पष्ट है जो सरदल पर अंकित हैं तथा उन अनेक जैन नग्न प्रतिमाओं से भी सिद्ध होता है जिन्हे कनिंधम ने इस भवन के आसपास खोद निकाला था।, इन प्रतिमाओं में आदिनाथ की एक खण्डित मूर्ति थी जिस पर विक्रम संवत् 1142 (1085 ई0) का एक लेख खुदा हुआ था। अब यह मूर्ति स्थानीय संग्रहालय में है।

वैसे तो देखने पर लगता है कि इस मंदिर की कोई जगती नहीं है, किन्तु खजुराहों के सभी मंदिर जगती पर बनये गये हैं इसलिए जान पड़ता है कि इस मंदिर की जगती मलबे के नीचे दब गयी है।

भूमितल के ऊपर जो अधिष्ठान दिखई पड़ता है वह सदा सादे भिट्–पट्टियों से बना जान पड़ता है और उनके ऊपर जाड्यकुंभ, कर्णिका तथा अंतरपत्र हैं। उन्हें हीरके–प्रतिरूपों से युक्त आलों से अलंकृत किया गया है। इनक पार्श्व में अर्ध–स्तंभ हैं। ये पार्ष्वनाथ–मंदिर जैसे हैं। पट्िकाओं का अलंकरण बेल–बूटेदार हृदयाकार फूलों से किया गया है। पट्िका का ऊपरी भाग जगती की ऊँचाई तक है।

अर्ध–मण्डप चार स्तंभों की चतुष्की पर आधरित है। ये स्तंभ एक अलंकृत कुंभिका पर खड़े हैं। जो एक उपपीठ पर आश्रित है। यह उपपीठ अष्टकोणीय हैं तथा इसपर पुष्पगुच्छ, कमलदल तथा वल्लरियों के अलंकरण हैं। कुंभिका पर खुर, कुंभ, कलश, सादा अंतरपत्र एवं कपोत, जो कुडुओं से अलंकृत हैं, के गोटे हैं।

1– आर्क्यॉलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, रिपोर्ट, 1871, ले0 कर्निघम (ए), पृ0 43,

इसके स्तंभों के मध्यभाग नीचे अष्टकोणीय, बीच में षोडशकोणीय तथा ऊपर वर्तुलाकर हैं। षोडशकोणीय भाग के ऊपर एक अष्टकोणीय मध्य बंध है जिसका अलंकरण कीर्तिमुखों से निकली मालाओं के अंतग्रथित पाशों से किया गया है। इन पाशों में विघाधर परिवेष्टित हैं जिन्हें अंजलि-मुद्रा मे या मालाएँ लिए हुए या बाघ-यंत्र बजाते हुए अंकित किया गया है। मध्यबंध की ऊपरी पट्‌टी की सज्जा उभरे लुमाओं से की गयी है। इस मध्यबंध से एक दीप बाहर निकला हुआ है और उसके निचले भाग पर एक भूत दृष्टिगोचर होता है। चारों स्तंभों में से प्रत्येक स्तंभ के आधार पर भी दीपाधार बाहर निकले हुए है।

प्रत्येक स्तंभ के वर्तुलाकार भाग में चार मध्यबंध हैं जिसमें से सबसे नीचे का मध्यबंध वर्तुलाकार है और उसका विस्तृत अलंकरण बड़े-बड़े माल्यपाशों तथा लंबी श्रृंखला और घण्टिकावाले ऐसे प्रतिरूपों द्वारा किया गया है जिनमे पार्श्व में मालाएँ तथा पताकाएँ हैं। और कहीं-कहीं जिनका स्थान कीर्तिमुखों के मुखों से निकलकर झूलते हुए कमलनालों ने ले लिया है। माल्यपाशों में विघाधर, तपस्वी, या व्याल अंकित है। दूसरा बंध अष्टकोणीय है। उसमें कीर्तिमुखों से निकले माल्यपाश अपेक्षाकृत छोटे हैं और प्रत्येक पाश में आरोही-युक्त व्याल-युगल है। तीसरा बंध वर्तुलाकार है। उसकी सज्जा या तो पुष्पगुच्छ से की गयी है। या उत्कीर्ण त्रिकोणों से और उसमें अलंकृत अप्सरा स्तंभों के लिए छोटे आकार के बाहर उभरे हुए चार भूत-टोडे दृष्टिगोचर होते है। चौथे, या सबसे ऊपर के बंध में दो अष्टकोणीय पट्‌टिकायें हैं। इनमें से निचली पट्‌टी अर्ध-कमल-पुष्पोंवाले माल्यपाशों से अलंकृत है ओर ऊपर की पट्‌टिका वर्तुलाकार गुच्छों से। प्रत्येक स्तंभ के ऊपर एक वर्तुलाकार स्तंभ-शीर्ष है जिसमें धारीदार आमलक और पद्‌म अंकित हैं। स्तंभ-शीर्ष पर भूत-टोडे हैं जिनके बीच-बीच में श्रद्धालू नाग अंकित हैं। सभी भूतों के पेट में छेदकर कोटर बनाये गये हैं। ताकि उनमें अप्सरा टोडे लगाये जा सकें। टोडों पर एक सरदल है जिसके तीन खसके हैं, जिनमें से नीचे के दो का अलुंकरण कमल के बेल-बूटों और कीर्तिमुखों द्वारा किया गया है उसके सबसे ऊपर का भाग सादा ही छोड़ दिया गया है। सरदल पर एक चित्र-वल्लरी है जिसके शोभायात्रा-दृष्यों में अधिकांशतः भक्त, संगीतकार, नृत्य करने वालों,

तथा कहीं–कहीं यात्रा में सम्मिलित हाथियों का अंकन किया गया है। उत्तर और दक्षिण भागों में चित्र–वल्लरी के मध्य भाग में तीर्थकर की प्रतिमा अंकित हैं। चित्र–वल्लरी के ऊपर एक अलंकृत किन्तु समतल चौकोर छत है जिसके अलंकृत आयताकार फलकों में विभाजित किया गया है और उनके किनारों की सज्जा उत्कीर्ण कमलपुष्पों से की गयी है। फलकों की बाहरी पंक्तियों में नर्तक और गायक हैं, जिनके पार्श्व में मिथुन हैं। फलकों की आंतरिक पंक्ति में बेल–बूटेदार अलंकृतियाँ हैं। भीतरी छत के मध्य में लगभग एक वर्गमीटर के स्थान का अलंकरण तीन गजतालु खसकों द्वारा किया गया है। दो बाहरी खसकों में प्रत्येक ओर तीन गजतालू दिखाये गये हैं।

अर्ध–मण्डप के बाद महा–मण्डप आता है। संभवतः उसके चारों ओर दीवारें रही होगीं। जो भी हो यह महा–मण्डप पार्श्वनाथ–मंदिर के महा–मण्डप से इस बात में भिन्न है कि इसमें सामने की ओर एक आड़ी पंक्ति में तीन चतुष्कियाँ हैं। इन चतुष्कियों की भीतरी छत जो अब बिलकुल सादी है, पहले अलंकृत रही होगी। बीच की चतुष्की, जो आसपास की चतुष्कियों से बड़ी है, का निर्माण अर्ध–मण्डप के दो पश्चिमी स्तंभों तथा महा–मण्डप के द्वार के पार्श्व के उन दो भित्तियों को लेकर बनी है जिनकी आधार–वेदी पर एक दूसरे की ओर अभिमूख दो सशस्त्र द्वारपाल दिखाई देते हैं। द्वारपालों ने करण्ड–मुकुट पहन रखा है और उनके हाथ में एक गदा है जो अब टूट गयी है। प्रत्येक द्वारपालों के पीछे एक चतुष्पद अंकित है जो सिंह से मिलता–जुलता है। अर्ध–स्तंभ भद्रक–प्रकार के हैं (आकृति में चौकोर किन्तु प्रत्येक कोने में तीन कोण), किन्तु वे बिलकुल सादे हैं, मात्र स्तंभ के मध्य भाग के ऊपर और निचले भागों पर घट–पल्लव का पारंपरिक उत्कीर्णन किया गया है। वे एक उपपीठ पर बने हैं। जिसपर कमल–पंखुड़ियों का साधारण–सा अलंकरण है किन्तु यह मूल उपपीठ है या नहीं–यह अनिश्चित है। उनके आधारों (कुंभिकाओं) में खुर, कुंभ और कपोतों की अलंकृतियाँ हैं। स्तंभों के मध्य भाग पर एक सादा और छोटा उच्चालक खण्ड है जिसके ऊपर एक सादा शीर्षभाग है, जिसमें कर्णिका और पद्म दिखाये गये हैं। शीर्षभाग पर मरगोल–युक्त सादे टोडे टिके हुए हैं जिसकी रूपरेखा तीखी गोलाई लिये हुए हैं। टोडों के ऊपर

एक सरदल है जिसपर बेल–बूटों का अलंकरण और आस–पट्टिका है। सरदल एक सादे कपीत को आधार देता है जिसके ऊपर अलंकृत त्रिकोणों की पट्टी है। चूंकि भित्ति–स्तंभों के मध्य भाग का अलंकरण किया गया है और छोरों को (जो भिन्न प्रकार के पत्थरों से बने हैं) सादा ही रखा गया है अतः ऐसा जान पड़ता है कि पार्श्व–चतुष्पिकियों को दीवारों से आच्छादित करने की योजना रही होगी। इस तथ्य की पुष्टि इससे भी होती है कि छोरों को जो हल्के पीले रंग के बलूआ पत्थर के बने हैं, एकदम सादा रखा गया है। ये अलंकृत आधारों पर बने हैं और उनपर उच्चालक खण्ड शीर्षभाग और टोडे है, जो शैली में अर्ध–स्तंभों के बिलकुल समान हैं। उन पर द्वारपालों की आकृतियाँ बनी हुई हैं।[1]

द्वार–मार्ग के पीछे अर्ध–स्तंभ ग्रेनाइट के बने हैं। किन्तु वे बलूआ पत्थर के आधारों पर टिके हैं। जो भी हो एक अर्ध–स्तंभ में उपपीठ भी ग्रेनाइट का बना हुआ है। क्योंकि दोनों अर्ध–स्तंभों की संयोजना कुछ ही भिन्न है, अतः यह जान पड़ता है कि ये बाद में जोड़े गये हैं।

द्वार–मार्ग की सात साखाएँ हैं। पहली शाखा का अलंकरण गुच्छाकार रचना से दूसरी और छठी का व्यालों से तीसरी और पाँचवी का नृत्य करते एवं संगीत–वाद्य बजाते हुए गणों से किया गया है। चौथी, जिसे एक स्तंभ–शाखा माना जाता है, पर एक शीर्षभाग है जिसमें कर्णिका और पद्म बने हैं। सातवीं शाखा, जो द्वार–मार्ग का कटावदार वेष्टन करती है, की सज्जा लहरदार बेल–बूटों से की गयी है तथा उसके पार्श्व में एक खड़ी चित्र–वल्लरी है जिसमें गणों को नृत्य करते हुए अथवा संगीत–वाद्य बजाते हुए दिखाया गया है। पहली तीन शाखाएँ ऊपर की ओर से ले जायी गयी हैं, और चौथी या स्तंभ–शाखा पर एक सरदल है जिसके मध्य में गरूड़ पर आसीन अष्टमुजी चक्रेश्वरी देवी की मूर्ति अंकित है। उसके हाथों में फल, बाण, चार चक्र, धनुष और शंख हैं। ठीक दाहिने और बायें किनारों के आलों में तीर्थकर–प्रतिमाएँ आसीन हैं।[2]

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–284,
2–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–285,

सरदल का जो अंतर्वर्ती भाग है उसमें ठीक दाहिने नवग्रहों की आसीन प्रतिमाएँ और ठीक बायीं ओर द्विभुजाओं एवं वृषभशीर्ष वाले आसीन देवताओं की एक–सी आठ आकृतियाँ बनायी गयी हैं। इनके हाथ अभय–मुद्रा में हैं उनमें जल–कुंभ हैं। ये अष्टवसु जान पड़ते हैं।

सरदल की ऊपर चित्र–वल्लरी में गर्भधान के समय तीर्थकर की माता द्वारा स्वप्न में देखें गये सोलह मंगल–प्रतीक चित्रित किये गये हैं। ये प्रतीक कमलदलों पर बनाये गये हैं। वे इस प्रकार हैं :(1) ऐरावत हाथी, (2) वृषभ, (3) प्रचण्ड सिंह, (4) श्री देवी, (5) एक कीर्तिमुख को वेष्टित करती पुष्पमाला, (6) पूर्ण चंद्रमा जिसके मध्य में खरगोश की आकृति है, (7) उदित होता हुआ सूर्य जिसमें मध्य में सूर्य–देवता है, (8) मीन युगल, (9) दो कलश, (10) तालाब और उसमें एक कुछुआ, (11) क्षुब्ध सागर, (12) सिंहासन, (13) विमान, (14) नागेन्द्र भवन में बैठे हुए नाग–दंपति, (15) रत्नराशि, तथा (16) आसीन मुद्रा में अग्नि जिसके कंधों से ज्वालाएँ निकल रही हैं। सातवीं शाखा के ऊपर मध्य भाग में एक पट्टी है जो बीच में अंकित की गयी है। सरदलों के तीनों आलों के ऊपर चैत्य–तोरणों के उद्गम या त्रिकोण–शीर्ष हैं। ये तोरण ऐसे त्रिरथ स्तूपाकर शिखर से पृष्ठानुपृष्ठ हैं जिसके ऊपर चंद्रिका और आमलक हैं। द्वार–मार्ग के आलंबन पर प्रचलित नदी–देवियों का चित्रण किया गया है। गंगा दाहिनी ओर तथा यमुना बायीं ओर अंकित है तथा उसके पार्श्व में एक चमरधारिणी है। प्रत्येक द्वार–शाखा पर एक द्वारपाल का चित्रण द्वार मार्ग के परिवेष्ट न के नीचे भी किया गया है। किरीट–मुकुट पहने गदाधारी द्वारपाल का चित्रण द्वार मार्ग के परिवेष्टन के नीचे भी किया गया है। मंदारक (देहरी) के बची के बाहर निकले हुए भाग पर कमल बूटों का अंकन है और उसके दोनों ओर एक–एक द्विभुजी सरस्वती की आकृति है। पार्श्ववर्ती आलों में छह जल–देवता अंकित हें, जिनमें से प्रत्येक करि–मकर पर आसीन है और उसके हाथ में कलश है। नदी–देवियों के नीचे गज–शर्दूल निर्मित हैं तथा बाहय द्वारपालों के नीचे नृत्य–संगीत के दृश्य अंकित किये गये हैं।

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–286,

महा–मण्डप के स्तंभो में से प्रत्येक में तीन टोडे दीपक रखने के लिए दृष्टिगोचर होते हैं। सब से ऊपर के टोडों पर जो कर्णवत् बाहर निकले हुए हैं, कमल की पंखुड़ियों की अलंकृतियाँ की गयी हैं। बीच के टोडों पर भूत दर्शाये गये हैं। सब से नीचे के टोडे सादी पद्म–सज्जा–पट्टी से मिलते–जुलते हैं। अर्ध–मण्डप के चारों स्तंभों पर भी बीच के और सबसे नीचे के टोडों की पुनरावृत्ति की गयी है। यघपि इनके ऊपर के भाग में प्रत्येक स्तंभ पर चार अपेक्षाकृत छोटे भूत–टोडे दृष्टिगोचर होते हैं।,

पार्श्वनाथ–मंदिर

स्थानीय सभी जैन मंदिरों में पार्श्वनाथ–मंदिर सबसे अधिक सुरक्षित रह सका है और वह खजुराहो के सबसे सुंदर मंदिरों में से एक है। अपनी विशिष्ट रूपरेखा संबंधी विशेषताओं के कारण वह औरों से भिन्न है और कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण। यघपि वह एक सांधार–प्रासाद है, यथापि उसमें छज्जेदार वातायनों से युक्त वक्रभागों, जो स्थानीय सांधार–मंदिरों की विशेषता है, का अभाव है और विन्यास में यह मंदिर आयताकार है और उसके दोनों लघु पार्श्वों में से प्रत्येक पर अक्षीय प्रक्षेप है। पूर्व में जो प्रक्षेप है उससे मुख–मण्डप निर्मित होता है। पश्चिमी प्रक्षेप में गर्भगृह के पृष्ठभाग से संलग्न एक देवालय है जो वास्तव में एक नयी बात है।

मंदिर 1.2 मीटरऊँची जगती पर बना है। मंदिर में प्रवेश के लिए एक चतुष्की का साधारण आकार का किन्तु अत्यधिक अलंकृत मुख–मण्डप है। उसकी तोरण–सज्जा में अलंकरण और मूर्तियों का जो असाधारण प्राचुर्य है उसमें शाल–भंजिका–स्तंभ और अप्सराओं तथा सहायक देवों की आकृतियाँ सम्मिलित हैं। इसकी भीतरी छत (नाभिच्छंद कोटि का क्षिप्त वितान) में खजुराहों के अन्य मंदिरों की तुलना में सबसे अधिक अलंकरण किया गया है।[2] उसके अलंकृत लोलक की समाप्ति उड़ेते हुए विघाधर–तुगल की आकृतियों में से होकर है।

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–286,
2–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–287,

जिसका अलंकरण हीरकों, पाटल–पुष्पों, गणों, व्यालों, मिथुनों, तेल–बूटों के अतिरिक्त द्वार–स्तंभ पर बने सेवकों से युक्त गंगा और यमुना की आकृतियों द्वारा किया गया है। उसके सरदल पर नवग्रहों के अतिरिक्त दशभुजी गरूणासीन यक्षी चक्रेश्वरी ललाट–बिंब के रूप में तथा चर्तुभुजी आसीन सरस्वती उसके दो सीमाँतवर्ती आलों में से प्रत्येक में अंकित है। चक्रेश्वरी के दायें हाथों में से एक वरद–मुद्रा में है तथा अन्य में असि, गदा, चक्र और घण्टिका है तथा बायें हाथों में चक्र ढाल, बाण, अंकुश और शंख हैं। सरस्वती की आकृतियों के चार हाथों में से तीन में पूजर, करछी, पुस्तक और जल–कलश हैं, दांयी ओर की आकृति का वाहन हंस अंकित है। द्वार–मार्ग के प्रत्येक पार्श्व में चार भुजाओं वाला एक जैन प्रतीहार उत्कीर्ण किया गया जिसने किरीट–मुकुट पहन रखा है। उसके दो अवशिष्ट हाथों में से एक में पुस्तक और एक में गदा है।

आयाताकार मण्डप की ठोस दीवारें हैं जिन्हें सोलह अर्ध–स्तंभ आधार प्रदान करते हैं। अर्ध–स्तंभों के बीच की खुली जग का उपयोग दीवार के साथ–साथ लगायी गती विस्तृत चौकियों पर तीर्थकरों की दस प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित कर किया गया है। यह इस मंदिर की एक और विशेषता है। अन्यथा इसका भीतरी भाग अन्य स्थानीय मंदिरों की भाँति ही निर्मित है। मण्डप में चार सामान्य केंद्रीय स्तंभ हैं जिनपर चार शालभंजिका–अवलंबन हैं और तोरणों की एक वर्गाकार सज्जा निर्मित है जो नाभिच्छ प्रकार के क्षिप्त–वितान के रूप में बनायी गयी एक वर्गाकार भीतरी छत को आधार प्रदान करती है। गर्भगृह का एक पंचशाखा द्वार–मार्ग है जिसका अलंकरण बेल–बूटों, गणों तथा मिथुनों द्वारा तो किया ही गया है, साथ ही द्वार–स्तंभों पर सेवकों सहित गंगा और यमुना की आकृतियाँ भी अंकित हैं। द्वार–मार्ग पर दो तोरण–सज्जाएँ हैं जिनमें से एक पर नौ ग्रहों के अतिरिक्त ललाट–बिंब के रूप में आसीन–मुद्रा में एक तीर्थकर–प्रतिमा तथा सीमान्त आलों में से प्रत्येक में एक खड़ी हुई तीर्थकर–प्रतिमा अंकित है। ऊपर की तोरण–सज्जा के आलों में पाँच आसीन तीर्थकर–प्रतिमाएँ हैं और छह तीर्थकर कायोत्सर्ग–मुद्रा में हैं। द्वार–मार्ग के प्रत्येक पार्श्व में किरीट–मुकुट पहने चार भुजाओंवाला 6 जैन प्रतीहार अंकित है। दायीं ओर वाले प्रतीहार के दो अवशिष्ट

हाथों में गदा और पद्म हैं और बायें ओर वाले के हाथों में चक्र, शंख, कमल और गदा है। मंदारक पर एक विघादेवी–युगल भी उत्कीर्ण है।

गर्भगृह में काले संगमरमर की बनी पार्श्वनाथ की एक आधुनिक प्रतिमा है जिसकी प्रतिष्ठापना सन् 1860 में उसी प्राचीन और ललित आधार–वेदी पर की गयी थी जिसका निर्माण पाण्डु बलुआ पत्थर आदि उसी प्रकार की सामग्री से हुआ था जिससे मंदिर और उसकी मूर्तियाँ निर्मित हैं। यह वेदी अपने परिकर और प्रभावली सहित पूरी की पूरी सुरक्षित है और यह संकेत देती है कि मूल प्रतिमा एक चतुर्विंशति–पट्ट थी जिसके मूलनायक आदिनाथ थे, जैसा कि उसके समुचित स्थान पर उत्कीर्ण वृषभ–लांछन (चिन्ह) से स्पष्ट है।

इस मंदिर के पिछले देवालय, जो इसका पश्चिमी प्रक्षेप है, का मुख पश्चिम की ओर है और उसमें जंघा की मूर्ति–संबंधी वही संयोजना तथा वही वेदी–बंध की सज्जा–पट्टियाँ बाहर की ओर है। अंतर केवल इतना ही है कि दोनों चित्र–पट्टिकाओं की ऊँचाई कम है। इस देवालय का केवल गर्भगृह ही बचा है जिसमें प्रवेश के लिए पंचशाखा द्वार–मार्ग था, जिसका अलंकरण द्वार–स्तंभों पर संवकों सहित गंगा और यमुना की आकृतियों के अतिरिक्त तीन आले हैं जिनमें से प्रत्येक में चतुर्भुजी सरस्वती की आसनस्थ प्रतिमा है। केंद्रीय और बायीं ओर की आकृति के ऊपरी दो हाथों में कमलनाल और पुस्तक हैं तथा निचले दो हाथों में बीणा है, पार्श्व के दो चतुर्भुजी जैन प्रतीहारों में से दाहिने का सिर और हाथ नष्ट हो गये हैं, बायीं प्रतीहार के दो अवशिष्ट बायें हाथों में पुस्तक और गदा है तथा वह किरीट–मुकुट पहने हुए है।[1]

बाहय भद्र–आलों में जंघा की दो प्रमुख पंक्तियों में तीर्थकरों की प्रतिमाएँ या अधिकतर जैन देवियों (यक्षियों या विघादेवियों) की मूतियाँ, तीसरी पंक्ति में नृत्य–चित्रावली और सबसे ऊपर की पंक्ति में चतुर्भुजी आसनस्थ कुबेर या सर्वानुभूति यक्ष की लघु मूर्तियाँ अंकित थीं मण्डप के दक्षिणी अग्रभाग के मुख पर दो मुख्य भद्र–आलों में से प्रत्येक में चतुर्भुजी देवी की ललित त्रिभंग–मुद्रा में खड़ी मूर्ति है।

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–289,

जिसके आसपास पारंपरिक सेवक-वर्ग, भक्त तथा आकाशगामी विघाधर अंकित हैं। इसके साथ ही स्तंभ के प्रत्येक कोने में खड्गासन-मुद्रा में तीर्थंकर की चार मूर्तियाँ भी प्रदर्शित हैं। निचले आले में जो देवी है उसका दाहिना हाथ ही सुरक्षित है। वह वरद-मुद्रा में है और कमलनाल-युक्त है। उसका वाहन नष्ट हो गया है। ऊपर के आले की देवी के तीन अवशिष्ट हाथों में से एक वरद-मुद्रा में है और अन्य में कमलनाल और कमण्डल हैं। इसी प्रकार मण्डप के उत्तरी अग्रभाग के आलों में चतुर्भुजली तीसरे हाथ में शंख है। ऊपरी आले की देवी तीन सिरोंवाली है जिसके चारों हाथ और उनमें प्रदर्शित वस्तुएँ टूट गयीं हैं। जो वेदी-बंध की कलश-सज्जा-पट्टी से बाहर की ओर निकला हुआ है, षष्ठभुजी सरस्वती की ललितासन मूर्ति है जिसके दो हाथों में एक वीणा है और शेष चार हाथों में से एक वरद-मुद्रा में है तथा अन्य हाथों में नीलकमल, पुस्तक और कमण्डलू हैं। वेदी-बंध के उत्तरी अग्रभाग वाले उसी प्रकार के आले में चतुर्भुजी देवी की ललितासन मूर्ति है जिसके ऊपरी दो अवशिष्ट हाथों में से प्रत्येक में एक कमलनाल है।

इस मंदिर के भीतरी भाग में दीवार के साथ रखी चौकियों में से लगभग आधी रिक्त हैं और शेष चौकियों पर तीर्थंकरों की पारंपरिक मूर्तियों के अतिरिक्त सिंह पर आरूढ़ एक चतुर्भुजी यक्षी तथा तीर्थंकर के माता-पिता की सुंदर प्रतिमाएँ हैं।[1]

आदिनाथ-मंदिर

पार्श्वनाथ-मंदिर के ठीक उत्तर में स्थित यह मंदिर खजुराहो स्थित जैन मंदिर समूह में एक महत्वपूर्ण मंदिर है। यह निरंधार-प्रासाद-शैली का है। अब इसके केवल गर्भगृह और अंतराल ही अपनी छतों सहित शेष बचे हैं। उसके मण्डप और अर्ध-मण्डप बिलकुल ही नष्ट हो गये हैं तथा उनके स्थान पर एक प्रवेश-कक्ष बना दिया गया है जो चूने की पलस्तर-युक्त चिनाई से बना है। उसके जो तोरण-युक्त द्वार-मार्ग हैं और गुंबदाकार भीतरी छतें हैं वे मूल भवन से बिलकुल मेल नहीं खाते ।

1-जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड-2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0-290,

रूपरेखा और उठान दोनों ही दृष्टि से यह मंदिर सप्तरथ–शैली का है और उसके प्रत्येक भद्र से एक अतिरिक्त नासिका या प्रक्षेप दृष्टिगोचर होता है। अपनी मूर्ति–शैली तथा सामान्य रूपरेखा एवं अंकन में यह मंदिर वामन–मंदिर से सबसे अधिक समानता रखता है। वास्तव में, इस मंदिर और वामन–मंदिर में महत्वपूर्ण अंतर केवल जंघा की सबसे ऊपर की तीसरी पंक्ति के अलंकरण में है। वामन–मंदिर के आलों का अलंकरण हीरकों द्वारा किया गया है। जो भी हो, वर्तमान में सबसे ऊपर की पंक्ति में आकाशगामी उत्साही विद्याधरों की एक पट्टी अंकित है। ऐसी पट्टी पार्श्वनाथ, जवारी, चतुर्भुज और दूलादेव–मंदिरों में भी पायी जाती है। फिर भी एक सीमा तक यह माना जा सकता है कि निर्माण–तिथि की दृष्टि से यह मंदिर अन्य किसी स्थानीय मंदिर की अपेक्षा वामन–मंदिर के अधिक निकट है। क्योंकि इसका शिखर इतना चिपटा और भारी नहीं है जितना कि वामन–मंदिर का और इसकी निर्मिति अधिक संतुलित है, अतः यह जान पड़ता है कि यह मंदिर कुछ अधिक विकसित है और वामन–मंदिर के पश्चात् बना है।

यह मंदिर एक मीटर ऊँची साधारण आयाम की जगती पर बना है। जगती के मूल गोटे नष्ट हो चुके हैं किन्तु उसके अग्रभाग पूरे के पूरे फिर से बना दिये गये हैं।

जंघा में मूर्तियों की तीन पंक्तियाँ हैं। ऊपर की पंक्ति आकार में कुछ छोटी है। नीचे की दो पंक्तियों में देवी–देवताओं का अंकन है जिनमें पारी–पारी से, प्रक्षेपों पर अप्सराओं की तथा भीतर धँसे भागों में व्यालों की आकृतियाँ हैं। सबसे ऊपर की पंक्ति में प्रक्षेपों पर विद्याधरों की तथा भीतर धँसे भागों में विद्याधर–मिथुन की आकृतियाँ अंकित हैं। विद्याधर की आकृतियों में प्रबल सक्रियता विशेष रूप से परिलक्षित होती है। उन्हें पुष्पमालाएं ले जाते हुए या संगीत–वाद्य बजाते हुए या शास्त्र चलाते हुए अंकित किया गया है।[1]

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–291,

अंतराल के आग्रभागों तथा गर्भगृह के भद्रों में चार आले दिखई देते हैं जिनमें से सबसे निचला आला तलगृह की कुंभ–सज्जा–पट्टी पर है और अन्य तीन उसी स्तर पर हैं जिसपर मूर्तियों से युक्त पट्टियाँ हैं। सबसे ऊपर का आला खजुराहो के मंदिर में पाये जाने वाले छज्जेदार वातायन की पूर्ण प्रतिकृति ही है और उसमें तीन खड़ी हुई आकृतियाँ हैं। नीचे के तीन आलों में जैन मूर्तियाँ अंकित हैं।

पहली और मध्य पंक्तियों के बीच की बांधना की सज्जा–पट्टी को प्रदर्शित करती है जिसके ऊपर एक प्रक्षिप्त पट्टिका है। मध्य और सबसे ऊपर की पंक्तियों के बीचक की बान्धना–सज्जा–पट्टी में ग्रास–पट्टिका है जिसके ऊपर एक प्रक्षिप्त कलश है। सबसे ऊपर की पंक्ति में ऊपर की सज्जा पट्टियाँ भरणी के समान प्रयुक्त की गयी हैं जिसमें आमलक तथा धारीदार पद्म सम्मिलित हैं। इसके ऊपर कपोत पर सज्जा–पट्टियों की दो पंक्तियाँ हैं जिनमें से ऊपर की पट्टी एक सुस्पष्ट अंतराल द्वारा शिखर से पृथक की गयी है।

इस मंदिर का शिखर सप्तरथ है। वह षोडश–भद्र है, जो भूमि–आमलकों से प्रकट है। प्रत्येक आमलक के ऊपर कपोत है। कर्ण–रथों में एक खड़ी पट्टी है। इस पूरी पट्टी में चैत्य आले हैं जिनमें से निचले में एक हीरक–गोटा है। सभी रथ–शिखर मुख्य परिधि–रेखा से आगे निकले हुए है। ऊपर एक लघु स्तूपाकार शिखर हैं जिसमें दो पीढ़े, चंदिकाएँ तथा आमलक हैं। इस परिधि के ऊपर एक बड़े आकार का धारीदार आमलक, दो चंद्रिकाएँ, एक छोटा आमलक, चंद्रिका और कलश है। कलश के ऊपर का अंतिम पुष्पांकन हाल ही में जोड़ा गया जान पड़ता है।

अंतराल की छत तीन आलों की एक श्रृंखला से आच्छादित दिखाई देती है। इनके ऊपर एक त्रिकोण–शीर्ष (उद्‌गम) है। इससे ऊपर की ओर तीन क्रमिक स्तरों में शाला–शिखर हैं। हर स्तर के ऊपरी भाग को कमल–पंखुड़ियों से सजाया गया है और उसके पाश्वों को रत्न–पट्ट से सामने से देखने पर हमें सात आलों की एक सुस्पष्ट पंक्ति दिखाई देती है। बीच के आले में एक खड़ी हुई यक्षी की आकृति है तथा उसके पार्श्व के आलों में सहायक देवी–देवताओं की आकृतियाँ हैं। आलों के ऊपर त्रिकोण–शीर्षों की तीन आरोही पंक्तियाँ हैं जिनमें से सर्वोपरि पंक्ति

सबसे अधिक चौड़ी है तथा आलों की संपूर्ण पंक्ति के ऊपर उठती जाती है। उसके आधार के पार्श्व में गोटों को प्रदर्शित करने वाले एक आले के ऊपर ले जाया गया है। सबसे ऊपर के त्रिकोण–शीर्ष में चैत्य–तोरणों की तीन पंक्तियाँ हैं। नीचे की दो पंक्तियाँ, जिनमें केवल उत्तरी अर्ध–भाग ही शेष बचा है, केवल अर्ध–तोरण ही प्रदर्शित करती हैं। इनमें से प्रत्येक पर तोरण–पाशों में मकर–मुख हैं। इनमें बीच में दो अर्ध–स्तंभ भी हैं। अर्ध–तोरणों की तीसरी पंक्ति के ऊपर एक तोरण है जिसके एक कीर्तिमुख के मुख से तीन श्रृखलाएँ लटकी हुई हैं। उनमें से बीच की श्रृंखला में एक घण्टिका है जिसके दोनों ओर पार्श्व में कमल–कलिका है। शेष श्रृंखलाएँ उन मकरों के मुख तक जाती हैं जो अर्ध–तोरणें की ऊपरी पंक्ति में अंकित हैं। सबसे ऊपर के पूर्ण तोरण के दोनों ओर पार्श्व में पिछले पैरों पर खड़ा हुआ व्याल भी है, तथा उस पर एक चौकोर शिखंत है जिसके ऊपर एक ऐसे सिंह की आकृति है जो एक हाथी पर झपट रहा है। इस अंकन के साथ ही शुकनासिका समाप्त होती है। सिंह की आकृति एक शिला पर टिकी हुई है जो शिखांत के ऊपर है। अर्ध–तोरण के पर्श्व में भी स्तूपाकार शिखर–शीर्ष है जिसमें धारीदार चंद्रिका, आमलक और चंद्रिका है।

गर्भगृह के द्वार–मार्ग सात शाखाओं वाला है। पहली शाखा का अलंकरण पत्र–लता द्वारा किया गया है तथा उसके पार्श्व में मंदार–माला है जिसने नीचे जाकर नागाकृतियों का रूप धारण कर लिया है। आकृतियाँ अब विकृत हो गयी हैं। दूसरी ओर चौथी शाखओं में गणों को नृत्य करते हुए या संगीत–वादय बजाते हुए चित्रित किया गया है। तीसरी शाखा पर जिसका उपयोग स्तंभ–शाखा के रूप में किया गया है, आठ यक्षियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। ठीक दायें द्वार–पथ में नीचे से ऊपर की ओर निम्नलिखित का अंकन किया गया है। (1) चतुर्भुजी देवी जिसका एक हाथ अभय–मुद्रा में है और अन्य हाथों में कुण्डलित कमलनाल, जलकुंभ है, वाहन नहीं है। (2) चतुर्भुजी देवी जो एक वस्तु (अब लुप्त) स्रूवा, पुस्तक और फल लिये हुए है। नीचे हिरण–जैसे वाहन का अंकन है।

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–292,

(3) चतुर्भुजी देवी जिसका हाथ अभय–मुद्रा में है और जो पाश, कुण्डलित कमलनाल और एक पदार्थ (अब लुप्त) लिये हुए है तथा पक्षी–वाहन पर आरूढ़ है। (4) चतुर्भुजी देवी जिसका हाथ अभय–मुद्रा में है और जो स्रुवा, पुस्तक और जलकुंभ लिये हुए है। उसका वृषभ–वाहन नीचे अंकित है। ठीक बायें द्वार–पथ में नीचे से ऊपर की ओर निम्नलिखित का अंकन किया गया है: (1) चतुर्भुजी देवी जिसके दो अवशिष्ट हाथों में कुण्डलित कमलनाल और शंख हैं, नीचे मकर–वाहन अंकित है। (2) चतुर्भुजी देवी जिसके सभी चिन्ह टूट गये हैं किन्तु शुक–वाहन पूरा सुरक्षित है। (3) चतुर्भुजी देवी जो तीन अवशिष्ट हाथों में कुंतल कमलनाल, पुस्तक और एक फल लिये हुए है, उसके पशु–वाहन का सिर अब नहीं है। और अंत में, (4) चतुर्भुजी देवी है जिसका हाथ अभय–मुद्रा में है और जो कुंतल कमलनाल, पुस्तक और जलकुंभ लिये हुए है, नीचे वृषभ–वाहन का अंकन है। पाँचवी शाखा का अलंकरण पारी–पारी से श्रीवत्स के अंकन और पुष्छगुच्छ–रचना द्वारा हुआ है। छठी शाखा का अलंकरण पारी–पारी से श्रीवत्स के अंकन और पुष्छगुच्छ–रचना द्वारा हुआ है। छठी शाखा का जो द्वार–मार्ग का प्रवग्रित वेष्टन है, अलंकरण नीचे अंकित एक व्याल के मुख से निकली एवं स्थूल रूप से उकेरी गयी पत्र–लताओं द्वारा किया गया है। अंकित या सातवीं शाखा का अलंकरण एक विशेष प्रकार की वर्तुलाकर गुच्छ–रचना द्वारा किया गया है। प्रथम शाखा और पार्श्व की मंदार–माला सरदल तक ले जायी गयी है। द्वार–मार्ग का सरदल स्तंभ–शाखओं पर टिका हुआ है जिनकमे आलों में पाँच देवियों की प्रतिमाएँ अंकित हैं। बीच के और अंतिम आलों में आसीन देवियाँ चित्रित हैं, इनमें से प्रत्येक चतुर्भुज भूत पर अवलंबित है। बीच के आले के पाश्वों में स्थित आलों में देवियों की खड़ी हुई मूर्तियाँ हैं। बीच के आलें में चतुर्भुजी चक्रेश्वरी अंकित है जिसका हाथ अभय–मुद्रा में है और वह गदा, पुस्तक और शंख लिये हुए है। वह गरूड़ पर असीन है और किरीट–मुकुट पहने हुए है। ठीक दाहिने छोर के आलें में अंबिका यक्षी की मूर्ति है जो आम्र–गुच्छ, कुंतल कमलनाल, कुंतल कमल–नाल सहित पुस्तक और एक बालक को लिये हुए है, वह सिंह पर आरूढ़ है। ठीके बायें सिरे के आलें में पद्मावती यक्षी है जो सर्प–फणावाली के नीचे एक कच्छप पर आसीन है। उसका

हाथ अभय–मुद्रा में है और वह पाश, कमल–कलिका और जल–कुंभ लिये हुए है। सरदल के पाँचों आलों के ऊपर उद्गम है। द्वार–मार्ग के आधार पर गंगा और यमुना अंकित हैं जिनके प्रत्येक ओर स्त्री–सेविकाएँ हैं। द्वार–पक्ष पर अंकित सेवक एक दूसरे के सामने अंकित हें तथा उनके पास जल–कुंभ है। दाहिनी आकृति के पीछे मकर चित्रित है तो बायीं आकृति के पीछे कच्छप। नदी–देवियों और उनकी सेविकाओं की आकृतियाँ बुरी तरह विकृत हो गयी हैं। यही हाल उन चार द्वारपालों का हुआ है जो दोनों ओर दो–दो बने हुए हैं। ये द्वारपाल क्रमशः द्वार–मार्ग के वेष्टन तथा द्वार–मार्ग के पार्श्व के अर्ध–स्तंभों के नीचे बने हुए है। देहरी के ऋजुरेखीय केंद्रीय प्रक्षेप पर एक सुंदर कमल–लता बनी हुई है जिसके पार्श्व में सेविकाएँ अंकित हैं। सेविकाओं के परे परंपरागत चार जल–देवता हैं। उनमें से प्रत्येक के पास जल–कुंभ है और वह करि–मकर पर आसीन है। स्तंभ–शाखाओं के नीचे के आलों में चतुर्भुजी श्रीदेवी की, तथा पद्मासन में बैठी हुई एवं अपने ऊपरी अवशिष्ट दाहिने हाथ में कमल–कलिका धारण किये हुए चतुर्भुजी लक्ष्मी की आकृति है जिसके आसन के नीचे कच्छप है। सातवीं शाखा के नीचे के आलों में कुबेर की मूर्तियाँ अंकित हैं जिनका एक हाथ अभय–मुद्रा में है और अन्य हाथों में वे परशु, कुंतल कमलनाल और एक भग्न वस्तु लिये हुए है। उसक आसन के नीचे तीन घट अंकित हैं। जो निधियों के प्रतीक हैं।

गर्भगृह के द्वार–मार्ग के पार्श्ववर्ती अर्ध–स्तंभ चौकोर हैं। वे एक ऐसे उपपीठ पर बने हुए हैं। जिसका अलंकरण वर्तुलाकार गुच्छि–रचना एवं कमल पंखुड़ियों से किया गया है। इनके ऊपर एक अलंकृत आधार (कुंभिका) है जिसमें खुर, उद्गम से सज्जित कुंभ, कलश और कपोत–युक्त सज्जा–पट्टियाँ हैं। स्तंभावली के निचले भाग में चतुर्भुजी द्वारपाल की मूर्ति है। उसके बीच के भाग का अलंकरण निम्नलिखित से किया गया है।[1]

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–293,

(1) कीर्तिमुख के मुख से निकलनेवाली लहरदार पत्र–लताएँ, (2) हीरक–आकृतियाँ, (3) घट–पल्लव, इससे ऊपर एक प्रक्षिप्त पट्टिका है जिसके ऊपर एक उच्चालक खण्ड है जिसमें घट–पल्लव अंकित है। ऊपर के स्तंभ–शीर्ष पर आमलक और पद्म द्वारा अलंकृति की गयी है। स्तंभ–शीर्ष पर भूत–टोडे टिके हुए हैं जिन पर कोने में भक्ति–विभोर नाग बने हैं। टोडे सरदलों को सहारा देते हैं जिनके तीन खसकों का अलंकरण निम्नलिखित से किया गया है: (1) सोलह मंगल–प्रतीक जिन्हें गर्भ–धारण के समय महावीर की माता ने स्वप्न में देखा था, (2) वर्तुलाकार गुच्छ–रचना जो पारी–क्रम से हीरक–आकृतियों के साथ बनायी गयी है, और (3) ग्रास–पट्टिका। सरदलों के ऊपर की अधरचना इस समय उपलब्ध नहीं है और उसका जीर्णो–द्वार हाल ही में चूना–पलस्तर द्वारा किया गया है।

गर्भगृह जिन अर्ध–स्तंभों पर टिका हुआ है उसमें आयताकार सादी स्तंभावली है। जो भी हो स्तंभावलियों के ऊपरी और निचले भागों में बीच. के अर्ध–स्तंभों पर घट–पल्लव अंकित हैं। ये स्तंभावलियाँ सामान्य रूपरेखा के उपपीठ और कुंभिका पर टिकी हुई है। इन सभी अर्द्ध–स्तंभों पर स्तंभ–शीर्ष हैं जिनके ऊपर एक पट्िका है जिसपर बेल–बूटे अंकित हैं। बीच के अर्ध–स्तंभों पर भूत–टोडे हैं। पिछले अर्ध–स्तंभ सादी वक्र–रेखा–युक्त हैं, जिनके ऊपरी भाग पर वलय है। सरदल सादा है, उसके दो खसके हैं और वह एक कपोत को सहारा देता है। जिस पर एक समतल छत है, जिसका अलंकरण एक बड़े कमल पुष्प द्वारा किया गया है। इस पुष्प की एाक चौकोर खण्ड में आवृत उकेरी गयी संकेंद्री पंखुड़ियों की चार पत्तियाँ हैं। इस पुष्प की एक चौकोर खण्ड में आवृत उकेरी गयी संकेद्री पंखुड़ियों की चार पत्तियाँ हैं। इस खण्ड के कोने कीर्तिमुखों से अलंकृत हैं। गर्भगृह की पूर्वी भीतरी छत समतल और सादी है।[1]

1–जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–294,

इस मंदिर में आदिनाथ की प्राचीन प्रतिमा के स्थान पर आदिनाथ की एक नयी मूर्ति प्रतिष्ठित है। प्राचीन प्रतिमा की केवल चौकी ही शेष रह पायी है। यह मंदिर आदिनाथ का ही था। यह तथ्य इस बात से प्रमाणित होता है कि गर्भगृह के द्वार–मार्ग के सरदल पर यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्ति अंकित है।

अंतराल के ऊपर शुकनासिका के उत्तरी और दक्षिणी अग्र–भागों में से प्रत्येक पर तीन–तीन आले बने हैं जिनमें देवी की आकृतियाँ हैं। ये तीन आले और अंतराल के दो आले मिलकर उत्तरी और दक्षिणी दोनों अग्र–भागों के पाँच आलों की एक खड़ी पंक्ति का निर्माण करते हैं। शुकनासिका के पूर्वी या अग्र–भाग पर सात आलों की एक आड़ी पंक्ति है जिनमें देवी–देवताओं की प्रतिमाएँ हैं।

अधिकांश आलों में यक्षियों की प्रतिमाएँ हैं क्योंकि उन सभी के शीर्ष पर पद्मासन में तीर्थकर–मूर्तियाँ हैं। सामान्यताया यक्षियों की आठ भुजाएँ अंकित की गयी हैं। और उनके साथी ही उनके वाहन भी दर्शाये गये हैं। किन्तु उनमें से अधिकांश के हाथ और अन्य लक्षण विकृत हो गये हैं। इन यक्षी–प्रतिमाओं का ठीक ढंग से परिरक्षण नहीं किया गया। यघपि उनके वाहन विघमान हैं। फिर भी उनकी पहचान कर पाना कठिन है, विशेषकर उस परिरिथति में जबकि कोई कम नही अपनाया गया हो।

दिक्पालों तथा उनके अपने वाहनों का अंकन यथोचित स्थान पर प्रथम पंक्ति के कोनों में किया गया है। कुबेर का वाहन नहीं है। निर्ऋृति की, जिसे प्रायः नग्न चित्रित किया जाता है, आकृति यहाँ प्रचलित वेशभूषा और अलंकारों से युक्त अन्य देवताओं की भाँति बनायी गयी है, एक श्वान को उसके वाहन के रूप में अंकित किया गया है।

दिक्पालों को अनिवार्या रूप से आच्छादित करने वाले वृषभ–शीर्ष अष्टवसुओं को वृषभ वाहन से युक्त चित्रित किया गया है। उनके हाथ वरद–मुद्रा में हैं और वे कुंतल कमल–नाथ एवं कुंतल कमलनाल सहित जलकुंभ लिये हुए हैं। दूसरे प्रकार के अंकन में एक हाथ वरद–मुद्रा में है तथा अन्य हाथ में परशु, कुंतल कमलनाल और जलकुंभ हैं।[1]

1—जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड–2, अमलानन्द घोष भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृ0–294,

<u>करगुंवा जी का जैन मंदिर</u>

झांसी कानपुर मार्ग पर मेडिकल कालेज के सामने कैमासन पहाडी से लगी पहाड़ियों के आंचल से संरक्षित करगंवा ग्राम में स्थित करगुंवा के जैन अतिशय क्षेत्र की गणना बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध जैन तीर्थ स्थलों में होती है। इस क्षेत्र के बारे में स्थानीय जैन समाज में वह किवदंती प्रसिद्ध है कि पेशवा बाजीराव द्वितीय जब झांसी के शासक थे, तब इस क्षेत्र में एक अभूतपूर्व घटना घटी।[1] उस समय झाँसी का एक नाम बलवंतनगर भी था। तब जैन खंडित मूर्तियों से लदी एक बैलगाड़ी उन्हें जल में सिराने के लिये उस ओर से गुजर रही थी। अक्समात वह बैलगाड़ी चलते–चलते एक स्थान पर अपने आप रूक गई। गाड़ीवान ने लाख प्रयत्न करने पर भी वह आगे नहीं बढ सकी। इसकी खबर झांसी के जैन समाज में तुरन्त ही फैल गयी। उस समय झांसी में जैन समाज के प्रमुख श्री सिंघई नन्हें जू थे। उन्हें उसी रात्रि के अंतिम प्रहर में एक स्वप्न में निर्देश हुआ कि जहां जैन मूर्तियां गड़ी हुई हैं, उन्हें उत्खनन कर तुरन्त निकाला जाना चाहिये। श्री सिंघई ने अपने इस स्वप्न की चर्चा जैन समाज के अन्य प्रमुख व्यक्तियों से की और यह निश्चय हुआ कि मूर्तियों को खोदकर निकाला जाना चाहिये। खुदाई शुरू हुई। सावधानी से खुदाई करते–करते वहां गड़ी मूर्तियों की झलक स्पष्ट होने लगी। इस पर यह आवश्यक समझा गया कि उन्हें पूरी निकालने के पहिले उनकी सुरक्षा की व्यवस्था करली जाये। श्री नन्हें जू का झांसी दरबार में बड़ा सम्मान था उन्होंने पेशवा बाजीराव द्वितीय को इस आश्चर्यजनक घटना की सूचना दी। पेशवा की उत्सुकता इस चर्चा से बढ़ गई और वह स्वयं घोड़े पर चढ़कर अपने दरबारियों सहित नन्हें जू के साथ हो लिया। उसकी उपस्थिति में अब फिर खुदाई शुरू की गई और वहां से पांच जैन मूर्तियां और एक जैन स्तम्भ निकला। कहा जाता है कि जब यह कार्य संपन्न हो रहा था तभी आपसी बातचीत क दौरान हंसी–हंसी में पेशवा और नन्हें जू के बीच, किसका घोड़ा तेज दौड़ता है इस पर होड़ लग गई।

1– बुन्देलखण्ड दर्पण, झाँसी महोत्सव 1998, ले0 डा0 बी0 बी0 गुप्त, पृ0 52,

सौभाग्य से नन्हें जू का घोड़ा आगे निकल गया। पेशवा ने उनकी जीत स्वीकार कर उनसे कोई पुरस्कार लेने का आग्रह किया। इस पर नन्हें जू ने विनय पूर्वक निवेदन किया कि जहां जैन मूर्तियां निकली हैं, उसके चारों ओर का 8 एकड़ भूभाग उन्हें दे दिया जाय। पेशवा ने यह निवेदन तुरन्त वहीं स्वीकार कर लिया। नन्हें जू ने अब झांसी और आस-पास के जैन समाज के सहयोग से मूर्तियों की स्थापना के लिये एक मंदिर बनवाया। चारों ओर परकोटा खिचवाया और दो कुंये खुदवाये। श्री सिंघई नन्हें जू ने तभी श्री महावीर जी की एक प्रतिमा भी वहीं स्थापित की। इस प्रतिमा के नीचे अंकित अभिलेख में श्री नन्हें जू का नाम और तिथि माघ मास की तीज व संवत् 1851 (1793 ई0) अंकित है।

करगंवा जी के अतिशय क्षेत्र में प्रस्थापित श्री शांतिनाथ, श्री आदिनाथ, श्री पार्श्वनाथ, की दो मूर्तियों और श्री नेमिनाथ की मूर्तियों के नीचे अंकित अभिलेख से विदत होता है कि वे सभी पांचों मूतियां फाल्गुन बदी 10 संवत 1343 (1924 ई0) को स्थापित हुई थीं जैन स्तम्भ पर संवत् 1351(1294 ई0) खुदा हुआ है। इस समय बुन्देलखण्ड पर तुर्को का अधिपत्य था चंदेरी राज्य आल्हा खंड के सिद्ध राजा परमाल की मृत्यू (1203 ई0) के साथ ही छिन्न-भिन्न हो गया था। कालांतर में धर्मान्ध मुसलमान शासक बुन्देलखण्ड पर अपना-अपना फिर आधिपत्य जमाने के लिये बार-बार आक्रमण करते रहे और इस संभाग की तमाम जैन मूर्तियां इन आक्रमणों में अन्य हिन्दू-देवी देवताओं की मूर्तियों की तरह तोड़ी जाती रहीं। ऊपर उल्लिखित जैन मूर्तियां संभवतः खंडित किये जाने के भय से ही जमीन में गाड़ दी गई थीं। इन मूर्तियों के करगुंवा में गड़े होने की बात जैन समाज के किन्हीं प्रमुख व्यक्तियों को जिनमें श्री नन्हें जू भी थे पता होगी अथवा संयोग से ज्ञात हो गई होगी। झांसी में ब्राम्हण पेशवाई हिन्दू राज्य स्थापित हो जाने पर उचित अवसर देखकर नन्हें जू ने बैलगाड़ी वहां रूक जाने और अपने स्वप्न की चर्चा कर मूर्तियों को निकालने की योजना बनाई होगी। घुड़दौड़ की बात में कुछ भी असंभव नहीं है।

उपर्युक्त किवदंती में जो पेशवा बाजीराव द्वितीय का उल्लेख किया जाता है उसके बारे में यहां कुछ कहना उचित होगा । यह घटना जैसा कि नन्हें जू द्वारा

प्रस्थापित श्री महावीर जी की प्रतिमा के नीचे अंकित संवत् 1851 से पता चलता है सन् 1793–94 ई0 में कभी घटित हुई थी। तब तक बाजीराव मराठा साम्राज्य का पेशवा नहीं हुआ था। वह 6 दिसम्बर सन् 1796 को पूना में पेशवा बना था। अस्तु किवदंती में जिस बलवंतनगर (झांसी) के शासक की बात कही गई है, वह वास्तव में पेशवा बाजीराव न होकर झांसी का सूबेदार रघुनाथ हरि निवालकर (1770–1795 ई0) था। वह पूना के पेशवा माधवराव प्रथम द्वारा 1770 ई0 में नियुक्त किया गया था।

श्री करगुंवा जी का यह जैन अतिशय क्षेत्र समाज के उत्साही कार्यकर्ताओं के सद् प्रयासों से अब बहुत विकसित हो गया है। प्रवेश द्वार, पक्की सड़क के अलावा पहाड़ी पर एक छोटा मंदिर है, जैन धर्मशाला, दालान सहित कई कमरे आदि बन चुके हैं। कुंओं की मरम्मत कर उनके पानी का उपयोग किया जाता है। मुख्य मंदिर में संगमरमर का फर्श और उसके आस पास पत्थर के फर्श लगाये जा चुके हैं। मंदिर के चारों ओर फूलों, फलो के बगीचे लग गये हैं। एक बड़ा हॉल निर्माणधीन है, जिसे श्रोताओं के बैठने के स्थान के अलावा एक वृहत पुस्तकालय का भी प्रावधान है।[1]

1– बुन्देलखण्ड दर्पण, झाँसी महोत्सव 1998, ले0 डा0 बी0 बी0 गुप्त, पृ0 53,

बुन्देलखण्ड के अन्य जैन मंदिर

बुन्देलखण्ड में जैन धर्म का व्यापक प्रचार–प्रसार देखने को मिलता है। इसी के फलस्वरूप यहाँ के विभिन्न स्थलों से परवर्ती गुप्त काल से लेकर मध्यकाल तक के मंदिर और बहुसंख्यक मूर्तियाँ आदि प्रकाश में आये हैं। यहाँ के अन्य स्थलों से पुरातात्विक सर्वेक्षण द्वारा व्यापक मात्रा में जैन मंदिर, मंदिर अवशेष, भग्नमूर्तियाँ आदि प्राप्त हुये हैं।

इसी क्रम में विकास खण्ड जखौरा के विभिन्न ग्रामों में स्थित 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के मध्य में निर्मित जैन मंदिर प्रकाश में आये हैं।

जखौरा विकास खण्ड जनपद ललितपुर के अन्तर्गत आता है। जखौरा के विभिन्न ग्रामों में स्थित जैन मंदिर का विवरण इस प्रकार से है।

कैलवारा–

जखौरा–राजघाट मार्ग पर राजघाट से लगभग 2 कि0मी0 दक्षिण में यह गाँव स्थित है।

इस गाँव में लगभग 19वीं शताब्दी में निर्मित पूर्वाभिमुख जैन–मंदिर स्थित है। इसके गर्भगृह में संगमरमर से निर्मित तथा सप्तकणों के छत्र से सुशोभित तीर्थक्र पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में निरूपित प्रतिमा स्थापित है। मुख्य प्रतिमा के दोनों पार्श्वों में दो संगमरमर निर्मित और तीन पीतल निर्मित अन्य तीर्थकरों की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं।

गर्भगृह की विमान–वेदिका जैन–धर्म के पवित्र प्रतीकों और लांछनों तथा विभिन्न ज्यामितीय एवं वानस्पतिक डिजाइनों से शोभित हैं। गर्भगृह के ऊपर बुन्देला शैली का उन्नत शिखर शोभायमान है।[1]

करमुहारा–

जखौरा–राजघाट मार्ग पर स्थित लागौन गाँव से लगभग 5 कि0मी0 दूर कच्चे मार्ग पर स्थित है।

1–पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट, 1988–89, भारतीय पुरातत्व इकाई, झाँसी, पृ0 25,

इस गाँव के बीच में बीच में एक ग्रामीण के आवासीय भवन के क्षेत्र में लगभग 19वीं शताब्दी का जैन-मंदिर बना हुआ है। इस उत्तराभिमुख मंदिर के गर्भगृह में चन्द्रप्रभनाथ की संगमरमर निर्मित प्रतिमा स्थापित है। मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर पीतल निर्मित जिनों की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। मंदिर की अलंकृत विमानवेदी विभिन्न ज्यामितीय एव वानस्पतिक डिजाइनों के अतिरिक्त स्वास्तिक, गज, अश्व, चन्द्र जैसे पवित्र लांछनों से सज्जित है। गर्भगृह के ऊपर बुन्देला शैली का उन्नत शिखर सुशोभित हैं।

गुरसौरा -

जखौरा-राजघाट मार्ग पर स्थित लागौन गाँव से पश्चिम, लागौन-गुरसौरा कच्चे मार्ग पर 10 कि0मी0 तथा ललितपुर से लगभग 39 कि0मी0 की दूरी पर यह गाँव स्थित है।

इस गाँव के अन्तर्गत लगभग 19वीं श0ई0 में निर्मित जैन-मंदिर स्थित है। ऊँचे परकोटे से आवृत इस मंदिर के गर्भगृह में शांतिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसके पार्श्वों में अन्य ध्यानी तथा खड्गासन जिनों की प्रतिमाएँ स्थापित है। इस मंदिर के ऊँचे प्रवेश-द्वार के सम्मुख सोपान बनाये गये हैं, जिसके ऊपर मराठा शैली का शिखर निर्मित है। मंदिर के चारों कोणों पर स्थित ऊँचे बुर्जो के ऊपर खरबूजिया शैली के छोटे गुम्बद शोभित हैं तथा गर्भगृह के ऊपर बुन्देला शैली का ऊँचा शिखर है।

जखौरा -

बांसी-राजघाट मार्ग पर स्थित विकासखण्ड मुख्यालय जखौरा, ललितपुर से लगभग 38 कि0मी0 तथा जनपद मुख्यालय ललितपुर से लगभग 30 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है।

बाजार के मध्य में विविध जीर्णोद्धारों द्वारा व्यापक रूप से परिवर्तन किये गये जैन मंदिर के शिखर अत्यन्त आकर्षक हैं। इनके दक्षिण और वाम पार्श्वों के उन्नत बुन्देला शिखरों के मध्य में विशाल गोल गुम्बद का संयोजन अत्यंत भव्य दिखता है। इस मंदिर परिसर के प्रवेश द्वार के ऊपर दो लघु गुम्बदों के मध्य में

निर्मित अर्धवृत्ताकार संरचना तथा इसका शीर्ष वास्तुशैली की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

लगभग 17वीं–18वीं श0ई0 में निर्मित इस मंदिर की देवकुलिकाओं में विभिन्न तीर्थकर की प्रतिमायें स्थापित हैं। मंदिर की मुख्य देवकुलिका में संगमरमर निर्मित पार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित है। जिसके पार्श्वों में दो लघु तीर्थकरों की प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठित हैं। इन मूर्तियों के अधोवर्ती पट्टिका पर सफेद संगमरमर से निर्मित तीन तीर्थकरों की प्रतिमाएँ रखी हैं, जिनमें नेमिनाथ की प्रतिमा अत्यन्त कलात्मक है। इस देवकुलिका के पृष्ठ–भाग में विभिन्न तीर्थकरों के लांछनों का निरूपण अवलोकनीय है। मंदिर के कक्षों में रखी हुई कुछ जैन तीर्थकरों की प्रतिमाएँ मध्यकालीन जैन कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।[1]

मंदिर में स्थित एक दूसरी देवकुलिका में काले संगमरमर से निर्मित पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। इसके पार्श्व में संगमरमर निर्मित चार अन्य जिनों की प्रतिमाएँ भी रखी हुई हैं। इसके अतिरिक्त पीतल निर्मित अन्य तीर्थकरों की प्रतिमाओं में सप्तफणों के छत्र से युक्त पार्श्वनाथ की प्रतिमा उल्लेखनीय है।

इस मंदिर के प्रवेश द्वार के सम्मुख बनी हुई दो वेदिकाओं पर सफेद संगमरमर निर्मित विभिन्न जिनों की प्रतिमाएँ पूजार्थ प्रतिष्ठित हैं।

थनवारा –

जखौरा–राजघाट मार्ग पर स्थित सीरोन खुर्द से उत्तर दिशा में लगभग 3 कि0मी0 दूर यह गाँव, सीरोन खुर्द–थनवारा कच्चे मार्ग पर स्थित है।

इस गाँव के पूर्व दिशा में लंबाई 12वीं शताब्दी ई0 की एक पक्की बाबली है। इसके जगती के कणों को खुर कुम्भ, औरी कलश तथा सादे अन्तर्पत्रों से सज्जित किया गया है। बाबली में नीचे जल तक पहुँचने के लिये दीवारों पर वृत्ताकार सोपान बनाये गये हैं। इसकी दीवारों की रथिकाओं में शोभित मिथुन आकृतियाँ तथा नर्तन करते गजों का अंकन अत्यन्त कलात्मक एवं प्रभावशाली है।

1– पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट, 1988–89, भारतीय पुरातत्व इकाई, झाँसी, पृ0 27,

इस बावली के पार्श्व में लगे सती पट्ट (माप 1.60X0.56 मी0) पर देवनागरी लिपि में अंकित लेख द्रष्टव्य है। इस पर सूर्य, चन्द्र के निरूपण के साथ ही साथ सती होने वाले स्त्री–पुरूष के युग्म को प्रदर्शित किया गया है।

गाँव के बीच में बने हुए एक आधुनिक जैन मंदिर में संगमरमर से निर्मित विभिन्न तीर्थकरों की ध्यानी तथा कायोत्सर्ग मुद्रा में निरूपित प्रतिमाएं प्रतिष्ठित हैं। मंदिर के बाहर चबूतरे पर तथा दीवालों के आलों में जैन तीर्थकरों की मध्यकालीन खण्डित प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। मंदिर की पश्चिमी दीवाल के पास जैन तीर्थकर पार्श्वनाथ की यक्षी पद्मावती (माप 1.46X0.40 मी0) की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। उसके शीर्ष पर निरूपित सर्पकणों का छत्र अत्यन्त कलात्मक दृष्टिगत होता है।

देवरी –

राजघाट–जखौरा मार्ग पर स्थित यह गाँव लागौन से पश्चिम लगभग 5 कि0मी0 तथा ललितपुर से ल0 22 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है।

गाँव के बीच में लगभग डेढ़ मीटर कुर्सी पर उत्तराभिमुख जैन मंदिर निर्मित है। इस मंदिर की देवकुलिका में बनी वेदिका पर पाँच सर्पफणों के छत्र से शोभित एवं काले पत्थर से निर्मित सुपार्श्वनाथ की ध्यानस्थ प्रतिमा स्थापित है जिसकी पादपीठ पर उनका लांछन स्वास्तिक अंकित है। सुपार्श्वनाथ की मुख्य मूर्ति के दोनों पार्श्वो में संगमरमर से कायोत्सर्ग मुद्रा में निरूपित पार्श्वनाथ की दो अपेक्षकृत छोटी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। गर्भगृह के समक्ष स्तम्भों पर आधारित मण्डप के अतिरिक्त, मंदिर में तीन ओर बरामदों के साथ लघु प्रांगण का प्राविधान है।

ननौरा –

जखौरा–राजघाट मार्ग पर स्थित गाँव चक्नवपास से पंचौरा जाने वाले कच्चे मार्ग पर लगभग 12 कि0मी0 तथा जनपद मुख्यालय ललितपुर से लगभग 35 कि0मी0 की दूरी पर ननौरा गाँव स्थित है।[1]

1–पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट, 1988–89, भारतीय पुरातत्व इकाई, झाँसी, पृ0 28,

इस गाँव के अन्तर्गत लगभग 18वीं शताब्दी में निर्मित जैन–मंदिर के गर्भगृह में सप्तफणों के छत्र से सुशोभित संगमरमर से बनी पार्श्वनाथ की ध्यानस्थ प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसके पार्श्वों में ध्यानी जिनों की पाँच अन्य प्रतिमाएँ भी स्थापित हैं। दूसरी देवकुलिका के अलंकृत वेदिका पर पीतल निर्मित ध्यानी तीर्थकरों की छोटी–बड़ी दस प्रतिमाएँ हैं।

नौहरकला –

जखौरा–राजघाट मार्ग पर स्थित लागौन गाँव से उत्तर कच्चे मार्ग पर यह गाँव लागौन से लगभग 5कि0मी0 की दूरी पर तथा ललितपुर से ल0 34 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है।

गाँव के मध्य में लगभग 19वीं–20वीं शताब्दी में निर्मित जैन–मंदिर गर्भगृह में खड्गासन मुद्रा में पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गयी है, जिसके दोनों पार्श्वों में अन्य जिनों की ध्यानी प्रतिमाएँ भी रखी हुई हैं। इस उत्तराधिमुख मंदिर के गर्भगृह के ऊपर शिखर के अतिरिक्त चारों कोणों पर खरबूजिया शैली के चार आकर्षक गुम्बद शोभित है।

बांसी –

ललितपुर–झाँसी मार्ग पर स्थित बांसी, जनपद मुख्यालय ललितपुर से लगभग 22 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है।

इस गाँव के अन्तर्गत निर्मित लगभग 19वीं शताब्दी के दिगम्बर जैन–मंदिर के गर्भगृह में काले संगमरमर से बनी हुई पार्श्वनाथ की ध्यानस्थ प्रतिमा स्थापित है। इसके दोनों पार्श्वों में सफेद संगमरमर की दो अन्य ध्यानी जिनों की प्रतिमाएं प्रतिष्ठित है।

मसौरा खुर्द –

ललितपुर–सागर मार्ग पर ललितपुर से लगभग 6 कि0मी0 दूर मसौरा खुर्द गाँव स्थित है।[1]

1–पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट, 1988–89, भारतीय पुरातत्व इकाई, झाँसी, पृ0 30.

गाँव के बीच में लगभग 17वीं–18वीं श0 ई0 में निर्मित जैन मंदिर का शिखर दर्शनीय है। मंदिर के अन्तर्गत देवकुलिकाएँ निर्मित हैं जिनकी वेदिका जैन धर्म से सम्बन्धित विभिन्न लांछनों यथा, वृषभ, स्वास्तिक, मृग के साथ–साथ फूल–पत्तियों और विविध वानस्पतिक डिजाइनों से अलंकृत है। स्तम्भों पर आधारित इनकी सज्जा अत्यंत आकर्षक है। ग्रामवासियों द्वारा यहाँ प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ चोरी चली गयी बतायी गयीं । इस मंदिर की देवकुलिकाओं के ऊपर बुन्देला के क्रमशः बड़े एवं छोटे आकार के दो शिखरों का संयोजन किया गया है।

रागपंचमपुर –

जखौरा–ललितपुर मार्ग पर स्थित मनगुवां से पूव्र 4 कि0मी0 तथा ललितपुर से लगभग 18 कि0मी0 की दूरी पर यह गाँव स्थित है।

गाँव के अन्तर्गत ल0 2 मीटर ऊँची जगती पर बना हुआ लगभग 19वीं श0ई0 में निर्मित जैन मंदिर चतुर्दिक चहारदीवारी से आवृत है। इस मंदिर की देवकुलिका में अलंकृत वेदी पर श्वेत संगमरमर से निर्गित और सर्पफणों के छत्र से शोभित पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में रूपायित प्रतिमा प्रधान मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित है।

मंदिर के नारयक देवता के दोनों पार्श्वों में संगरमर तथा पीतल निर्मित कुल 11 तीर्थकर प्रतिमाएँ स्थापित हैं। विमान–वेदी विविध फूल–पत्तियों की डिजाइनों, जैन धर्म के पवित्र प्रतीकों–गज, वृषभ, सिंह ,स्वास्तिक जैसे लांछनों से अभिमण्डित है। इस पाश्चिमाभिमुख मंदिर का प्रवेश–द्वार छोटा है। गर्भगृह के ऊपर बुन्देला शैली का उन्नत शिखर अत्यन्त प्रभावशाली है।

लागौन –

जखौरा–राजघाट मार्ग पर स्थित यह गाँव जखौरा से लगभग 11 कि0मी0 तथा ललितपुर से 29 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है।[1]

1–पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट, 1988–89, भारतीय पुरातत्व इकाई, झाँसी, पृ0 32,

गाँव के मध्य में बड़ा दिगम्बर जैन मंदिर के नाम से प्रसिद्ध एक मंदिर बना हुआ है। लगभग 19वीं शताब्दी में निर्मित तथा पर्याप्त रूप से जीर्णोद्वारित इस मंदिर के प्रवेशद्वार के अग्र–भाग में मराठा शैली का शिखर द्रष्टव्य है। यह मंदिर लगभग डेढ़ मीटर ऊँचीं कुर्सी के ऊपर बना हुआ है। जिसके मध्यवर्ती भाग में सोपान निर्मित हैं।

मंदिर के गर्भगृह के मध्य में सर्पकणों के छत्र से सुशोभित प्रस्तर–निर्मित पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। इनके पार्श्वो में पीतल की चार ध्यानी तीर्थकर प्रतिमाओं के अतिरिक्त चार संगमरमर निर्मित ध्यानस्थ जिनों की प्रतिमाएँ भी प्रतिष्ठापित हैं। मुख्य देवकुलिका के वेदीयुक्त विमान के सम्मुख विविध फूल–पत्तियों की डिजाइनों से उत्कीर्ण प्रस्तर–स्तम्भ लगाये गये हैं। वेदिका की पीठ को जैन धर्म के मांगलिक लांछनों तथा पशु–पक्षियों के उत्कीर्णन द्वारा अलंकृत किया गया है।

मुख्य देवकुलिका के समक्ष पन्द्रह प्रस्तर स्तम्भों पर आधारित विशाल मण्डप बना हुआ है। जिसमें लगे हुए स्तम्भ विभिन्न वानस्पतिक डिजाइनों से सज्जित हैं। गर्भगृह के ऊपर ऊँचा शिखर निर्मित है। इस मंदिर के पास ही एक छोटा दिगम्बर जैन–मंदिर निर्मित है जिसके चारों कोणों पर चार बुर्ज बनाये गये हैं। यह पश्चिमाभिमुख मंदिर ऊँची कुर्सी पर बना हुआ है। जिसके मध्य में सोपान का विधान है। इसके सामान्य गर्भगृह में पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में रूपायित प्रतिमा स्थापित है।

सीरोन खुर्द –

सीरोन खुर्द गाँव ललितपुर–राजघाट–जखौरा मार्ग पर ललितपुर से उत्तर पूर्व लगभग 33कि0मी0 की दूरी पर 24°49 उत्तरी अक्षांस एवं 78°19 पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। जखौरा से लगभग 9 कि0मी0 दूर इस गाँव तक बांसी–राजघाट मार्ग द्वारा, बस जीप या टैक्सी से पहुँचा जा सकता है।[1]

1–पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट, 1988–89, भारतीय पुरातत्व इकाई, झाँसी, पृ0 25,

सीरोन खुर्द का अट्ठारहवीं शताब्दी का सुविख्यात जैन मंदिर उसी स्थान पर स्थित प्राचीन मंदिर के अवशेषों से निर्मित किया गया है। प्राचीन मंदिर का प्रवेश द्वार वर्तमान समय में इसी गाँव में जैन संग्रहालय के समक्ष प्रदर्शित है। स्थानीय निवासियों से ज्ञात हुआ कि जैन मंदिर के परिसर में ऊँचे चबूतरे पर प्रतिष्ठित तीर्थकर शान्तिनाथ की प्रस्तर प्रतिमा कुछ वर्षो तक मंदिर के गर्भगृह में स्थापित थी। प्रवेश द्वार के उत्तरंग के ललाटबिम्ब पर निरूपित शान्तिनाथ की लघु प्रतिमा इस कथन की पुष्टि करती है।

प्राचीन मंदिर के वास्तु अवशेष शैली के अनुसार लगभग 11वीं शती ई0 के प्रतीत होते हैं। इससे स्पष्ट है कि यहाँ इस काल में एक भव्य जैन मंदिर बनवाया गया था। कालान्तर में इसके ध्वस्त हो जाने पर अट्ठारहवीं शताब्दी में जैन मतावलम्बियों ने नया मंदिर बनवा कर उसमें शान्तिनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में निरूपित प्रतिमा स्थापित किया। इस मंदिर के परिसर में जैन मतावलम्बियों ने अनेक कक्षों से युक्त धर्मशाला और एक जैन संग्रहालय का भी निर्माण कराया है। संग्रहालय में जैन, वैष्णव और शैव मूर्तियाँ, प्राचीन मंदिरों के स्तम्भ, रथिकाएँ, प्रवेश–द्वार, आमलक तथा अन्य वास्तुखण्ड बड़ी मात्रा में संग्रहीत हैं।

यहाँ सर्वाधिक कलात्मक प्रतिमाएँ जैन तीर्थकरों की हैं। इस प्रकार की दो जिन चौमुखी (प्रतिमा सर्वतीभद्रिका) मूर्तियाँ सर्व उल्लेखनीय हैं जिनमें चारों ओर पद्मासन में विराजमान तीर्थकर की प्रतिमाएँ निरूपित हैं। इसके अतिरिक्त स्थल पर रखी एक अन्य प्रतिमा सर्वतोभद्रिका द्रष्टव्य है जिसमें सज्जित केश एवं आभूषणधारी पुरूषों को चारों ओर उकडूँ दर्शाया गया है।

सिरसी –

जखौरा–ललितपुर मार्ग पर स्थित यह गाँव जखौरा से लगभग 4 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है।

जखौरा–ललितपुर मार्ग के दाहिनी ओर गाँव के मध्यवर्ती भाग में लगभग 17वीं–18वीं शताब्दी में निर्मित जैन–मंदिर है। ग्रामवासियों के अनुसार इस मंदिर की प्राचीन मूर्तियाँ तथा विमान मध्यप्रदेश स्थित डबरा के जैन मंदिर में स्थानन्तरित कर दी गयी हैं। लगभग 100 मीटर क्षेत्रफल में स्थित इस मंदिर का प्रमुख

प्रवेश–द्वार पश्चिम दिशा की ओर था जो आंशिक रूप से भग्न हो जाने के कारण बन्द कर दिया गया है। वर्तमान समय में पूर्व दिशा की ओर बनाए छोटे द्वार का प्रयोग प्रवेश–द्वार के रूप में किया गया है। वर्तमान समय में पूर्व दिशा की ओर बनाये गय छोटे द्वार का प्रयोग प्रवेश–द्वार के रूप में किया गया है। इस मंदिर में पश्चिमाभिमुख दो देवकुलिकाओं (देवायतनों) का निर्माण किया गया है।

मुख्य देवकुलिका लगभग आधा मीटर ऊँची जगती पर निर्मित है, जिसके मध्य में अलंकृत विमान के अन्तर्गत सप्तफणों के छत्र से शोभित पार्श्वनाथ की पीतल निर्मित दो ध्यानी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित है। तीन लघु दन्तूलिका युक्त प्रवेश–द्वार वाले विमान का शिखर गजपृष्ठाकार है। लाल प्रस्तर से निर्मित वेदिका की पीठ दो कमल–पत्रों के मध्य सादे अन्तर्पत्र से सज्जित की गयी है। विमान की पीठ तीर्थकरों के लांछन हिरन, सिंह, अश्व, गज जैसे प्रतीकों और मांगल्य विहगों द्वारा अलंकृत हैं।

इसके पार्श्व में समान शैली की दूसरी देवकुलिका में अलंकृत विमान में संगमरमर से निर्मित चन्द्रप्रभनाथ की ध्यानस्थ प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इस देवकुलिका का विमान भी दन्तूलिका मेहराब से युक्त तीन लघु–प्रवेश–द्वारों की संरचना से शोभित है, जिसके ऊपर गजपृष्ठाकार शिखर का निर्माण किया गया है। विमान–वेदी की पीठ जिनों (तीर्थकरों) के विविध लांछनों और अन्य मांगल्य विहगों के अंकन से सुसज्जित हैं।

देवकुलिका के समक्ष सोलह स्तम्भों पर आधारित एक विशाल मण्डप बना हुआ है। दो स्तम्भों के मध्य प्रस्तर निर्मित सिरदल हैं तथा प्रस्तर–स्तम्भों का अष्टकोणीय मध्य भाग एवं उनके ऊपरी भाग में घट–पल्लव जैसी गढ़न की संरचना सुदर्शनीय है।

मंदिर के मध्यवर्ती भाग में एक प्रांगण है जिसके एक पार्श्व में बरामदा और आवासीय कक्ष बने हुए हैं। मुख्य गर्भगृह एवं अपेक्षकृत छोटे गर्भगृह के ऊपर बुन्देला शैली के दो उन्नत शिखर निर्मित हैं। मंदिर प्रांगण में निर्मित कुएँ की दीवार के आले में दो पंक्तियों में उत्कीर्ण लघु तीर्थकर तथा उनके पार्श्व में रूपायित स्थानक तीर्थकर मध्यकालीन कला की उत्कृष्टता के परिचायक हैं।

अध्याय-पाँच

मन्दिर स्थापत्य
एवं
अभिलेख

अध्याय–5

स्थापत्य संबंधी परम्परायें –

प्राचीन काल में स्थापत्य के बोधक विभिन्न शब्द प्रचलित रहे उनमें वास्तुशास्त्र अधिक व्यवारिक और तर्क संगत है। शिल्पशास्त्र का अर्थ भी प्रायः वही है किन्तु वह ज्यादातर मूर्तिकला और मूर्तिशास्त्र का बोधक है।

स्थापत्य शब्द उसकी अपेक्षा सीमित है और उसमें स्थापत्य की किसी विशेष शैली के प्रतिष्ठापक वर्ग घटाने का अथवा स्थापत्य या मूर्तियों की निर्माण शाला का बोध होता है।

जैन स्थापत्य में कदाचित एक ही ग्रन्थ वत्थुसार–पयरण लिखा गया। प्राकृत भाषा के इस ग्रन्थ में तीन अध्याय हैं: गृह प्रकरण, बिंबपरीक्षण प्रकरण और प्रासाद प्रकरण।

जैन धर्म में मंदिर की मान्यता का रहस्य कदाचित कहीं प्रकट नहीं किया गया। मंदिर अनिवार्य रूप से किसी तीर्थमट को समर्पित होता है इसलिए उसे एक स्मारक की संज्ञा देना किसी सीमा तक तर्कसंगत हो सकता है पर यह निश्चित है कि मंदिर ऐसा स्मारक नहीं जो किसी के अंतिम संस्कार के स्थान पर अथवा अस्थि आदि अवशेषों पर निर्मित किया जाता है।

मंदिर स्थापत्य

जैन मंदिर दो वर्गों में विभक्त किये जो सकते हैं घर देरासर या गृह मंदिर और पाषाण या काष्ठ निर्मित मन्दिर।

घर–देरासर गुजराती जैन समाज की एक अपनी ही विशेषंता है और ऐसा मंदिर प्रायः प्रत्येक घर में होता है चाहे उसके साधन कितने ही सीमित क्यों ना हो काष्ठ या पाषाण से निर्मित मंदिरों की यथापि लघु अनुकृति के रूप में घर में परिवार द्वारा उपासना के लिए ये देरासर बनाये जाते हैं।

गुप्तकालीन प्रतिमायेँ

कुछ ही समय पूर्व तीर्थकरों की तीन अभिलेखित प्रतिमाएँ प्रकाश में आयी हैं। जो मध्य प्रदेश के विदिशा जिले में दुर्जनपुर नामक ग्राम में प्राप्त हुयी हैं और वर्तमान में विदिशा संग्रहालय में संरक्षित हैं।[1] पद्मासनस्थ ध्यान मुद्रा में तीर्थकरों के पादपीठ पर अभिलेख चक् उत्कीर्ण हैं जिसकी परिधि का अंकन सामने की ओर है। इनमें से 2 प्रतिमाओं की मुखाकृतियाँ विखिण्डित हो चुकी हैं किन्तु उनके पीछे भामण्डल तथा पर्श्व में दोनों ओर चमरधारी पुरूष खड़े हैं। इन भामण्डलों की बाहरी परिधि नखाकार किनारी से अलंकृत हे तथा केन्द्र में एक संदर खिला हुआ बहुदल कमल है। तीसरी मूर्ति का प्रभामण्डल अधिकांशतः नष्ट हो चुका है और यह भी निश्चित नहीं है कि इस मूर्ति के पार्श्व में खड़े हुये सेवक अंकित थे या नहीं। किन्तु तीर्थकर की मुस्कानयुक्त मुखाकृति का एक अंश मात्र शेष है। नासिका , नेत्र और ललाट भाग खण्डित हो चुके है। शीर्ष के शेष भग में कानों के लम्बे छिद्रयुक्त पिण्ड दिखाई देते हैं। इन तीनों प्रतिमाओं के वक्षस्थलों पर श्री वत्स चिन्ह स्पष्टतः परिलक्षित है। प्रत्येक तीर्थकर का धड़ एक पूर्ण विकसित एवं सुस्पष्ट वक्ष स्थल युक्त है। जो गुप्तकालीन मूर्तिकला भुजाओं की स्थिति विशेष प्रकार की है जो समूची प्रतिमा को एक त्रिकोणाकार रूप प्रदान करती है जिसमें सिर त्रिकोण का शीर्ष भाग और दोनों भुजायें त्रिकोण की दो भुजाओं का रूप गृहण करती प्रतीत होती है। इससे ऐसा प्रतीत होता कि इस काल में और कम से कम जैन ध्यानावस्थित प्रतिमाओं में पद्मासन मुद्रा का अंकन योगासन की एक आदर्श मुद्रा के रूप में मान्य रहा होगा।

ये मूर्तियाँ मात्र जैन धर्मे के इतिहास तथा मूर्तिकला की दृष्टि से ही नही अपितु गुप्तकालीन कला के इतिहास की दृष्टि से भी विशष महत्वपूर्ण है।[2]

1– जर्नल ऑफ दि ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, बडौदा, 1969, पृ0 247,
2– गुप्त स्कल्पचर, ऑक्सफोर्ड, जे0 सी0 हार्ल, 1974, पृ0 30,

इन तीन में से एक प्रतिमा में उत्कीर्ण अभिलेख अधिक सुरक्षित रहा सका है। इस अभिलेख के अनुसार महाराजाधिराज रामगुप्त ने इन प्रतिमाओं का निर्माण तथा प्रतिष्ठा गोलक्यान्त्या के सुपुत्र चेलुक्षमण और उनके शिष्य तथा चंद्र–क्षमाचार्य–क्षमण–श्रमण पाणिपात्रिक (अपनी हथेलियों को ही भिक्षा तथा जलपात्र के यप में प्रयोग करने वाले) के पट् शिस्य आचार्य सर्प्पसेन क्षमण की प्रेरणा से कराया था।[1]

आचार्य चंद्र निश्चय हो दिगम्बर थे और वह संभवतः यापनीय संघ से सम्बद्ध थे क्योंकि इतना तो हमे ज्ञात ही है कि दिगंबर भगवती–आराधना के रचियिता शिवार्य ने स्वयं को पाणिदल भाई कहा है, जिसका तात्पर्य हाथ पर रखकर भोजन करने वाले जैन साधु से है सप्पर्यसेन नागसेन नाम का ही दूसरा रूप रहा होगा, क्योंकि पर्यायवाची नामों का प्रचलन प्राचीन साहित्य में भी अपरिचित नहीं हैं। रामगुप्त को यहाँ महाराजाधिराज कहा गया है। जिससे स्पष्ट है कि वह कोई छोटा सांमत नहीं था। वह चौथी शताब्दी का गुप्त शासक था जिसका उल्लेख विशाखदत्त ने अपने देवी–चंद्रगुप्त नाटक में चंद्रगुप्त द्वितीय के बड़े भाई के रूप में किया गया है। पादपीठों के केन्द्र में धर्मचक्र का ही अंकन है उसके पार्श्व में दोनों ओर हरिणों का अंकन नही है। पादपीठों पर तीर्थकरों का कोई लांछन नहीं है।

ग्रीवा में एकावली धारण किये हुये अनुचरों की आकृतियाँ का अंकन कुशलतापूर्ण है।

इन प्रतिमाओं का रचनाकाल रामगुप्त के अल्प शासनकाल के अर्न्तगत 370 ईसवी के लगभग निर्धारित किया जा सकता है।

विदिशा के निकट उदयगिरि की एक गुफा में गुप्त संवत् 106 (कुमार गुप्त प्रथम का शासन काल) का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है।[2] जिसमें पार्श्वनाथ की एक प्रतिमा के निर्माण का उल्लेख है।

1– गुप्तकालीन मूर्ति कला, भाग–1, टी0 एस0 शर्मा , 1975, पृ0 247,
2– इंस्क्रिप्शन्स ऑफ दि अर्ली गुप्ता किंग्स, जे0 एफ0 फ्लीट,1888, पृ0 258,

जो उनके सिर पर भयंकर नाग फण के कारण भय मिश्रित पूज्य भाव को प्रेरित करती है उक्त शिल्पांकित मूर्ति अब नष्ट प्रायः समझी जाती है। जो मूर्ति इस समय गुफा में स्थित है। वह बहुत परवर्ती काल की है। तथापि इस शिलालेख से यह स्पष्ट नहीं है कि पार्श्वनाथ की प्रतिमा इस गुफा में एक पृथक प्रमिमा थी। क्योंकि शिलालेख में 'अचीकरत' शब्द का प्रयोग हुआ है। जिसका अर्थ है 'निर्माण करवाया गया' उत्कीर्ण करने या मूर्ति को प्रतिष्ठापित करने का भाव इसमें नही है। हो सकता है कि शिलालेख में संदर्भ आंशिक रूप से खण्डित हो चुकी पार्श्वनाथ की उस वर्तमान प्रतिमा का हो जो गुफा की भित्ति पर उत्कीर्ण है।[1]

विदिशा के निकट बेसनगर से तीर्थकर की एक उल्लेखनीय खड्गासन प्रतिमा प्राप्त हुयी है जो इस समय ग्वालियर संग्रहालय में संरक्षित है।[2] इस प्रतिमा में तीर्थकर के सिर के समीप दो उड़ती हुयी मालावाहक मानव आकृतियाँ है, वृत्ताकार प्रभामण्डल के केन्द्र में कमल हैतथा उसकी परिधि का बाहरी किनारा गुलाब के छोटे-छोटे फूलों से अलंकृत है। पैरों के समीप दो भक्त अर्धतिष्ठ मुद्रा में अंकित है।

तीर्थकर की घुटनों तक लम्बी भुजाएँ कुछ-कुछ गोलाकार और चौड़े कन्धे तथा धड़ की संरचना से संकेत मिलता है कि इस प्रतिमा का रचनाकाल लगभग छठी शताब्दी का उत्तरार्ध रहा होगा। इस रचनाकाल का समर्थन प्रतिमा का विशष्ट-शिरोभूषण तथा सिर में दोनों ओर प्रभामंडल के सम्मुख उड़ती हुयी मालावाहक मानव- आकृतियों का अंकन भी करता है।[3]

मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में गुप्तकालीन शिवमंदिर के लिए प्रसिद्ध नचना नामक स्थल के समीप सीरा पहाड़ी से गुप्तकालीन जैन प्रतिमाओं का एक समूह प्राप्त हुआ है। जिनमें से कुछ परवर्ती काल की भी हैं। तीर्थकर पद्मासन मुद्रा में अंकित हैं।

1- भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, ले0 हीरालाल, 1962, भोपाल, पृ0 391
2- स्टडीज इन जैन आर्ट, उमा कान्त शाह, 1955, पृ0 15,
3- विक्रम स्कृति ग्रन्थ, 1994-95, ग्वालियर, पृ0 703,

उनके सिर के पीछे एक विस्तृत प्रभामण्डल है जिसके शीर्ष के निकट दोनों उड़ते हुये गंधर्व मुगल अंकित है। तीर्थकर के पार्श्व में दोनों ओर चमरधारी यक्ष खड़े हुये हैं। जो मुकुट पहने हैं, और जिसके सामने का अलंकरण कुषाणों के विशेष शिरोभूषण के समान है जिससे इस प्रकार के मुकुटों का विकास हुआ है। इन दोनों यक्षों के शरीर–विन्यास का अंकन यक्षों और गंधर्वो के गले का आभूषण एकावली गंधर्वो का सजीव चित्रण, तथा सौंदनी, एहोले आदि से उनकी समानता के कारण इस प्रतिमा का रचनाकाल लगभग चौथी शताब्दी का उन्तरार्ध अथवा पाँचवी शताब्दी का पूर्वार्ध प्रतीत होता है। जो कि गुप्त शासनकाल काप प्रारंभिक काल था। मुकुट पर इसी प्रकार के कला प्रतीक का अंकन उदयगिरी की एक गुफा के विख्यात वराह–फलक पर अंकित नाग तथा दो या तीन खड़ी हुयी छोट आकृतियों के शिरोभूषणों में पाया जाता है। तीर्थकरों के शीर्ष तथा शरीर के अंकन की मथुरा की लगभग चौथी शताब्दी की प्रतिमाओं से समानता भी तिथि की पुष्टि करती है।

पादपीठ के मध्य में धर्मचक्र और उसके दोनों ओर दो छोटे–छोटे सिंह अंकित किये गये है।

इसी स्थान से प्राप्त ऋषभनाथ की खडगासन प्रतिमा के पादपीठ की सादृश्यता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि तीर्थकर की यह पद्मासन मूर्ति महावीर की है जिस पर उनका परिचय चिन्ह सिंह अंकित है।,

सीरा पहाड़ी से प्राप्त ऋषभनाथ की खड्गासन प्रतिमा के पादपीठ पर धर्मचक् तथा उसके दोनों ओर दो भक्त अंकित हैं। इस प्रतिमा के पादपीठ के दोनों सिरों पर विशिष्ठ भारतीय वृषभ अंकित है, जो ऋषभनाथ का परिचय चिन्ह है।

परिवर्ती जैन मूर्तियों में सिंह को पादपीठ के दोनों पार्श्वो में अंकित किया गया है, जो सिंहासन का सूचक है, जबकि बौद्ध मूर्तियों के समान धर्म–चक्र के पार्श्व में दोनों ओर दो हरिणों का अंकन है।

1– गुप्तकालीन मूर्ति कला, भाग–1, टी0 एस0 शर्मा , 1975, पृ0 249,

किन्तु इस प्रतिमा में वृषभ-चिन्ह तो इसी प्रकार दर्शाया गया है। किन्तु धर्मचक्र के पार्श्व में हरिण अंकित नही है। इससे स्पष्ट है कि यह प्रतिमा उस प्रारंभिक काल की है, जब प्रतिमाओं परिचय-चिन्हों के अंकन का आरंभ ही हुआ था और जब तीर्थकरों के परिचय हेतु चिन्हों की परिपाटी पूर्णरूपेण निर्धारित नहीं हो पायी थी। इस सादृश्यता के आधार पर में दर्शायी गयी तीर्थकर प्रतिमा को महावीर की प्रतिमा माना जा सकता है।

इन दोनों मूर्तियों को शैली शास्त्रीय गुप्त शैली के विशिष्ट कुषाण प्रकारों से पलायन की सूचक है। किन्तु महावीर की प्रतिमा एक संदर कलाकृति है, जिसमें विशेष रूप से मुखकृति का अंकन अत्यन्त उत्कृष्टता के साथ किया गया है।

इसी स्थान से उपलब्ध और इसी काल की संभवतः इससे कुछ पहले की एक अन्य कायोत्सर्ग प्रतिमा है पार्श्वनाथ की।

वस्त्र-विन्यासरहित इस प्रतिमा में तीर्थकर की संपूर्ण आकृति के पीछे कुण्डली मारे हुये एक विशाल नाग को दिखाया है। जिसने तीर्थकर के शीर्ष पर अपने फण से छत्र बनाया हुआ है।

प्रतिहार शैली

प्रतिहार राजवंश के विस्तृत साम्राज्य क्षेत्र के अन्तर्गत् विभिन्न स्थलों से अनेक मंदिरों एवं उनके विभिन्न भागों पर उत्कीर्ण प्रभूत मूर्तियों के उदाहरण तत्कालीन मूर्तिकला के विकास के साक्षी हैं।[1] भारतीय परम्परा के रूप प्रतिहार शासक भी धर्मसहिष्णु थे। इसी कारण ब्राहमण देव मंदिरों एवं मूर्तियों की प्रधानता के बाद भी ओसिंया, देवगढ़ (मंदिर 12,15) ग्यारसपुर (मालादेवी मंदिर) एवं मध्य प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में जैन मूर्तियों के पर्याप्त उदाहरण मिले हैं।

प्रतिहार मूर्तिकला पूर्व मध्यकाल की संकमण काल की मूर्तिकला थी जिसमें एक ओर गुप्तकालीन श्रेष्ठ कला परम्पराओं का प्रभाव क्षीण हो रहा था और दूसरी ओर क्रमशः मध्ययुगीन विशेषताएँ प्रभावी हो रही थी।

1— सागा ऑफ इण्डियन स्कल्पचर, ले0 के0 एम0 मुशीं, बंबई, 1957, पृ0 142.

इस कारण प्रतिहार शैली की ही आठवीं और 10वीं शती ई0 की मूर्तियों में जीवन्तता, सहजता, भावाभिव्यक्ति और लाक्षणिक विवरणों की दृष्टि से स्पष्ट, अन्तर दिखायी देता है। जिसे कन्नौज की आठवीं शती ओर एटा (यू0पी0) की 10वीं शती की कल्याण सुन्दर मूर्तियों की तुलना से समझा जा सकता है। गुर्जर–प्रतिहार शासकों की मूर्तिकला का परवर्ती विकसित रूप खजुराहों की मध्यकालीन चन्देल मूर्तियों में शैली और लक्षण दोनों ही स्तरों पर स्पष्ट देखा जा सकता है।

क्षेत्र की दृष्टि से प्रतिहार शैली इतनी व्यापक रही है कि उनके प्रादेशिक या क्षेत्रीय भेद भी किये जा सकते हैं। कन्नौज व ओसियां प्रतिहार कला के सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र थे। ओसिंया में प्रतिहार कालीन ब्राहमण और जैन मंदिर हैं। देवगढ़ के गुप्तकालीन दशावतार मंदिर की पूर्ववर्ती नर–नारायण मूर्तियों के समान ही ओसिंया के हरिहर मंदिर में भी नारायण की मूर्ति देखी जा सकती है।

जैन मूर्तियों में ऋषभनाथ, शान्तिनाथ, अजितनाथ, सुपार्श्वनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर जैसे तीर्थकरों एवं चक्रेश्वरी अम्बिका और पदमावती जैसी यक्षियों और गोमुख, कुबेर, धरणेन्द्र जैसे यक्षों का भी अंकन उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त ओसिंया के महावीर मंदिर पर बप्पभेट्टिसूरि (नागभट्ट प्रथम के समकालीन) की चर्तुविशतिका (8वीं शती) के आधार पर ही विभिन्न जैन महाविधाओं का अंकन हुआ। जिनमें रोहिणी, वजशृंखला, वज्राकुंशा, अप्रतिचका, काली, महाकाली, गौरी, वैराट्या, अच्छुप्ता और महामानसी मुख्य हैं।

देवगढ़ के मंदिर संख्या 12 (शान्तिनाथ मंदिर) पर महाराजाधिराज भोज का विक्रम सं0 919 (862ई0) का लेख है। इस मंदिर पर सर्वप्रथम 24 जिनों की यक्षियों का एक साथ सामूहिक अंकन मिलता है। जिनों और उनके नीचे उत्कीर्ण यक्षियों की आकृतियों के नाम भी लेख में दिये है। जो दिगम्बर ग्रन्थ तिलोयपण्णति (8शती) की सूची से मेल खाते हैं।

यघपि नाम यक्षियों के हैं किन्तु अम्बिका और चक्रेश्वरी के अतिरिक्त अन्य यक्षियों की लाक्षणिक विशेषताओं के उस समय तक निर्धारित ना होने के कारण

उनके निरूपण में सामान्यतः जैन महाविघाओं की लाक्षणिक विशेषताओं का अनुकरण किया गया है।

सामान्य विशेषताएँ

गुर्जर–प्रतिहार मूर्तिकला शैली और विषयवस्तु दोनों ही दृष्टियाँ से गुप्तकालीन मूर्तिकला का परवर्ती विकास दर्शाती है। मंदिरों के निर्माण की परम्परा के साथ प्रतिहार मूर्तियाँ भी मुख्यतः मंदिरों के ही विभिन्न भागों पर उत्कीर्ण हुयी जिनमें मूर्तियों के उत्कीर्णन में स्थान के अन्तराल को सुन्दर रूप में बनाये रखा गया है।

प्रतिहार कालीन जैन प्रतिमाएँ

भारतीय कला में प्राचीन काल से जैन प्रतिमाओं का निर्माण प्रारम्भ हो गया था इस तथ्य की पुष्टि पुरातत्वीय प्रमाणों और प्राचीन जैन साहित्य के उल्लेखों से होती है। ग्रन्थों से उल्लेख मिलता है कि अन्तिम तीर्थकर भगवान महावीर के जीवनकाल में उनके दीक्षा लेने से पूर्व उनकी चन्दनकाष्ठ की प्रतिमा निर्मित की गयी थी।[1]

इसके अतिरिक्त अभिलेखों से भी इसकी प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है। हडप्पा की कबंध प्रतिमा,[2] लोहानीपुर से प्राप्त जिन प्रतिमाएँ तथा खंडगिरी (उड़ीसा) और मथुरा में उपलब्ध विपुल शिल्प, प्रतिमाएँ और आयागपट् आदि जैन प्रतिमा निर्माण के प्राचीनतय उदाहरण है।

प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय की पार्श्वनाथ प्रतिमा भी लगभग 2100 वर्ष प्राचीन आंकी गयी है।

जैन प्रतिष्ठा ग्रंथों, वृहत्संहिता, मानसार समरांगण सूत्रधार, उपराहिसतपृच्छा देवतामूर्ति प्रकरण आदि ग्रंथों में जिन प्रतिमा के लक्षण बताये गये हैं। जिन प्रतिमाएँ केवल दो आसनों में बनायी जाती हैं।

कायोत्सर्ग अथवा खड्गासन और पद्मासन। इन आसनों के अतिरिक्त जिन प्रतिमा निर्माण का निषेध किया गया है।

1– स्टडीज इन जैन आर्ट, ले0 उमा कान्त शाह, वाराणसी, पृ0 4,
2– जैन प्रतिमा विज्ञान, ले0 बालचन्द्र जैन, जबलपुर 1974, पृ0 3,

जिन प्रतिमा दिगम्बर, श्रीवत्सयुक्त, नख–केश विहीन, परम शान्त वृहत्व तथा बाल्यपन रहिंत, तरूण व वैराग्य गुण से भूषित होती हैं।

विवेक विलास में कायोत्सर्ग और पद्मासन प्रतिमाओं के सामान्य लक्षण बताये गये हैं।[1] अर्हत प्रतिमा में अष्ट प्रतिहार्यो के साथ दाँये–यक्ष, बाएँ यक्षी और पादपीठ में अनका लांछन प्रदर्शित किया जाता है। मानसार में भी जिन प्रतिमाओं के परिकर आदि का वर्णन किया गया है। तीर्थकर प्रतिमाएँ अपने लांछनों से पहचानी जाती हैं, ये प्रतिमा के पादपीठ पर उत्कीर्ण रहते हैं।[2] कुछ तीर्थकर प्रतिमाओं में उनके विशिष्ट लक्षण भी दिखाये जाते हैं। जैसे–आदिनाथ की प्रतिमा जटाशेखर युक्त होती है औरा पार्श्वनाथ के मस्तक पर सात फणों के नाग का छत्र रहता है। जिन वृक्षों के नीचे तीर्थकरों ने दीक्षा गृहण की थी अथवा कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया था, वे दीक्षावृक्ष या केवल्य वृक्ष कहे जाते हैं। इन्हें जैन प्रतिमाशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं। प्रतिहार युग में तीर्थकर, यक्षी तथा अन्य जैन देवताओं का अनेक स्थलों पर उत्कीर्णन किया गया है। जिनमें से कुछ प्रतिमाओं का वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

देवगढ़ मंदिर क्रमांक 3 में ऋषभनाथ की एक प्रतिमा (0.75X0.65मी) शिलाफलक पर उत्कीर्ण की गयी है। इसका परिकर, अष्ट प्रतिहार्य तथा हाथ खंडित है। पादपीठ मे यक्षयुगल, श्रावक युगल और वृषभ का अंकन अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया है। उभयपार्श्व, में कमल धारी मानव निमंत्र खड़े हैं। परिकर में दोनों ओर तीन–तीन–कायोत्सर्गो की तीन–तीन–पंक्तियाँ हैं। इसलिए इस शिलाफलक को चौबीसी कहा जा सकता है।

इसका प्रभामण्डल अशोक चक्र की अनुकृति पर बनाया गया है, जो इसकी प्रमुख विशेषता है। प्रतिमा के वक्षस्थल पर श्री वत्स का चिन्ह हैं।

1– जैन प्रतिमा विज्ञान, ले0 बालचन्द्र जैन, विवेकविलास, पृ0 17,
2– जैन प्रतिमा विज्ञान, ले0 बालचन्द्र जैन, विवेकविलास, पृ0 40,

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की एक प्रतिमा जैन मंदिर समूह, बडोह पठारी में उत्कीर्ण है। आसनस्थ तीर्थंकर के मस्तस्क पर 5 नागों की फणावलि है। उभयपार्श्व में यक्ष--यक्षी परिकर में ऊपर छत्रत्रयी तथा पादपीठ में नन्दयावर्त चिन्ह उत्कीर्ण हैं।

16वें तीर्थंकर शान्तिनाथ की एक प्रतिमा देवगढ़ मंदिर क्रमांक 12 में रखी है। कायोत्सग मुद्रा में तीर्थंकर की प्रतिमा अत्यन्त जीर्णशीर्ण अवस्था में थी परन्तु पश्चावर्ती निर्माण कार्य से उसे पुनः मौलिक स्वरूप देने का असफल प्रयास किया गया है। प्रतिमा में उभय पार्श्व में अम्बिमा तथा पार्श्व में यक्ष का उत्कीर्णन किया गया है। तीर्थंकर के मुख पर गाम्भीर्य तथा वैराग्य भाव उत्पन्न करने में कलाकार को पूर्ण सफलता मिली है। इसके परिकर में नवग्रहों का आलेखन किया गया है।

डा0 भागचन्द्र जैन का मत है कि यह प्रतिमा शान्तिनाथ की ना होकर 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ की है।[1] शान्तिनाथ की एक अन्य प्रतिमा मालादेवी मंदिर ग्यारसपुर के मण्डप में स्थापित है। यह भी उपरोक्त सम है। परन्तु यहाँ परिकर का अभाव है।

बडोह पठारी जैन मंदिर समूह में स्थापित नेमिनाथ की प्रतिमा अपनी जटाओं की विशेषता के कारण विशेष उल्लेखनीय है।

इस प्रतिमा को देखकर ऐसा अभास होता है कलाकार कला के भाव पक्ष का मर्मज्ञ था क्योंकि इसे जहाँ जटाओं की संयोजना में अद्भुत सफलता मिली है, वहीं मूर्ति के मुख मंडल पर नासाग्र दृष्टि और वैराग्य की अपूर्व छटा बिखेरने में भी वह पूर्ण सफल रहा है। परिकर में ऊपर मालाधरों का प्रदर्शन किया गया है। ऐसी ही एक अन्य प्रतिमा देवगढ़ मंदिर क्रमांक 12 में भी उत्कीर्ण है।

तेइसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक कलापूर्ण प्रतिमा विक्टोरिया एण्ड अल्बर्ट संग्रहालय, लंदन में संरक्षित हैं। 10 पूर्व में यह मालादेवी मंदिर ग्यारसपुर में स्थापित थी। इसमें तीर्थंकर वृक्ष के नीचे विराजमान है मेधकुमार ने तूफान के द्वारा उन पर आक्रमण किया है।

1— जैन प्रतिमा विज्ञान, ले0 बालचन्द्र जैन, विवेकविलास, पृ0 40,

नाग धरणेन्द्र तीर्थकर के मस्तक के ऊपर फणावली फैलाये तथा समीप ही नागिन पद्मावती उन्हें छत्र लगाये प्रदर्शित हैं। यह प्रतिमा लगभग 8वीं–9वीं शती ई0 की प्रतीत होती है।

अन्तिम तीर्थकर महावीर की एक प्रतिमा बडोह पठारी जैन मंदिर समूह से प्राप्त हुयी हैं। पद्मासन में विराजमान प्रतिमा के परिकर में छत्रत्रयी तथा मालाधर युग्म का प्रदर्शन है। पार्श्व में यक्ष मांतग तथा यक्षी सिघयिका का मनोरम अंकन हैं।

तीर्थकर की कायोत्सर्ग मुद्रा में अनेक प्रतिमाएँ प्रतिहार–युगीन देवालयों में उत्कीर्ण हैं। मंदिर के 12 देवगढ़ के शुकनास में उभयपार्श्व में दो तीर्थकर प्रतिमाएँ तथा मालादेवी मंदिर, ग्यारसपुर के मण्डप तथा अन्तरंग के ऊपर कोष्ठक पंक्ति में तीर्थकर प्रतिमाएँ अंकित की गयी हैं।

यक्ष यक्षी प्रतिमायें

प्रतिहार युगीन कलाकारों ने जैन कला में तीर्थंकर मूतियों के पश्चात सर्वाधिक प्रतिमायें शासन देवियो की निर्मित की हैं। ये प्रतिमायें तीर्थकरों के साथ ना होकर स्वतन्त्र रुप से उत्कीर्ण की गयी हैं। प्रायः सभी सुन्दर वस्त्रों तथा अलंकरणों से अलंकृत हैं।

चक्रेश्वरी

प्रथम तीर्थकर आदिनाथ की शासन देवी चक्रेश्वरी को अप्रतिचक्रा भी कहा जाता है। प्रतिहार कला में अनेक स्थलों पर इस देवी का अंकन किया गया है। इनकी प्रतिमाओं में साहू संग्रहालय देवगढ में संरक्षित चक्रेश्वरी प्रतिमा का स्थान अग्रगण्य है। (1.45X0.75मी) ऊँचे शिलाफलक के उपर उत्कीर्ण इस प्रतिमा में देवी पुरुष विग्रह धारी गरुड के उपर विराजमान हैं। वे मुकुट कुण्डल हार द्विवली वलय पादकटक तथा अधोवस्त्र धारण किये है। प्रतिमा के हर अंग से मादकता व सौन्दर्यता का अपूर्व सम्मिश्रण झलकता है। पुष्ट अंगो की कमनीयता आर्कषण का केन्द्र बनी हुयी हैं। नीचे उभयपार्श्व में दो चंवर धारिणी खडी हैं। परिकर मे उपर पदमासन मे विराजमान तीर्थकर मालाधर तथा कायोत्सर्ग तीर्थकरो का उत्कीर्णन

है। ऐसी ही एक अन्य चक्रेश्वरी प्रतिमा भी वहाँ संरक्षित है परन्तु उसके हाथ खंडित हैं।[1]

अम्बिका— अम्बिका 22वे तीर्थंकर नेमिनाथ की शासनदेवी मानी जाती है। कदाचित इन्हें देवगढ की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है। तभी तो इनकी मूर्तियों की संख्या यहाँ 100 से अधिक है।

देवगढ के मंदिर सं0 12 के गर्भग्रह मे प्रवेश द्वार के दायें 7फीट और 3फीट 2इंच चौडे शिलाफलक पर निर्मित 5फीट 7इंच उँची तथा 2फीट 9इंच चौडी अम्बिका की मूर्ति है। इनका वाहन सिंह अपेक्षाकृत विशाल सशकत एवं स्वभाविक बन पडा है। पार्श्व में खडा एक बालक वस्त्राभूषणों से अलंकृत है । गोद में स्थित दूसरा बालक एक हाथ में आम्रफल धारण किये है और दूसरे से अपनी माँ के कर्णाभरण से खेल रहा है। यक्षी के आभूषण और वस्त्र आदि तो कलागत समद्रि के प्रतीक है ही उनकी धीण कटि भावपूर्ण मुद्रा आदि अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

चौबीस यक्षी प्रतिमायें

मालादेवी मंदिर ग्यारसपुर में यक्षी प्रतिमायें उनके नाम सहित उत्कीर्ण हैं। इनमें से कुछ नाम पढे जा सकते हैं।[2] देवगढ़ में मंदिर सं0 12 की बाह्य भित्तियों पर यक्षी मूर्तियां के अलग–अलग 24 शिलाफलक जड़े हुए है। प्रत्येक शिलाफलक पर ऊपर तीर्थकर की पद्मासन मूर्ति और नीचे यक्षी की खड़ी हुयी मूर्ति अंकित हैं। कुछ के वाहन भी प्रदर्शित हैं, जिन पर देवी को आसीन दिखाया गया है।

सर्वतोभद्र

प्रतिहार युगीन कलाकारो ने तीर्थकरों की सर्वतोभद्र प्रतिमायें निर्मित की है। अमरोल से प्राप्त एक सर्वतोभद्र प्रतिमा में पर्यंकासीन चार तीर्थंकरो की प्रतिमायें चारों ओर उत्कीर्ण हैं। इनके शीर्ष पर कुंचित केश तथा फणावली है। परिकर में उपर मालाधर युगलों का मोहक प्रदर्शन है। सर्वतोभद्र की अन्य प्रतिमा गरगज मन्दिर गुना में रखी है।

1— जैन प्रतिमा विज्ञान, ले0 बालचन्द्र जैन, विवेकविलास, पृ0 99,
2— टेम्पल्स आफ नार्थ इण्डिया, ले0 कृष्ण देव, दिल्ली, पृ0 26,

अलंकरण तथा अन्य शिल्प में यह उपरोक्त प्रतिमा के सदृश्य है। डा. भागचन्द्रका मत है कि सर्वतोभदिकायें प्रायः स्कन्धों या उनके खंडित शीर्षों पर ही प्राप्त होती है।, किन्तु इस प्रतिमा से उनकी धारणा संदेहास्पद प्रतीत होती है क्योंकि उपरोक्त सर्वतोभद्र प्रतिमायें स्वतन्त्र रुप से प्राप्त हुयी है।

प्रतिहार युगीन मंदिरों की वास्तुगत विशेषताएँ

मध्य भारत स्थित प्रतिहार युगीन देवालयों का विस्तृत और वेज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने पर प्रमुख वास्तुगत विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। जो निम्नानुसार हैं।

(1) मंदिरों की निर्माण योजना में भूविन्यास के विविध रूप अपनाये गये है। यथा–वर्गाकार आयताकार गर्भगृह वाले मंदिर जिनमें छोटा अंतराल है। इसके अतिरिक्त महुआ, तेरहि, ऊमरी मढ़रवेरा, चतुर्भुज मंदिर आदि मंदिरों की निर्माण योजना में अंतराल के साथ मंडप का भी समावेश है। देवगढ़ के मंदिर क्रमांक 12,15 तथा मालादेवी मंदिर ग्यारसपुर के मंदिरों में प्रदक्षिणा पथ भी बनाये गये हैं।

(2) प्रारंभिक मंदिरों के वेदिबंध में खु र, कुंभ, कलश तथा कपोत बंधन है ये भूमि तथा जगती पर निर्मित है।

(3) शिव मंदिर तेरहि, सूर्य मंदिर मढ़ावेरा आदि मंदिरों में वेदिबंध के नीचे ऊपर माला तथा जाड्यकुंभ बंधन प्रयुक्त किये गये हैं।

(4) सामान्यतः वेदिबंध में छोटा अंतरपत्र है परन्तु पश्चातवर्ती मंदिरों के अंतरपत्र चौड़े तथा अलंकृत हैं।

(5) वेदिबंध के बंधन कालक्रम से क्रमशः ऊँचे होते गए प्रतीत होते हैं।

(6) प्रारंभिक प्रतिहार मंदिरों में वेदिबंध के ऊपर मंचिका का अभाव है यहाँ जंघा कपोत पर आश्रित है परन्तु धीरे–धीरे प्रतिहार वास्तुशिल्प में कई बंधनों युक्त मंचिका का निर्माण प्रारंभ हुआ।

(7) वेदिबंध में मध्य बंध के रूप में चौत्य उदगमों से आच्छादित देवकोष्ठ है।

1– जैन प्रतिमा विज्ञान, ले0 बालचन्द्र जैन, विवेकविलास, पृ0 77.

(8) प्रथम चरण में निर्मित मंदिरों में जंघा की ऊँचाई कम है तथा खुरछाद्य के बंधन अधिक चौड़े है जिससे प्रतीत होता है कि शिल्पी अनुपात का ध्यान रखने में अक्षम था, परन्तु पश्चातवर्ती मंदिरों में शिल्पी ने इसे दूर करने का प्रयास किया है।

(9) पश्चात्वर्ती मंदिरों की जंघा बंधनों द्वारा एक या दो भाग में विभक्त होती है।

(10) पूर्वकालिक प्रतिहार मंदिरों में जंघा स्थित देवकोष्ठों के अलंकरण अभिप्राय अधिक विशद हैं, इनमें अलंकरण के निमित शार्दूल, छज्जा और अलंकृत कुड्य स्तम्भिकाओं का समावेश किया गया है।

(11) पश्चातवर्ती मंदिरों में जंघा स्थित देवकोष्ठ अपेक्षाकृत बाहर निकालकार बनाये गये हैं।

(12) मालादेवी मंदिर के मंडप में आसनपद्कों की भी व्यवस्था है।

(13) सातवीं–आठवीं शती में निर्मित मंदिर शिखर विहीन हैं। तत्पश्चात् हिवल तथा शंकुवाकार शिखर का निर्माण प्रारम्भ हुआ। शंकुवाकार शिखर के अतिरिक्त पोताकार और फांसना शैली में भी शिखर बनाये गए हैं। शंकुवाकार शिखर में अंडक भी बनाये गये हैं। तथा कहीं–कहीं इनकी संख्या 9 तक पहुँच गई है।

(14) प्रारम्भिक प्रतिहार मंदिरों में कर्णरथों के अतिरिक्त अनुरथों में भी अंडक निर्मित हैं। परन्तु पश्चातवर्ती मंदिरों में अंडकों का स्थान कर्णरथों तक सीमित हो गया है।

(15) प्रतिहार कला के प्रथम चरण में निर्मित मंदिरों के भद्ररथ शिखर की बराबरी तक जाकर समाप्त हो गये हैं परन्तु मध्य तथा अंतिम चरण में निर्मित मंदिरों के भद्ररथ शिखर से ऊपर प्राक्ग्रीवा तक जाकर शिखर के सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं।

(16) प्रारंभिक मंदिरों में ग्रीवा कम ऊँची है परन्तु ऊपरी तथा मढ़खेरा आदि के मंदिरों में बहुविध अलंकृत ग्रीवा अपेक्षाकृत अधिक ऊँची है।

(17) ग्रीवा पर आमलसार आमलसारिका, कलश तथा बीजपूरक का पदर्शन प्रारंभिक तथा पश्चात्वर्ती मंदिरों में समान रूप से किया गया है।

(18) पूर्व प्रतिहार मंदिरों में शुकनास छोटा तथा अल्पविकसित है परन्तु सूर्य मंदिर मढ़खेरा, देवगढ़ के मंदिर क्रमांक 12 में शुकनास अलंकरण अधिक विशद है। इन्हें देवकोष्ठों, देवप्रतिमाओं, गवाक्षों, सिंह, व्याल मरकट आदि आकृतियां से बहुबिध अलंकृत किया गया है।

(19) मंदिरों का मंडप चार स्तंभों पर आश्रित है। पूर्वकालिक प्रतिहार मंदिरों में बाहय अलंकरण का अभाव है परन्तु पश्चवर्ती मंदिरों के मंडप की बाहय सज्जा उच्च कोटि की है। मंडप की धरणियां अंधदेवकोष्ठ जालकर्म तथा कपिशीर्षक आदि अलंकरणों से बहुविध अलंकृत हैं।

(20) प्रारंभिक मंदिरों के द्वार सामान्यतः सुभद्रा वर्ग के त्रिशाखा युक्त हैं। इनमें चम्पक छड़ी अलंकरण युक्त लता और स्तम्भयुक्त शाखाएँ हैं। धीरे–धीरे द्वार में रूप, नागबंध आदि शाखाओं का समावेश हुआ तथा उभयद्वार की परम्परा प्रारम्भ हुयी।

(21) द्वार में गंगा, यमुना का अंकन सामान्यतः सभी मंदिरों में किया गया है।

(22) सातवीं–आठवीं शती में निर्मित मंदिरों में उदुम्बर का अभाव है मध्य चरण में निर्मित मंदिरों के उदुम्बर सादे है परन्तु अंतिम चरण में निर्मित मंदिरों के उदुम्बरों को कल्प वृक्ष, गज, ब्याल, सिंह तथा पूजकों आदि की आकृतियों से अलंकृत किया गया है।

(23) प्रतिहार मंदिरों में अलंकृत चन्द्रशिला का प्रारम्भ भी पश्चात्वर्ती मंदिरों में दृष्टिगोचर होता है, प्रारंभिक मंदिरों में चन्द्रशिला का अभाव है।

(24) पूर्व तथा पश्चात्वर्ती सभी मंदिरों के अंतराल तथा गर्भगृह की भित्तियाँ अलंकरणविहीन हैं।

(25) पूर्ववर्ती प्रतिहार मंदिरों के गर्भगृह तथा अंतराल में स्तम्भों का अभाव है परन्तु मध्य तथा अंतिम चरण में निर्मित मंदिर के गर्भगृह तथा अंतराल में स्तम्भ है।

(26) सामान्यतः पूर्व तथा पश्चात्वर्ती मंदिरों के मंडप तथा गर्भगृह के वितान क्षिप्त प्रकार के हैं तथा इनके मध्य वृत्त में कमलपुस्थ प्रदर्शित है।

(27) एक–तल मंदिर के साथ–साथ प्रतिहार कला में शिल्पी ने द्वितल मंदिर भी बनाने का प्रयास किया है। बडौह स्थित जैन मंदिर समूह के पार्श्वनाथ मंदिर में उसका यह प्रयास दृष्टि गोचर होता है।

(28) प्रतिहार कला में शिल्पी ने चन्द्रशाला अलंकरण का सर्वाधिक प्रयोग किया है। जिससे यह अलंकरण प्रतिहार कला की प्रमुख विशेषता के रूप में दृष्टिगत होता हे। यघपि अलंकरण ने इसका समावेश पूर्ववर्ती है। मंदिरों में इसका प्रयोग वेदिबंध तथा जंघा स्थित देवकोष्ठों के आच्छादन, शिखर, अन्तरंग तथा द्वार–शाखाओं में अलंकरणार्थ किया गया है। प्रारंभिक तथा मध्य चरण में निर्मित प्रतिहार मंदिरों में प्रयुक्त चन्द्रशाला ऊँचे चैत्य उद्‌गम तथा मुक्तामाल से अलंकृत हैं।

(29) प्रतिहार कला का दूसरा प्रमुख अलंकरण अभिप्राय तुलापीठ है। जो प्रारंभिक मध्य तथा अंतिम तीनों कालों में समान रूप से लोकप्रिय रहा। इस काल में तुलापीठ का प्रयोग वेदिबंध स्थित कलश, खुरछाद्‌य, अन्तरंग तथा शाखाओं में बहुतायत से किया गया है। इन्हें व्याल, हंस, पुस्प आदि से अलंकृत किया गया है।

(30) घंटामाला अलंकरण प्रतिहार कालीन शिल्पी की तीसरी प्रमुख विशेषता है। एक दूसरे को काटते हुये मालाओं के मध्य में लटकते हुये घण्टे बड़े ही मनोहारी प्रतीत होते हैं।

अलंकरण का यह अभिप्राय प्रतिहारियुगीन शिल्पी को सभी कालों में आकर्षित रहा है अतः इसका प्रयोग उसने स्तम्भ, अंतरंग तथा खुरछादय के अलंकरणार्थ किया है।

(31) प्रतिहार मंदिरों में बहुविध अलंकृत स्तम्भों का प्रयोग किया गया है। प्रारंभिक प्रतिहार मंदिरों के स्तम्भ अपेक्षाकृत अलंकरण में अल्प तथा चतुष्कोणीय हैं परन्तु धीरे–धीरे प्रतिहार कला में मिश्रक वर्ग के बहुविध अलंकृत स्तम्भ प्रयुक्त किये जाने लगे।

स्तम्भ के अलंकरण अभिप्राय में प्रमुख घटपल्लव, घण्टामाला भरणी, लता वल्लरी, व्याल तथा अलंकृत कुंडरी है।

(32) अलंकरण में रत्न अलंकरण का प्रयोग शिल्पी ने द्वारशाखाओं धरणी आदि के अलंकरण में किया है।

(33) अंध देवकोष्ठों का प्रयोग प्रतिहार शिल्पी ने समान रूप से सभी कालों में किया है। कला में इसका अंकन मानसरोवर मंदिर, सूर्य मंदिर, देवगढ़ का मंदिर क्रमांक 12 में किया गया है।

(34) कपिशीर्षक अलंकरण का प्रयोग पूर्व मध्य तथा अंतिम तीनों कालों में समान रूप से होता रहा है। इसका प्रयोग शिल्पी ने मंदिर के मंडप, खुरछादय तथा प्राकग्रीवा में सज्जागत् अलंकरण के रूप में किया है।

(35) प्रतिहार वास्तुकला में सज्जागत अलंकरण हेतु जालकर्म का प्रयोग मध्य चरण में निर्मित मंदिरों से प्रारंभ होता है तथा इसका उन्नत रूप ऊमरी, मढ़खेरा, गडरमल, मालादेवी आदि मंदिरों में अंतरपत्र, धरणी, खुरछाद्य आदि के अलंकरणार्थ किया गया है।[1]

1– मध्य भारत की प्रतिहार कालीन कला एवं स्थापत्य ले0 एस0 के0 त्रिवेदी, जयपुर, पृ0 76–81,

देवगढ़ का शन्तिनाथ का मंदिर

देवगढ़ में निर्माण की परम्परा का क्रमिक इतिहास वहाँ से प्राप्त गुप्त कालीन अभिलेखों से लेकर 14–15 वीं शताब्दी तक के अभिलेखो द्वारा भली भांति ज्ञात होता है।

निर्माण कला के प्रारंभ से लेकिन मध्यकालीन ऐतिहासिक परम्परा में जिन जैन मंदिरों का निर्माण हुआ और इनमें भी जो कुछ मंदिर वास्तु एवं मूर्तिकला की उत्कृष्टता की दृष्टि से खरे उतरते हैं, उनमें प्रतिहार कालीन नवीं शताब्दी के दो मंदिर उल्लेखनीय हैं। इनमें भी शान्तिनाथ का मंदिर (12) ता मानों प्रतिहार कालीन वास्तुशास्त्र का एक ऐसा सर्वश्रेष्ठ व उप्रतिम उदाहरण हैं।

पंचायतन शैली में निर्मित अर्धमण्डप, मण्उप, महामण्डप, अंतराल अथवा प्रदक्षिणा एवं गर्भगृह में प्रमुखतः अर्धमण्डप, महामण्डप व गर्भगृह जैसे प्रारम्भिक प्रमुख तीन उपांगों की उपयोगिता के साथ–साथ सोपानों तथा अधिष्ठानों के अतिरिक्त कलापूर्ण स्तम्भों में कला की जो उत्कृष्टता चंदेलकालीन मंदिरों में परकाष्ठता पर पहुँची हुयी दिखायी देती है। उसका केन्द्रवर्ती बिन्दु देवगढ़ का यह शान्तिनाथ मंदिर ही कहा जायेगा। यह आयताकार अति विशाल भव्य तथा अति आकर्षक जालियों के अलंकरण की परम्परा के साथ–साथ उरूश्रंगों जंघाओं में प्रदर्शित अलंकरण को दूर से ही अपनी ओर आकृष्ट करता हुआ प्रतीत होता है। मंदिर का शिखर भाग आमलक, बीजपूरक व कलश संशोभित है। मंदिर ऊँची जगती पर निर्मित है। मंदिर के प्रारंभिक अर्धमण्डप में पहुँचने के लिए सोपानों की व्यवस्था है। अर्धमण्डप के पश्चात् एवं आयाताकार महामण्डप है, जो स्तम्भों पर आधरित स्तम्भों का निम्नवर्ती व उर्ध्ववर्ती भाग चौकोर है पर उर्ध्ववर्ती भागों में छत के रखरखाव के लिए संघाती का प्रयोग हुआ है।

मंदिर के गर्भगृह में शान्तिनाथ की विशाल, भव्य आकर्षक प्रतिमा है जिनके मुख पर सौम्यता, शान्ति व करूणा के भाव देखते ही बनते हैं। गर्भगृह का प्रवेश द्वार भी पूर्ण रूपेण अलंकृत है। ललाट विम्ब पर तीर्थकर की प्रतिमा शोभायमान है।

इस मंदिर की विशेषता यह है कि आयताकार मण्डप को मंदिर के पीछे तक ले जाया गया है। दूसरी विशेषता है – जैन ग्रन्थों में वर्णित यक्षियों के प्रदर्शन की जो तीन भागों में बांटी गयी हैं।[1]

इस मंदिर के सामने एक स्तम्भ पर नागरी लिपि में एक अभिलेख उत्कीर्ण है, जिससे यह ज्ञात होता है कि संवत् 919 (832ई0) में अश्विन (क्वार मास) के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी दिन बृहसपतिवार को अन्तराभाद्रपद नक्षत्र में इस स्तम्भं लेख को स्थापित किया गया है एवं उस समय "लुअच्छगिरी" (देवगढ़ का प्राचीन नाम) में परभट्टारक, महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोजदेव के विसित राज्य में महासांमत श्री विष्णु नाम सामंत के काल में कमल देवाचार्य के शिष्य श्री देवेन के द्वारा यह स्तंभ स्थापित हुआ है।

चन्देल मूर्तिकला

मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग पर चन्देल का अधिपत्य था। जिसे प्राचीनकाल में जेजाकभुक्ति और बुन्देलखण्ड नामों से जाना जाता है। इसी कारण चन्देल मूर्ति शैली को जेजाकभुक्ति शैली भी कहा गया है। चन्देल शासक पूर्वकालिक भारतीय परम्परा के अनुरूप ही कला व स्थापत्य के पोषक थे, जिनके काल में मूर्तिकला और स्थापत्य दोनों ही दृष्टिओं से प्रभूत निर्माण कार्य किये गये।

खजुराहो के विश्व प्रसिद्ध शैव, शाक्त, वैष्णव9 व जैन सम्प्रदायों से संबंधित मंदिर और उनके विभिन्न भागों पर उकेरी मनभावना मूर्तियाँ चन्देल शासकों के काल में ही बनीं। खजुराहो के श्रेष्ठतम मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण चन्देल शासकों के उत्कर्ष काल (950–1050ई0) में हुआ।

चन्देल शासक धर्म सहिष्णु थे, इसी कारण उनके शासन काल व क्षेत्र में लगभग सभी धर्मो को संरक्षण मिला, व उनसे सम्बंधित प्रभूत मूर्तियाँ बनी । चन्द्रवंशी चन्देल शासकों न अपना राजनीतिक सफर गुर्जर–प्रतिहार शासकों के सामन्तों के रूप में प्रारम्भ किया था। नन्नुक (825–40ई0) एवं हर्षदेव (905–25ई0) इस वंश के प्रारंभिक स्वतन्त्र शासक थे।

1– कला तीर्थ देवगढ़ , ले0 मारूती नन्दन तिवारी, पृ0 108,

हर्ष के पश्चात् उसका पुत्र यशोवर्मन (925–50ई0) शासक बना जिसके काल में खजुराहो में लक्ष्मण मंदिर का निर्माण हुआ।

यशोवर्मन के पश्चात् धंग ने राज दरबार गृहण किया, जिसके शासनकाल में खजुराहो में विश्वनाथ और पार्श्वनाथ जैसे श्रेष्ठ मंदिरों का निर्माण हुआ।

चन्देल शक्ति को गौरव के शिखर तक पहुँचाने वाला शासक विघाधर था (1017–29ई) जिसके काल में खजुराहो का विशालतम एवं श्रेष्ठ कन्दरिया महादेव मंदिर का निर्माण हुआ।

बाद में कलचुरियों व मुसलमानों के आक्मण के फलस्वरूप चन्देल शक्ति का क्मशः हास् होता गया, किन्तु इस अवनति के काल में भी खजुराहो में कलात्मक कि्याकलाप अवरूद्ध नहीं हुआ, और 12वीं 13वीं शती तक मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण अबाध रूप से चलता रहा।

चन्देल कला केन्द्र

चन्देल मंदिरों एवं मूर्तियों का मुख्या केन्द्र खजुराहो था, किन्तु पुरातात्विक सर्वेक्षण से ज्ञात होता हे कि महोबा, जयगढ़, देवगढ़, टीकमगढ़ सीरोन खुर्द जैसे कई अन्य स्थलों से चन्देल मूर्तिकला के उदाहरण मिले हैं। जनश्रुतियों के अनुसार खजुराहो में कुल 85 मंदिर थे, किन्तु वर्तमान में इनकी संख्या 25 रह गयी है।

चन्देल युगीन कला

खजुराहो के जैन मंदिरों की मूर्तिकला को 5 मुख्य वर्गो में बाँटा जा सकता है।

प्रथम वर्ग में आराध्य मूर्तियाँ हैं जो लगभग चारों ओर उकेर कर बनायी गयी हैं। वे रीतिबद्ध हैं और आसीन या समभंग रूप से खड़ी होती हैं। इनकी प्रभावली विशाल है तथा इनके पीछे सज्जा पट्ट है। जिसका अलंकरण परिकर देवी–देवताओं की आकृतियों के द्वारा किया गया है।[1]

दूसरे वर्ग की मूर्तियाँ विघादेवियों, शासन देवताओं (यक्ष व यक्षियों) अन्य देवी देवताओं तथा आवरण देवताओं की है।

1– मध्य कालीन भारत की मूर्ति कला, मारूती नन्दन गिरि, पृ0 141,

वे आलों में अंकित है या उनकी आकृतियाँ मंदिर की दीवारों के साथ है वे या तो उकेर कर बनायी गयी हैं या पूर्ण अथवा मध्यम उद्भृति के रूप में हैं। देवताओं, जिनमें दिक्कपाल भी हैं की ये आकृतियाँ कम रीतिवद्ध हैं एवं अधिक स्वतन्त्रतापूर्वक बनायी गयी हैं। सामान्यतः वह त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हें या ललितासन में आसीन हैं। इनकी पहचान उनके विशिष्ट शिरोभूषण या उनमें वाहन या विशेष चिन्हों से होती है। तीसरी श्रेणी में वे अपसरायें और सुर सुंदरियाँ आती हैं जिनकी सबसे सुंदर और सर्वाधिक मूर्तियाँ या तो उकेरकर या पूर्ण या मध्य अद्भृति के रूप में जंघा पर छोटे आलों में तथा स्तंभों पर या भीतरी छत के टोडों पर या मंदिर के भीतरी भाग के अर्ध–स्तंभों के बीच के अंतरालों पर बनायी गयी है।

सुर–सुंदरियों को सर्वत्र सुन्दर और पूर्णयौवन अप्सराओं के रूप में अंकित किया गया है। वे सुंदरतम रत्न और वस्त्र धारण किये हैं एवं मनभावन हाव भाव तथा सौंदर्य युक्त हैं।

अप्सराओं के रूप में उन्हें अंजलि मुद्रा में या अन्य किसी मुद्रा में दर्शाया गया है।

किन्तु इन मुद्राओं से भी अधिक उन्हें मानवीय चित–वृत्तियों संवेगों तथा क्रिया–कलापों में प्रस्तुत किया गया है और प्रायः उन्हें पारंपरिक नायिकाओं से भिन्न रूप से पहचान पाना कठिन होता है। इस प्रकार की अप्सरायें वस्त्र उतारती हुयी जम्हाई लेते हुये, पीठ सहलाती हुयी, अपने स्तनों को दबाती हुयी, कांटा निकालते हुये बच्चों को खिलाती हुयी, पत्र लिखती हुयी, दीवार पर चित्र बनाती हुयी दर्शायी गयी हैं। चौथी श्रेणी में वे लौकिक मूर्तियाँ आती है जो जीवन के विविध वर्ग से संबंधित हैं। इनमें घरेलू जीवन दृश्य नर्तकियाँ, संगीतकार तथा अत्यल्प मात्रा में कामक्रीडारत जोड़ो का समूह सम्मिलित हैं।

पाँचवी श्रेणी में पशुओं की आकृतियाँ आती हैं। इनमें व्याल, सम्मिलित है जो एक वैतालिक और पौराणिक पशु है। वह मुख्य रूप से सींगों वाला सिंह है, जिसकी पीठ पर एक मानव सवार है एवं एक प्रतिपक्षी योद्धा उस पर पीछे से आक्रमण कर रहा है। इस मूलभूत प्रकार की अनेक आकृतियाँ आदिनाथ मंदिर में

हैं जिनमें इनके सिर हाथी, मनुष्य, तोता, भालू आदि में हैं। व्याल की आकृति सामान्यतः जंघा में कटावों में बनायी गयीं हैं। किन्तु वह शुकनासिका और भीतरी भाग में भी दृष्टिगोचर होती है। अप्सराओं की भांति, वह सर्वाधिक विशिष्ट एक लोकप्रिय मूर्ति विषय है। खजुराहो की जैन मूर्तिकला ने प्राचीन परम्परा से बहुत कुछ ग्रहण किया है। किन्तु वह मुख्य रूप से मध्ययुगीन है। क्योंकि खजुराहो मध्य भारत के बीचों–बीच स्थित है। जिस पर पूर्व और पश्चिम की कला का प्रभाव पड़ा है इस कारण खजुराहो की मूर्तिकला में पूर्व की संवेदनशीलता तथा पश्चिम की अधीरतापूर्ण किन्तु मृदुलताहीन कला का सुखद संयोजन है।

यघपि इस कला की तुलना भव्यता, अनुभूति की गहनता एवं कलाकार के आंतरिक अनुभव की अभिव्यक्ति को ध्यान में रखते हुये गुप्तकालीन कला की उत्कृष्टता से नहीं की जा सकती, तथापि उसमें मानवीय सजीवता का आश्चर्यकारी स्पंदन है।

इन मूर्तियों की विशालता एवं स्पंदनशीलता से हम चकित रह जाते हैं। लगता है कि वे दीवार की सतह से पूर्णाकृतियों में या पूर्ण उभार में मूर्ति–सौंदर्य के मनोहर गीत की भांति हमारे समक्ष उतर आती है।

मूर्ति निर्माण में यहाँ साधारणतया उस गति की कमी है जो पूर्ण मध्य युग की मूर्तियों की विशेषता है। वैसे कल्पक आयाम तो पर्याप्त हैं किन्तु रूढ़िबद्ध हैं जो यह सूचित करता है कि कल्पक दृष्टि क्षीण हो गयी हैं।

पूर्णतः उकेरी गयी और मूर्ति को रूप देने वाली कल्पकता का स्थान तीक्ष्ण उपांतो और तीक्ष्ण कोणों ने ले लिया है। एवं अनुप्रस्थों , उर्ध्वाधर रेखाओं और कर्णो पर बल दिया गया है। फिर भी यह कला अपने समसामयिक कला–शैलियों से मानवीय मनोभावों और अभिरूचियों के सजीव अंकन में अधिक उत्कृष्ट हैं। इनकी अभिव्यक्ति प्रायः इंगितों तथा आकुंचनों के माध्यम से सूक्ष्म किन्तू उद्देश्य ऐंद्रिक उद्दीपना के द्वारा की गयी हैं। भाव–विलासपूर्ण सुकुमारता तथा मुक्त कामोद्पिक हाव–भाव इसका मुख्य स्वर है, और यही बात इस कला को समसामयिक अन्य कला–शैलियों से पृथक करतीं हैं।

जैन मंदिरों में अभिलेख

जैन धर्म के उद्‌भव क्षेत्र पूर्वी भारत में इस धर्म के इतिहास में प्राचीनतम उत्कीर्ण अभिलेख भुवनेश्वर के समीप उदयगिरी पहाड़ी पर हाथी गुंफा का गुफा अभिलेख है।[1] जिसमें अन्य वृतान्तों के साथ यह भी लिखा है कि चेदिराज खारवेल कलिंग तीर्थकर की वह मूर्ति अपनी राजधानी में पुनः ले आया जिसे नंदराज मगध ले गया था।

ईसवी सन् के आरंभ में जैन धर्म का एक केन्द्र मथुरा भी था, यहाँ के कंकाली टीला नामक जेन बहुल्य भवन क्षेत्र से प्राप्त एक आयागपर है। जिस पर दो नारियों से परिवृत एक महिला का अंकन है, इस पर उत्कीर्ण है कि महाक्षत्रप शोडास के 72वें वर्ष में किसी आमोहिनी ने इस आयाग पट् का दान किया।[2] आयाग पट पर अंकित महिला वर्धमान तीर्थकर की माता रानी त्रिशला मानी गयी हैं।

1–एपिग्राफिया इण्डिका, ले0 जी0 एस0 घई, भाग–1, पृ0 46–49
2– लिस्ट आफ ब्राहमी इंस्क्रिप्शंस, ले0 एस0 ल्यूडस, 1912, पृ0 59,

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के विभिन्न स्थलों से प्राप्त अभिलेख व उनका विवरण

बुन्देलखण्ड में अनेक जैन अभिलेख प्राप्त हुए हैं उनके स्थान और संक्षिप्त विवरण निम्न हैं।

देवगढ़ के जैन अभिलेखों की सूची और उनका संक्षिप्त विवरण निम्न क्रम से दिया गया है।[1] क– अभिलेखोत्कीर्ण वस्तु। ख– माप। ग– भाषा और लिपि। घ– उत्कीर्ण तिथि और राजा का नाम। ड– अभिलेख का विषय।

1–(क) श्री एफ0 सी0 ब्लेक को देवगढ़ दुर्ग में ही प्राप्त किन्तु सम्प्रति राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में प्रदर्शित शिलाफलक। (ख) छह फीट दो इंचXदो फीट नौ इंचXतीन इंच। (ग) साहित्यिक संस्कृत, देवनागरी। (घ) गुरूवार, वैशाख शुक्ल पूर्णमासी, विक्रमाब्ध 1481 तथा शालिवाहन (शक) संवत् 1346। राजा–गोरी वंश का शाह आलममक, यह मालवा का शासक था। सुल्तान दिलावर गोरी के द्वारा संस्थापित मालवा के गौरी वंश द्वितीय सुल्तान हुसंग गौरी ऊर्फ हलफ खाँ था। इसने माण्डु नगर बतवा कर अपनी राजधानी धार से माण्डु स्थानान्तरित की थी। इसका शासन काल 1405 से 1432ई0 तक माना जाता है। इसी सरदार हलफ खाँ को इस अभिलेख में शाह आलंभक के नाम से अंकित किया गया है. तथा इसी की नवीन राजधानी का नाम अभिलेख में मण्डपपुर दिया गया है। (ड) उच्च कोटि की काव्यांत्मक संस्कृति में उत्कीर्ण इस अभिलेख में विस्तृत रूप से होली नामक दाता की प्रशस्ति अंकित हुयी हैं। उसने आ0 शुभ चन्द्र की आज्ञा से देवगढ़ में एक विशाल जिनालय का निर्माण कराया था तथा कुछ मोतियों की प्रतिष्ठा भी करायी थी।

2– (क) संप्रति जैन धर्मशाला स्थित दिगम्बर जैन चैत्यालय में विधमान उपाध्याय मूर्ति। (ख) 11 इंचX2, 1/2 इंच। पांच पंक्तियाँ (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) राविवारज्येष्ठ बदी दशमी, विक्रमाघ 1333। (ड) शालसिरि (शालश्री) एवं उदय–सिरि (उदयश्री) नामक छात्राओं तथा देव नामक छात्र द्वारा श्रद्धापूर्वक इस मूर्ति के समर्पण का वर्णन।

1– एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट, ए0 एस0 आई0– 1917–18 : दयाराम साहनीः अपेन्डिक्स,ए,

3– (क) एक पत्थर की बावली के निकट रखा हुआ, किसी स्तम्भ का खण्डित अंश। (ख) 13 पंक्तियां। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) माघ शुक्ल चतुर्दशी, संवत् 1016। (ड) श्रीमूलसंघान्तर्गत सरस्वतीगच्छ के आचार्य रत्नकीर्ति के शिष्य देवेन्द्र कीर्ति और उनके शिष्य त्रिभवनकीर्ति की प्रशस्ति।

4– (क) जैन मंदिर सं0 1 के पीछे (पश्चिम में) पांच फीट 3 इंच ऊंचा सादा स्तम्भ। (ख) 10 इंच X 10 इंच 19 पंक्तियां। (ग) संस्कृत (अशुद्ध), देवनागरी (घ) बुद्धबार, माघ सुदी दशमी, संवत् 1493। (ड) महीचन्द्र द्वारा करायी गयी मूर्ति स्थापना का वर्णन।

5– (क) जैन मंदिर सं0 1 की दीवार का शिलाफलक। (ख) 5 पंक्तियां। (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) अघात। (ड) वीरनन्दी नामक जैन मुनि की वंशावली अंकित है।

6– (क) जैन मंदिर सं0 1 के मण्डप में प्राप्त स्तम्भ– एक ओर। (ख) दो–दो पंक्तियों के दो अभिलेख। (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) ज्येष्ठ सुदी एकम, संवत् 1113 । (ड) महीचन्द्र सिंह द्वारा एवं शाह सिंह नामक दो दातारों के नाम आदि दिये गये हैं। तथा इन दोनों को मूर्ति के पादपीठ के मध्य में विनयावनत मुद्रा में उत्कीर्ण भी किया गया है।

7– (क) जैन मंदिर सं0 1 के मण्डप में प्राप्त स्तम्भ– दूसरी ओर। (ख) एक–एक पंक्ति के दो अभिलेख। (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) ज्येष्ठ सुदी एकम, संवत् 1113 । (ड) सावनी एवं सलाखी नामक दो महिला दातारों के नाम अंकित हैं।

8– (क) जैन मंदिर सं0 1 के मण्डप में प्राप्त स्तम्भ– तीसरी ओर। (ख) तीन–तीन पंक्ति के दो अभिलेख। (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) ज्येष्ठ सुदी एकम, संवत् 1113 । (ड) पं, अजीत सिंह तथा पं0 ललित सिंह नामक दो दातारों के नाम उत्कीर्ण हैं।

9– (क) जैन मंदिर सं0 1 के मण्डप में प्राप्त स्तम्भ– चौथी ओर। (ख) दो–दो पंक्तियों के दो अभिलेख। (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) ज्येष्ठ सुदी एकम, संवत् 1113 । (ड) श्रीसिंह और जसदेव नामक दो दातारों के नाम अंकित हैं।

10– (क) जैन मंदिर सं0 1 के मण्डप में प्राप्त स्तम्भ – चौथी ओर। (ख) दस पंक्तियाँ (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) ज्येष्ठ सुदी एकम, संवत् 1113 । (ड) स्तम्भ निर्माण का वर्णन । इस पर कल्याण सिंह ने अभिलेख उत्कीर्ण कराया।

11– (क) जैन मंदिर सं0 1 कायोत्सर्ग तीर्थकर मूर्ति। (ख) दो पंक्तियाँ (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) संवत् 1195 । (ड) आर्थिका इन्दुआ द्वारा मूर्ति प्रदान करने का विवरण।

12– (क) जैन मंदिर सं0 1 की दीवार का शिलाफलक। (ख) एक पंक्ति। (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) अज्ञात। (ड) माधवीनी ठकुरानी जसदेवी इन्द्रमयी के नाम का उल्लेख है।

13– (क) जैन मंदिर सं0 4 के गर्भगृह में स्थित 3फी, 8, 1/2 इंच ऊँची पद्मासन तीर्थकर मूर्ति। (ख) तीन पंक्तियाँ (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) अज्ञात। (ड) अर्यिका इन्दुओं का नाम उत्कीर्ण हैं।

14– (क) जैन मंदिर सं0 4 में 2फी, 11 इंच ऊँची पद्मासन तीर्थकर मूर्ति। (ख) एक पंक्तियाँ (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) अज्ञात। (ड) दाता विरच (इन्द्र) उत्कीर्ण हैं।

15– (क) जैन मंदिर सं0 4 में 5फी, ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थकर मूर्ति। (ख) एक पंक्ति (ग) संस्कृत, देवनागरी (घ) अज्ञात। (ड) अर्यिका गणी का नाम उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो के अभिलेख

यहाँ निम्न अभिलेख प्राप्त हुये हैं।

1– (क) जैन मंदिर सं0 4 के मण्डप का स्तम्भ। (ख) एक पंक्ति। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) अज्ञात। (ड) भावनन्दी उत्कीर्ण है।

2– (क) जैन मंदिर सं0 4 के मण्डप का स्तम्भ। (ख) सोलह पंक्तियाँ। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) सं0 1307 । (ड) अस्पष्ट हो गया है।

3– (क) जैन मंदिर सं0 4 के पश्चिमी द्वार की देहरी। (ख) एक पंक्ति। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) संवत् 1500। (ड) अस्पष्ट हो गया है।

4– (क) जैन मंदिर सं0 5 के प्रवेश द्वार के दांयें पश्चिमी भित्ति पर। (ख) तीन पंक्तियाँ। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) मंगलवार, माघ सुदी अष्टमी, संवत् 1120। (ड) सम्भवतः मंदिर निर्माण की तिथि उत्कीर्ण है।

5– (क) जैन मंदिर सं0 2 के गर्भगृह में पूर्वी द्वार के ऊपर जड़ा हुआ प्रस्तरफलक। (ख) चौदह पंक्तियाँ। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) सोमवार, भाद्रपद सुदी सप्तमी, वि0संवत् 1503, सुलतान महमूद। (ड) इस मंदिर के जीर्णोद्वार का विवरण दिया गया है।

6– (क) जैन मंदिर सं0 2 में स्तम्भ। (ख) क्रमशः दो और तीन पंक्तियों के दो अभिलेख। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) अज्ञात। (ड) अस्पष्ट।

7– (क) जैन मंदिर सं0 2 में तीर्थकर मूर्ति। (ख) दो पंक्तियाँ। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) अज्ञात। (ड) अस्पष्ट यह मूर्ति चन्द्रकार्ति द्वारा अर्पित की गयी थी, इस तथ्य का विवरण दिया गया है।

8– (क) जैन मंदिर सं0 5 में मध्यवर्ती तीन स्तंभ। (ख) दो पंक्तियों (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) अज्ञात। (ड) आदिनाथ, शान्तिनाथ, महावीर आदि जैन तीर्थकरों का स्तवन है।

9– (क) जैन मंदिर सं0 3 में शान्तिनाथ मूर्ति। (ख) एक पंक्ति। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) अज्ञात। (ड) इस मूर्ति की स्थापना भुवनसिंह द्वारा की गयी ।

10– (क) जैन मंदिर सं0 3 में 1फी, 4इंच ऊँची पद्मासन तीर्थकर मूर्ति। (ख) दो पंक्तियाँ। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) संवत् 1105। (ड) अस्पष्ट

सोनागिरी के अभिलेख

1– (क) जैन मंदिर सं0 1 में तीर्थकर मूर्ति का सिंहासन। (ख) एक पंक्ति। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) अज्ञात। (ड) इस मूर्ति के समर्पण का विवरण।

2– (क) जैन मंदिर सं0 1 का दांया प्रवेश द्वार (शिरदल)। (ख) एक पंक्ति। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) अज्ञात। (ड) श्री नागसन आचार्य द्वारा इस द्वार के दान कराने का विवरण।

3– (क) जैन मंदिर सं0 1 के द्वार के बाहर। (ख) एक पंक्ति। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) अज्ञात। (ड) दाता कल्लड़।

4– (क) जैन मंदिर सं0 1 में 4फी, 1इंच ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थकर मूर्ति । (ख) दो पंक्तियाँ। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) अज्ञात। (ड) मूर्ति समर्पण का विवरण।

5– (क) जैन मंदिर सं0 2 के अर्ध–मण्डप का दांया स्तम्भ । (ख) चार अभिलेख। (ग) अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी। (घ) संवत 1208। (ड) चार विभिन्न भाक्तों द्वारा इस स्तम्भ के निमित्त किये गये दान का विवरण।

6– (क) उक्त मंदिर के अर्धमण्डप का बांया स्तम्भ। (ख) एक पंक्ति। (ग) अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी। (घ) संवत् 1208। (ड) विभिन्न भाक्तों द्वारा इस स्तम्भ के निमित्त किये गये दान का विवरण।

7– (क) उक्त मंदिर के गर्भगृह का स्तम्भ। (ख) एक पंक्ति। (ग) अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी। (घ) संवत् 1220। (ड) पं0 माध्वनन्दी की वन्दना का विवरण।

8– (क) उक्त मंदिर के गर्भगृह के स्तम्भ पर उत्कीर्ण पद्मासन मूर्ति। (ख) दो पंक्ति। (ग) हिन्दी, देवनागरी। (घ) बुद्धवार माघ सुदी 8 संवत् 1495। (ड) अस्पष्ट।

9– (क) उक्त मंदिर के गर्भगृह का स्तम्भ। (ख) आठ पंक्तियाँ। (ग) अशुद्ध संस्कृत, देवनागरी। (घ) बुद्धवार, माघ सुदी अष्टमी, संवत् 1495। (ड) अस्पष्ट।

10– (क) जैन मंदिर सं0 3 में स्थित 4फी, ऊँची कायोत्सर्ग तीर्थकर मूर्ति। (ख) एक पंक्ति। (ग) संस्कृत, देवनागरी। (घ) अज्ञात्। (ड) प्रदाता सदिया।

चांदपुर – यहां संवत् 1207 का एक शिलालेख 1 प्राप्त हुआ है– "ओम। शम्ब 1207 ज्येष्ठ बदी 11, खौं माह प्रतिहारान् वच्छसि गोत्रये उदायपाल भूज ....।" इससे ज्ञात होता है कि चांदपुर के मंदिरों का निर्माता वच्छ (वत्सराज) के गोत्र में उदायपाल नामक व्यक्ति था।

मदनपुर – यहां निम्न अभिलेख पाप्त हुए हैं।[1]

1– मध्य ग्राम के शिखरबन्द विशाल जैन मंदिर में 6 पद्मासन पाषाण प्रतिमायें हैं और 6 धातु प्रतिमायें हैं। सभी पर प्रशस्तियां अंकित हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि 6 पाषाण प्रतिमायें 15वी से 17वीं शताब्दी के बीच की हैं और 6 धातु प्रतिमायें 16वीं से 18वीं शताब्दी के बीच की हैं।

2– पंचमढ़ के पांचों मढ़ों में एक–एक कायोत्सर्गासन प्रतिमायें हैं। प्रत्येक पर लेख अंकित हैं जिनसे पता चलता है कि प्रारंभ की दो मूर्तियां संवत् 1312 की हैं, मध्य की प्रतिमा जो इससे भी प्राचीन है उसका लेख अस्पष्ट है, शेष दो मूर्तियां संवत् 1618 की हैं।

3– शान्तिनाथ मंदिर के गर्भगृह के मध्य में 10फी0 ऊँची भगवान शान्तिनाथ की खण्डित प्रतिमा है। इस पर अंकित लेख के अनुसार इसका प्रतिष्ठाकाल वि0 संवत् 1204 था।

<u>बानपुर –</u> यहाँ निम्न अभिलेख प्राप्त हुए हैं।[2]

1– मंदिर सं0 1 के अन्दर की सज्जित बेदी पर संगमरमर की भगवान ऋषभनाथ की मूर्ति पर लेख अंकित है, जिससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण वि0 संवत् 1142 में हुआ था।

2– मंदिर सं0 3 के अन्दर बेदी पर संगमरमर की पद्मासन तीर्थकर मूर्ति पर लेख अंकित हैं, जिससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण संवत् 1541 में हुआ था।

3– मंदिर सं0 4 (शान्तिनाथ जिनालय) में शान्तिनाथ की मूर्ति के चरणपाद पर स्थित शिलालेख (अब तक अपठनीय) से निर्माण संवत् 1001 स्पष्ट होता है।

पावागिरि – यहां निम्न अभिलेख प्राप्त हुए हैं।[3]

1– जैन मंदिर के भोयरे (गुहा) के द्वितीय द्वार को पार करने पर एक लंबा गर्भगृह है।

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ विशेषांक–कला तीर्थ मदनपुर, ले0 विमल कुमार जैन, पृ0 79–81,
2– बुन्देलखण्ड तीर्थ विशेषांक–अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाश मड़िवेया, पृ0 19–21,
3– बुन्देलखण्ड तीर्थ विशेषांक–पावागिरि की प्राचीन जैन प्रतिमायें ले0 कमलेश कुमार पृ0 52–53,

जिसकी वेदी पर सामने की ओर तीन मूर्तियां ओर बांयी ओर तीन मूर्तियां हैं। सामने की तनी मूर्तियां पार्श्वनाथ, आदिनाथ और सम्भवनाथ की हैं। मूर्तियों की पादपीठ पर अंकित अपभ्रंश भाषा के शिलालेख में वर्णित वंशावलि के नाम के साथ साथ संवत् 1299 एवं संवत् 1345 अंकित है, जिससे इन मूर्तियों के निर्माण तिथि का ज्ञान प्राप्त होता है। बांयी ओर की तीन मूर्तियों में से दो मूर्तियों (नेमिनाथ और अजितनाथ) के पादपीठ के लेख के अनुसार इनका निर्माण काल संवत् 1345 और एक मूर्ति (मल्लिनाथ) की पादपीठ लेख के अनुसार इसका निर्माण काल संवत् 1299 ज्ञात होता है।

2– क्षितिपाल (क्षेत्रपाल) की मढ़िया के एक कक्ष में प्राप्त मूर्तियाँ हैं, जो बावड़ी से खुदायी में मिली हैं। इनमें से एक मूर्ति , जो आदिनाथ की पोने दो फीट ऊँची है, के पादपीठ पर अंकित लेख में संवत् 299 तथा पवा शब्दी लिखा है। इससे उसका निर्माण काल मालूम पड़ता है।

सेरोनजी – यहाँ के अभिलेख निम्न हैं।[1]

1– स्थानीय शान्तिनाथ मंदिर के दक्षिणी बरामदे में 5फी. 2, 1/2 इंच X 3फी. 4इंच का एक शिलाफलक लगा है, जो अभिलिखित है। इसमें देवनागरी लिपि में एक लेख उत्कीर्ण हैं, जिसमें 46 पंक्तियों हैं। लेख की प्रारंभिक एवं अंतिम पंक्तियां नष्ट हो चुकी हैं। यह लेख पहले खेरार सरोवर (प्राचीन नाम सीयहोयिण) के किनारे लगा था। वहां से उठवा कर उसे इस मंदिर के बरामदे पर प्रतिष्ठापित करा दिया गया है। इसमें आठ तिथियों का उल्लेख है। ये तिथियां संवत् 954 से संवत् 1005 तक की हैं। उसे भोजराज के पुत्र महेन्द्रपाल ने उत्कीर्ण करवाया था, इसमें सेरोन का इतिहास सुरक्षित है। उसे अभी पूरा पढ़ा नहीं जा सका है।

2– एक शिलालेख संवत् 1451 का प्राप्त हुआ है, जिस समय बावड़ी का जीर्णोद्वार किया गया था। लेख अस्पष्ट है।

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः ले0 बालचन्द्र जैन, पृ0 2,

ललितपुर – यहाँ के क्षेत्रपाल मंदिर में निम्न अभिलेख प्राप्त हुए हैं।

1– मंदिर सं0 3 (अभिनन्दन नाथ का मंदिर) जो हाथी द्वार के सामने है, का लेख जिससे ज्ञात होता है कि यह मूर्ति संवत् 1243 में निर्मित हुयी थी।

2– मंदिर सं0 4 का लेख, जिससे ज्ञात होता है कि सफेद संगमरमर की मूर्ति संवत् 1223 की है।

3– मंदिर सं0 7 में पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्ति पर एक लेख उत्कीर्ण है, जिससे ज्ञात होता है कि इसका निर्माण संवत् 1706 में हुआ था।

जैन धर्म किसी सीमा तक ग्वालियर के कच्छपघात वंश के राज्य काल में भी चलता रहा। इसकी संपुष्टि एक अभिलेख से होती है। जो विक्रम संवत 1034 (977ई0) में राजा वप्रादामन के राज्य काल में ग्वालियर में निर्मित एक मूर्ति के पादपीठ पर उत्कीर्ण है। भरतपुर जिले के बयाना का एक जैन मंदिर अब मस्जिद के रूप में विघमान है जिसके एक स्तंभ पर विक्रम सं0 1100 (1044ई0) का राजा विजयाधिराज या विजयपाल के शासनकाल का एक अभिलेख उत्कीर्ण है।

खजुराहो के पार्श्वनाथ मंदिर में चंदेल शासक घंग के काल में उत्कीर्ण अभिलेख से प्रस्तुत विवरण कोई ज्यादा महत्व का नहीं है। किन्तु उसमें स्थापित एक मूर्ति पर उत्कीर्ण अभिलेख से यह स्पष्ट होता है। कि वह तीर्थकर संभवनाथ की है।

मध्य प्रदेश के विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध उत्तर–मध्य कालीन मूर्तियों के पादपीठों पर तिथि सहित अभिलेख उत्कीर्ण हैं। इन अभिलेखों में विभिन्न तीर्थकरों की मूर्तियों की प्रतिष्ठा के वृतांत हैं।

उदाहरण– शिवपुरी के गुदर स्थान से प्राप्त विक्रम संवत 1206 (1149ई0) के एक अभिलेख में शांतिनाथ, कुंथुनाथ और अरनाथ की मूर्तियों की प्रतिष्ठा का उल्लेख है।[1]

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भागः ले0 बालचन्द्र जैन, पृ0 15–19,

अध्याय-छः

जैन मूर्तियों का विश्लेषण

अध्याय–6

जैन मूर्तियों का विश्लेषण

जिन उपासना की प्राचीनता :– जैन धर्म में मूर्ति पूजा के उल्लेख प्राचीनतम काल से पाये जाते हैं। पूजा पूज्य पुरूष की की जाती है। पूज्य पुरूष मौजूद न हो तो उसकी मूर्ति बना कर उसकी पूजा की जाती है। इसलिए इतिहासातीत काल से जैन मूर्तियाँ पायी जाती हैं और जैन मूर्तियों के निर्माण व उनकी पूजा के उल्लेख से सम्पूर्ण जैन साहित्य भरा पड़ा है। जैन धर्म में मूर्तियों के दो प्रकार बताये गए हैं। अकृत्रिम और कृत्रिम। नन्दीश्वरद्वीप, सुमेरू, कुलाचल, वैताढ़यव पर्वत, शाल्मली वृक्ष, जम्बू वृक्ष, वक्षारगिरि, चैत्य वृक्ष्य, रतिकर गिरि, रूचक गिरि, कुण्डलगिरि, मनुषोत्तर पर्वत, इष्वाकार गिरि, अंजन गिरि दुधिमुख पर्वत, व्यन्तरलोक, स्वर्गलोक, जयोतिर्लोक, और भवन वासियों के पाताल लोक में पाये जाने वाले अकृत्रिम चैत्यालयों में अकृत्रिम मूर्तियां हैं। सौपामेंन्द्र से युग के आदि में अयोध्या में पांच मंदिर बनवाये और उनमें अकृत्रिम मूर्तियां स्थापित कीं। कृत्रिम मूर्तियां सर्वप्रथम भरत वन के प्रथम चकवर्ती सम्राट भरत ने अयोध्या और कैलाश में मंदिर बनवा कर उसमें स्वर्ण और रत्नों की मूर्तियां स्थापित कीं।[1]

डा0 द्विजेन्द्रनाथ शुल्क के मतानुसार जैन प्रतिमाओं का आविर्भाव जैनों के तीर्थकरों से हुआ। तीर्थकरों की प्रतिमाओं का प्रयोजन जिज्ञासु जैनों ने न केवल तीर्थकरों के पावन–जीवन, धर्मप्रचार और कैवल्य प्राप्ति की स्मृति को ही दिखना था, वरन तीर्थकरों के द्वारा परिवर्तित पथ के पथिक बनने की प्रेरणा से भी था। डा0 शुक्ल ने अन्तगद्दासों के आधार पर एक अन्य स्थल पर जिन पूजा परम्परा का सूत्रपात् ई0पू0 600 माना है।[2]

इसी का समर्थन डा0 उमाकान्त प्रेमानन्द शाह ने भी किया है। उनके अनुसार जैन प्रतिमाओं की उपासना बुद्ध के पूर्व प्रचलित थी तथा जिन पूजा परम्परा महावीर के निर्वाण के एक शताब्दी पश्चात् प्रारंभ हो गयी थी।

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, संकलन बलभद्र जैन, पृ0 14–15,
2– प्रतिमा विज्ञान ले0 डा0 द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल पृ0 313,

जैन परम्परायें पहले 22 तीर्थंकरों को ई0पू0 लाखों वर्ष मानती हैं तथा 22वें तीर्थकर नेमिनाथ को कृष्ण का चचेरा भाई मानती हैं।[1] यद्यपि इस प्राचीनता से आधुनिक विद्वान सहमत नहीं हैं पर पुरातात्विक दृष्टि से जैन मूर्ति कला का इतिहास सिन्धु सभ्यता तक पहुंचता है। सिन्धु घाटी की खुदाई में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से जो मूर्तियां प्राप्त हुयी हैं, उनमें मस्तक हीन नग्न मूर्ति तथा सील पर अंकित कायोत्सर्ग मूर्ति, जैन धर्म से सम्बन्ध रखती हैं। अनेक परातत्व वेत्ताओं ने तथा आधुनिक इतिहासकार सर जान मार्शल ने यह स्वीकार किया है कि कायोत्सगर्शसन आदि जैन तीर्थकर ऋषभदेव की है।[2] पर सतीश चन्द्र काला तथा अन्य इतिहासक़ार इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके विचार में जिन उपासना का प्रचलन प्रथम शताब्दी ई0 के पूर्व नहीं हुआ था।[3]

तथापि भारत में उपलब्ध जैन मूर्तियों में सम्भवतः सबसे प्राचीन जैन मूर्ति तेरापुर के लयणों में स्थित पार्श्वनाथ की प्रतिमायें हैं जिनका निर्माण पौराणिक आख्यानों के अनुसार कलिंग नरेश करकण्ड ने कराया था, जो पार्श्वनाथ और महावीर के अन्तराल में हुआ था। यह काल ई0पू0 सातवीं शताब्दी होता है।[4]

वैसे प्रमुखतः जिन उपासना का मूर्ति रूप में प्रचलन मौर्य एवं शुंग काल में प्रारंभ हो गया था। इस काल में निर्मित यक्ष की प्रतिमाओं का सम्बन्ध डा0 शाह ने जैन प्रतिमाओं से ही माना है। मौर्य काल में अनेक स्थानों में यथा लोहनीपुर, कुमराहार, बुलन्दी बाग (पटना के निकट) आदि स्थानों में एवं शुंग काल में उदयगिरि, खण्डगिरि, उड़ीसा व हाथीगुम्फा आदि स्थानों में तथा कुषाण काल में वैशाली व कंकाली टीला (मथुरा) आदि स्थानों में तीर्थकरों, यक्षों, आयागपट्टों आदि से सम्बन्धित प्रतिमायें प्राप्त होती हैं। गुप्तकाल में जैन प्रतिमाओं का निर्माण अनेक स्थानों पर प्रचुरता से हुआ ।

1– स्टडीज इन जैन आर्ट भाग –1 ले0 डा0 उमा कान्त प्रेमानन्द शाह पृ0 3–4,
2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, संकलन बलभद्र जैन, पृ0 15,
3– स्टडीज इन जैन आर्ट भाग –1 ले0 डा0 उमा कान्त प्रेमानन्द शाह पृ0 5,
4– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, संकलन बलभद्र जैन, पृ0 15,

देवगढ़, गोही, चन्देरी, अकोटा, रोहतक और राजगिरि आदि स्थानों में जैन धर्म से सम्बन्धित अनेकों श्रेष्ठ प्रतिमायें प्राप्त हुयी हैं। गुप्तोत्तर काल (600ई0 से 1200ई0 तक) में तो जैन मूर्तियां, जिस श्रेष्ठता को लिये हुए निर्मित हुयी थीं वह भारतीय मूर्ति कला के क्षेत्र में एक स्वर्णिम अध्याय कहा जा सकता है।[1]

जैन–मूर्तिकला मे प्रतीकवाद – हिन्दू एवं बौद्ध की भांति जिन–पूजा–परम्परा में भी प्रतीकवाद की प्रधानता रही है। इन प्रतीकों में 24 तीर्थकरों से सम्बन्धित घटनायें प्रमुख रूप में हैं। इन प्रतीकों में, "अष्ट मंगल" (स्वास्तिक, श्रीवात्स, मंघा, वर्धमानक, भंद्रासन, कलश, दर्पण और मत्स्य), "समीशरण" (ज्ञान प्राप्त करने वाला स्थान), "चैत्य", "चैत्यवृक्ष", "आयग पट्ट", नवदेवता या नवपाद अर्हत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सम्यक ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चरित्र एवं सम्यक् तप, ("कल्याण्कारी स्वप्न") तीर्थकर के गर्भ में आने पर माता त्रिशला द्वारा देखे गए स्वप्न – गर्जना करने वाला सफेद बैल, सिंह, दोनो बाजुओं से कलशाभिषेक करते हुए हाथी, लटकती हुयी दो पुष्प मालायें, चांदनी, साहित पूर्ण चन्द्रमा, उदीयमान सूर्य, सरोवर में क्रीडामग्न मत्स्य युगल, कमलाच्छादित स्वर्ण कलश, पद्म सरोवर, उन्त्रत्त लहरयुक्त सागर, रत्नजटिल सिंहासन, रत्नमणि जटित देव विमान, नागेन्द्र भवन, प्रकाशमान रत्न शशि और धूम्र रहित प्रखर अग्नि ज्वाला। (अष्टपाद) वह पर्वत जिस पर ऋषभदेव ने निर्वाण प्राप्त किया, सिंहानिषघा, चौमुख तीर्थ, सम्मेद शिखर, पंचद्वीपों को प्रदर्शित करने वाले पंचमेरू (जम्मू द्वीप के मध्य में सुदर्शन, धातक खण्डद्वीप के पूव्र में विजय, धातकिखण्ड के द्वीप के पश्चिम में अचल, पुष्करार्द्ध द्वीप के पूर्व में मन्दनर और पुष्करार्द्ध द्वीप के पश्चिम में विघुन्मालि), स्थानपाद (जैन भिक्षु द्वारा वार्तालाप किये जाने पर अपने को आचार्य के सम्मुख रखना) एवं नन्दीश्वर द्वीप (वह आनन्द दायक स्थल जहां तीर्थकरों की पूजा के लिये देवताओं का आगमन होता है) प्रमुख प्रतीक माने गये हैं।[2]

1– चांदपुर दुधई की चंदेली कला और संस्कृति, शोध प्रबंध, महेन्द्र कुमार वर्मा, पृ0 290–91,

2– चांदपुर दुधई की चंदेली कला और संस्कृति, शोध प्रबंध, महेन्द्र कुमार वर्मा, पृ0 288–90,

डा0 भागचन्द्र जैन के अनुसार अतदाकार प्रतीकों में मुख्य और परंपरागत हैं। धर्मचक, स्तूप, त्रिरत्न, चैत्य ज्ञतम्भ, चैत्य वृक्ष, पूर्वाघट, श्रीवत्स, सराग–सम्पुट, पुष्प–पात्र, पुष्प–पडतक, स्वस्तिक, आयागपपट्ट (आयताकार या वर्गाकार शिलापपट्ट जिस पर कुछ अन्य प्रतीक उत्कीर्ण होते हैं) समवसरण, सहस्त्रकूट, सिद्धचक, अष्टमंगल, अष्टप्रतिहार्य, 16स्वप्न, चरणपादुका, नवनिधि (कालनिधि, महाकालनिधि, माइवक, पिंगल, नयसर्प्य, पद्म, पाण्डुल, शंख, सर्वरात्र), नवग्रह, शार्दूल, मकरमुख, कीर्तिमुख, कीचक, गंगा–यमुना एवं नाग–नागी आदि। यह प्रतीक भिन्न–भिन्न स्थानों में भिन्न–भिन्न रूपों में जैन प्रतिमाओं में पर्याप्त रूप में देखने को मिलते हैं।

जैन प्रतिमाओं की विशेषतायें – जैन प्रतिमाओं की अपनी स्वयं की निम्न विशिष्ट विशेषतायें हैं।–

अ– जैन प्रतिमायें प्रतीकवाद पर आधारित रही हैं। इस प्रतीकत्व के नाना कलेवरों मे धर्म एंव दर्शन की ज्योति का दिग्दर्शन होता है।[1]

द– वृहद संहिता के आधार पर जैन प्रतिमाओं में निम्न विशेषताओं का होना अनिवार्य है।[2]

आजानुलम्बबाहु : श्रीवत्साक : प्रशान्तमूर्तिश्च ।

दिग्वासास्तरूणों रूपवांश्च कार्यो र्हतो देवः ।।

अर्थात् तीर्थकर विशेष की प्रतिमा विधान में आजानुबाहु, श्रीवत्स, प्रशान्तमूर्ति, नग्नावस्था एवं तरूणावस्था ये पांच लांछन होना वस्तुतः अनिवार्य हैं।

स– इन तीर्थकर की प्रधान मूर्ति के अलावा दक्षिण एवं वाम पार्श्व में एक यक्ष एवं एक यक्षिणी का भी प्रदर्शन आवश्यक है।

द– अशोक वृक्ष के साथ–साथ अष्ट प्रतिहारों (अशोक वृक्ष, पुष्प वर्षा, दुन्दुभि, आसन, दिव्य ध्वनि, त्रिछत्र, दो चंवर और प्रभा मण्डल) में से किसी एक का प्रदर्शन होना अनिवार्य है।

य– त्रिछत्र एवं त्रिरथ से प्रतिमायुक्त होना चाहिऐ।[3]

1– प्रतिमा विज्ञान, ले0 डा0 द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 315,
2– वृहद संहिता– ले0 वराहमिहिर पृ0 45'58,
3– रूप मण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव, अध्याय 6 पृ0 33,

र– देवता की रथिका बनाने के लिये पांच प्रकार के तोरण भी होना चाहिये।[1]

श– रथिकायें भी सात प्रकार की बतायी गयी हैं। यथा–ललित, चेतिकाकार, त्रिरथ बलितोदर, श्रीपुंज, पंचरथिक एवं आनन्दर्धन। रथिका में ब्रह्मा, विष्णु, ईश, चण्डिका, जिन, गौरी गणेश अपने स्थान में सुशोभित रहते हैं।[2]

ल– प्रधान मूर्ति अशोक वृक्ष के पत्रों, देवदुन्दुभि–वादकों, सिंहासनों, असुरादि, गजों एवं सिंहो आदि से अलंकृत रहती है। मध्य में धर्म–चक् होता है तथा पार्श्वों में दक्षिणियां बनी रहती है।[3]

द– सभी तीर्थकरों की मुद्रा एक समान नहीं होती। ऋषभनाथ, नेमिनाथ, और माहावपीर को आसन मुद्रा कमलासन है, शेष तीर्थकरों की मुद्रा कायोत्सर्गासन है, क्योंकि इन्हीं मुद्राओं में तीर्थकरों को कैवल्य प्राप्त हुआ था।[4]

श– सभी जैन तीर्थकरों की महिमा समान रूप में है। तीर्थकर प्रतिमा निर्देशनों में इस तथ्य का पोषण पाया जाता है।

ष– जैन प्रतिमाओं की यह एक प्रमुख विशेषता है कि जिनों के चित्रण में तीर्थकरों का सर्वश्रेष्ठ पद प्रकल्पित होता है। ब्रहमादिदेव भी गौण पद के ही अधिकारी होते हैं।

स– तीर्थकर राज–द्वेष से रहित हैं, अतः इनकी प्रतिमायें प्रायः योगी रूप में ही निर्मित होती हैं। इन तीर्थकरों की प्रतिमायें योगिराज दक्षिणामूर्ति शिव के समान विभाज्य है।

ह– जैन मूर्ति प्रतिष्ठा में मूल नायक अर्थात् प्रधान जिन, प्रधान पद का अधिकार होता है और अन्य तीर्थकरों का पद अपेक्षाकृत गौण रहता है।[5]

1– प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 315,
2– प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 315,
3– प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 315,
4– प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 315,
5– प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 315,

24 जैन तीर्थकर – जैन तीर्थकरों एवं उनकी यक्ष–यक्षणियों , ध्वज चिन्हों आदि का सुनियोजित विवरण रूपमण्डल तथा अपराजित पृच्छा में है। इन शास्त्रों में रूप मण्डल का विवरण श्वेताम्बर परंपरा से और अपराजित पृच्छा का विवरण दिगम्बर परंपरा से प्रभावित प्रतीत होता है।[1]

जैन मतानुसार 24 तीर्थकर हैं। उनके प्रथम तीर्थकर आदिनाथ (ऋषभनाथ) और अंतिम तथा 24वें तीर्थकर महावीर स्वामी हैं। रूपमण्डन[2] एवं अपराजित पृच्छा[3] के अनुसार 24 तीर्थकर निम्न हैं–

(1) आदिनाथ (ऋषभनाथ) (2) अजितनाथ (3) संभवनाथ (4) अभिनन्दनाथ (5) सुमतिनाथ (6) पद्मनाथ (7) सुपार्श्वनाथ (8) चन्द्रप्रभनाथ (9) सुविधिनाथ पुष्पदन्त (10) शीतलनाथ (11) श्रेयांसनाथ (12) वासुपूज्य (13) विमलनाथ (14) अनन्तनाथ (15) धर्मनाथ (16) शान्तिनाथ (17) कुन्थुनाथ (18) अरनाथ (19) मल्लिनाथ (20) मुनिसुव्रत (21) नमिनाथ (22) अरिष्टनेमि या नेमिनाथ (23) पार्श्वनाथ (24) महावीर (वर्धमान)

प्रसिद्ध जर्मन विद्धान श्री क्लाउज ब्रून[3] ने क्रम सं0 9 पर अंकित सुविधिनाथ के स्थान पर पुष्पदन्त का उल्लेख किया है। शेष 23 तीर्थकर उपरोक्त ही हैं।

ये सभी तीर्थकर पूज्य एवं सुखदाता हैं पर रूप मण्डन के आधार पर आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, एवं महावीर ये चार तीर्थकर विशेष फलदायक है।[4] इनमें से कुछ तीर्थकरों के वर्ण का उल्लेख रूप मण्डन एवं उपराजित पृच्छा में देखने को मिल जाता है। रूप मण्डन के आधार पर वासुपूज्य का रंग लाल, चन्द्रप्रभु और सुविधिनाथ का वर्ण श्वेत, नेमि और मुनि का वर्ण काला, मल्लि और पार्श्व का वर्ण का नीला तथा शेष सभी तीर्थकरों का वर्ण श्वेत, पद्मप्रभु एवं धर्मनाथ का वर्ण रक्त, सुपार्श्वनाथ व पार्श्वनाथ का वर्ण हरित, नेमिनाथ का वर्ण श्याम, मल्लिनाथ का वर्ण नील तथा शेष सभी तीर्थकरों का वर्ण कांचनप्रभा है।

1– हिन्दु तथा जैन प्रतिमा विज्ञान, ले0 डा0 श्रीमती पंकज लता श्रीवास्तव, पृ0 358,
2– रूप मण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव, अध्याय 6 पृ0 61,
3– अपराजित पृच्छा ले0 आचार्य भुवन देव, सूत्र 221, पृ0 204,
4– रूप मण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव, अध्याय 6 पृ0 25–26,

तीर्थकरों के ध्वज चिन्ह – रूप मण्डन के आधार पर 24 तीर्थकरों के ध्वज चिन्ह क्रमशः वृष, गज, अश्व, कपि, क्रोंच, अज, स्वास्तिक, शशि, मकर, श्रीवत्स, खंगीत, महिष, भूकर, शयेन, वज, मृग, कुर्म, छाग, नन्दया घट नीलोत्पल, शंख, फणी और सिंह हैं।[1]

अपराजित पृच्छा के अनुसार सम्पूर्ण ध्वज चिन्ह क्रमशः वृष, गज, अश्व, कपि, क्रोंच, पदम,त्र स्वास्तिक, चन्द्र, मकर, श्रीवत्स, गण्डक, महिष, थूकर, ससादन, बज, मृग, अज, नन्दयावर्त, कलश, कूर्म, नीलाब्ज, शंख, सर्प और सिंह हैं।[2]

जिनोपासक यक्ष – 24 तीर्थकरों की भांति जैन मूर्ति कला में जिनोपासर 24 यक्ष भी बताये गये हैं। रूप मण्डन के अनुसार इन यक्षों के नाम क्रमशः गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षनायक, तुम्बरू, कुसुम, मातंग, विजय, जय, ब्रह्मा, यक्षेद, कुमार, षडमुख, पाताल, किन्नर, गरूड़, बन्धर्व, यक्षेद, कुबेर, वरूण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व और मातंग हैं।[3]

पर अपराजित पृच्छा में इन 24 यक्षों के नामों में कुछ परिवर्तन हो गया है। अपराजित पृच्छा के आधार पर 24 तीर्थकरों के लिए क्रमशः 24 यक्षों की जो नामावलि दी गयी है वह इस प्रकार है – वृषवक्त्र, महायक्ष, त्रिमुख, चतुरानन, तुम्बरू, कुसुम, मातंग, विजय, जय, ब्रह्मा, यक्षेद, कुमार, षडमुख, पाताल, किन्नर, गरूड़, बन्धर्व, यक्षेद, कुबेर, वरूण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व और मातंग हैं।[4]

रूप मण्डल में कुछ यक्षों के प्रतिमा लक्षण भी दिये गये हैं। जैसे ऋषभ के यक्ष, गोमुख का वर्ण हेम है तथा उनका मुख वृष की भांति है। उनका एक हाथ वरद मुद्रा में है तथा तीन हाथों में क्रमशः अक्षसूत्र, पाश और बीजपूरक हैं।[5]

1– रूप मण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव, अध्याय 6 पृ0 5–6,
2– अपराजित पृच्छा ले0 आचार्य भुवन देव, सूत्र 221, पृ0 8–10,
3– रूप मण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव, अध्याय 6 पृ0 12–14,
4– अपराजित पृच्छा ले0 आचार्य भुवन देव, सूत्र 221, पृ0 39–41,
5– रूप मण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव, अध्याय 6 पृ0 17,

पार्श्वनाथ के यक्ष पार्श्व कूर्मारीन हैं तथा उनका मुख गज की भांति है। उनका वर्ण काला है तथा हाथों में बीजपूरक, उरग, नाग और नकुल हैं।[1] महावीर के यक्ष मातंग गजारूढ़ हैं तथा श्वेत वर्ण के हैं। दाहिने हाथ में नकुल और बायें हांथ में बीजपूरक लिये रहते हैं।[2]

अपराजित पृच्छा में सारे 24 यक्षों की प्रतिमा लक्षण का विवरण जो दिया गया है वह निम्न प्रकार से है।[3]

वृषवक्त्र चतुर्भज हैं, उनके हाथों में वर, अक्ष, पार्श्व , और भातुलुग हैं तथ श्वेत वर्ण, वृषमुख, एवं वृषासन हैं। महायक्ष–श्याम वर्ण एवं अष्ट भुज हैं, उनके हाथों में वरद, अभय, मदगर, अक्ष, पार्श्व, अंकुश, शक्ति, और मातुलुंग हैं। त्रिमुख भी श्याम वर्ण, त्रिनेत्र त्रिभुजाधारी, षडभुज एवं मयूरासन हैं, उनके हाथों में परशु, अक्ष, गदा, चक्र, शंख तथा वर हैं। चतुरानन के हाथों में नाग, पार्श्व, वज्र तथा अंकृश हैं एवं वे हंसासीन हैं। तुम्बरू गरूड़ासन हैं एवं उनके हाथों में दो सर्प तथा वर हैं। कुसुम मृगासीन हैं एवं उनकी दो भुजाओं में गदा और अक्ष शोभायमान हैं। मातंभ मेषवाहन पर आसीन हैं एवं उनकी दो भुजाओं में गदा और पार्श्व हैं। विजय कपोत पर आसीन हैं तथा उनके हाथों में परशु, पार्श्व, अभय और वर हैं। यक्षंस वृष पर आसीन हैं एवं श्वेत वर्ण वाले हैं तथा त्रिशूल, अक्ष, फल वर धारे हैं। कुमार मयूरासीन हैं तथा धनुषबाण, फल व वर धारी हैं। षडमुख, षडभुज हैं तथा धनुषबाण, फल व वर धारी हैं। पाताल बज्र, अंकुश, धनुषबाण, फल व वर धारण किए हैं। गरूड़ शुकासन हैं तथा पार्श्व, अंकुश, फल, वरधारी हैं, किन्नर पार्श्व, अंकुश, धनुषबाण, फल, वर धारी हैं। गन्धर्व शुकासन हैं तथा पद्म, अभय, फल व वरधारी हैं, यक्षेस खरासीन हैं एवं धनुषबाण, फल व वरधारी हैं। कुबेर चतुर्मुख तथा सिंहासीन हैं और पार्श्व, अंकुश, फल व वर धरण किये हैं। वरूण पार्श्व, अंकुश, धनुषबाण, सर्प, वज्र धारण किये हुए हैं और उनका कोई प्रतिमानुकूल लक्षण स्पष्ट नहीं दिखायी देता।

1– रूप मण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव, अध्याय 6 पृ0 20,
2– रूप मण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव, अध्याय 6 पृ0 22,
3– अपराजित पृच्छा, ले0 आचार्य भुवन देव, 221,पृ0 45–56,

पार्श्व धनुषबाण भृण्डि मुद्गर फल व वर धारी हैं एवं सर्प रूप, श्याम वर्ण शान्ति प्रदाता हैं। मातंग गज पर स्थित हैं तथा अपने दो भुजाओं में फल एवं वर धारण किये हुए ।

शासन देवियां (यक्षणियां) -- 24 तीर्थकरों की सख्या के साथ 24 यक्षों की भांति 24 शासन देवियां (यक्षणियां) भी हैं, जो कि हर तीर्थकर की प्रतिमा के प्रदर्शन में यक्ष के साथ अवश्य हो अंकित की जाती हैं। इन यक्षणियों का जैन प्रतिमाओं में बड़ा ही महत्व है।

रूपमण्डप के आधार पर यह 24 शासन देवियां इस प्रकार से हैं–[1] चक्रेश्वरी, अजितबला, दुरितारि, कालिका, महाकाली, श्यामा, शान्ता, भृकुटि, सुसारिका, अशोका, मानवी, चण्डी, विदिता, अंकुशी, कन्दर्पी, निर्वाणी, बाली, धारिणी, धरणाप्रिया, नादरक्ता (नरदत्ता), गन्धर्वा, अम्बिका, पद्मावती, और सिद्धायिका।

पर अपराजित पृच्छा में इन शासनदेवियों की संख्या में समानता होते हुए भी उनके नामों में बहुत बड़ा परिवर्तन है। उसमें 24 शासन देवियों के नामों की जो तालिका दी गयी है वह इस प्रकार से है–[2]

चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञा, वज्रश्रंखला, नरदत्ता, मनोवेगा, कालिका, ज्वालामालिनी, महाकाली, मानवी, गौरी, गान्धारी, विराटा, अग्रनन्तमति, मानसी, महामानती, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपा, चामुण्डा, अम्बिका, पद्मावती और सिद्धायिका।

रूपमण्डन में कुछ यक्षों की भांति कुछ यक्षिणियों के लक्षण एवं विशेषतायें देखने को मिलती हैं।[1] यथा–चक्रेश्वरी नामक यक्षिणी डेमवर्णा, गरूड़ारूढ़ा एवं अष्ट भुजा धारिणी हैं तथा उनके एक हाथ में वरद, शेष में बाण, पार्श्व, चक्र व शूलादि हैं। जब वह द्वादश भुजा धारिण होती हैं तब उनके आठ हाथों में चक्र, दो में वज्र और दो में मातुलुंग होते हैं तथा गरूड़ पर पदमस्थ होती हैं। वे चतुर्भुजा तथा पद्मावती तप्त लोहे अथवा तांबे के सद्वश वर्ण वाली हैं।

1– रूप मण्डन, ले0 बलराम श्रीवास्तव, अध्याय 6 पृ0 14–16,
2– अपराजित पृच्छा, ले0 आचार्य भुवन देव, 221,पृ0 10–14,

वे चतुर्भुजा तथा कुक्कुटासीना हैं एवं हाथों में पद्म, पाश, अंकुश और बीजपूरक धारण किये रहती हैं। सिद्धायिका नीलवर्णा, चतुर्भुजा एवं सिंहारूढ़ा हैं। उनके हाथों में पुस्तक अभय, वाण तथा मातुलुंग रहते हैं।

अपराजित पृच्छा में रूपमण्डन से भिन्न 24 यक्षिणियों तालिका दी गयी है, जिनकी विशेषतायें निम्न प्रकार से देखने को मिलती हैं–[1]

चक्रेश्वरी – षट्पाद तथा द्वादश भुजायुक्त हैं। उनके हाथों में आठ चक्र, दो बज्र, तथा मातुलुंग तथा अभय सुशोभित हैं और वे पद्मासना एवं गरूढ़ पर स्थित हैं।

रोहिणी – श्वेतवर्णा, चतुर्भुजी तथा लोहासना अथवा रथारूढ़ा हैं और हाथों में शंख, चक्र, अभय एवं पर धारण किये हैं।

प्रज्ञा – श्वेतवर्णा षड्भुजी हैं तथा हाथों में अभय, वर, फल, चन्द्र, परशु और कमल धारण किये हुये हैं।

वज्रश्रंखला – चतुर्भुजी रूप में हंसवाहिनी होती हैं तथा अपने हाथों में नाग–पाश, अक्ष, फल व वरद धारण किये रहती हैं।

नरदत्ता – श्वेत वर्णा चतुर्भुजी तथा गजारूढ़ा हैं और अपने हाथों में चक्र वज्र, वरद एवं फल धारण किये रहती हैं।

मनोवेगा – स्वर्णवर्णा, चतुर्भुजी व अश्वारूढ़ा रहती हैं तथा अपने हाथों में वज्र, चक, वर, फल, धारण किये रहती हैं।

कालिका – कृष्णवर्णा, अष्टभुजी व महिषारूढ़ा होती हैं तथा अपने हाथों में भूल, पार्श्व, अंकुश, धनुषबाण, चक, अभय और वरद धारण किये रहती हैं।

महाकाली – कृष्णवर्णा, चतुर्भुजी, एवं कूर्म पर स्थित रहती हैं तथा अपने हाथों में वज्र, गदा, अभय व वर धारण किये रहती हैं।

मानवी – श्यान वर्णा, चतुर्भुजी, तथा शूकर पर आरूढ़ रहती हैं और उनके हाथों में पार्श्व, अंकुश, वर एवं फल शोभा पाते हैं।

1– अपराजित पृच्छा, ले0 आचार्य भुवन देव, 221,पृ0 15–38,

गौरी – कनक सदृश आभा वाली, चतुर्भुजी, कृष्ण–हरिणारूढ़ा होती हैं तथा अपने हाथों में पार्श्व, अंकुश, ध्वज और वरद धारण किये रहती हैं।

गान्धारी – श्यामवर्णा, मकरारूढा व द्विभुजा धारणी गान्धारी अपने हाथों में पद्मफल को वारण किये रहती हैं।

विराटा – व्योमयानगता हैं, श्यामवर्णा हैं तथा अपनी षड्भुजाओं में खड्ग, खेटक, धनुष बाण तथा दो में वरद धारण किये रहती हैं।

मानसी – रक्तवर्णा, षड्भुजा धारिणी एवं व्याघ्ररूढ़ा होती हैं तथा अपने हाथों में त्रिशूल, पाश, चक, डमरू, फल व वर धारण करती हैं।

महामानती – मरूड़ारूढ़ा, स्वर्णआभा संयुक्ता एवं चतुर्भुजा धारिणी इस यक्षिणी के हाथों में शर, धनुष, वज्र, एवं चक्र शोभा पाते हैं।

जया – कनकाभा संयुक्ता, कृष्ण शुकरारूढ़ा होती हैं तथा अपने हाथों में त्रिशूल, पाश, चक्र, पाश, अंकुश, फल, और वरद धारण करती हैं।

विजया – नग्ना, स्वणवर्णा, सिंहासना एवं चतुर्भुजा धारिणी विजय अपने हाथों में बज्र, चक, सर्प और फल धरण किये रहती हैं।

अपराजिता – श्यामवर्णा एवं चतुर्भुजा धारिणी इस यक्षिणी के हाथों में खड्ग खेटक, वर एवं फल शोभायमान रहते हैं।

बहूरूपा – सर्पासना, स्वर्णवर्णा एवं द्विभुजा धारिणी होकर यह अपने हाथों में खड्ग और खेटक धारण किया करती हैं।

चमुण्डा – मर्कटासना, रक्तिमासंयुक्ता, अष्टभुजा, धारिणी के हाथों में शूल, खाड्ग, मुद्गर, पाश, बज्र, चक्र, डमरू एवं अक्ष धारण करती हैं।

अम्बिका – हरिवर्णा, सिंहारूढ़ा तथा द्विभुजा धारिणी अम्बिका अपने हाथों में फल और वर को धारण करती हैं एवं उनकी गोद में लड़का शोभायमान रहता है।

पद्मावती – पद्मासना, कुक्कुटासना, रक्तवर्णा, एवं चतुर्भुजा धारिणी पद्मावती अपने हाथों में पाश, अंकुश, पद्म तथा वर धारण करती हैं।

सिद्धायिका – भद्रासन समन्विता सिद्धायिका द्विभुजा धारिणी हैं, जिनके हाथों में पुस्तक व अभय शोभा पाते हैं और जिनकी आभा कनक सदृश्य है।

श्रुत देवियां – जैन मूर्ति कला के अन्तर्गत तीर्थकर, शासनदेव, शासन देवियों के अतिरिक्त श्रुतदेवियों का भी विशेष महत्व है। डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने अपनी पुस्तक प्रतिमा विज्ञान में जैन मूर्ति कला के अन्तर्गत 16 श्रुत देवियों अथवा विघा देवियों का उल्लेख किया है। यह श्रुत देवियां निम्न प्रकार से हैं –[1]

रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रश्रंखला, वजांकुसी, अप्रतियका, पुरूषदत्ता, काली देवी, महाकाली, गौरी, गान्धारी, महाज्वाला, मानवी, वैराव्या, अच्छुप्ता, मानसी, महामानसी।

इनके लक्षण भी यक्षिणियों से मिलते जुलते हैं।[2] शान्तिदेवी के नाम से भी श्वेताम्बरों के ग्रन्थों में एक देवी हैं, जो जैनियों की एक नवीन उदभावना कही जा सकती हैं।[3]

श्री (लक्ष्मी), सरस्वती और गणेश का भी जैन मूर्ति कला में विशेष प्रचलन है। आचार्य दिनकर में इनके लक्षण, ब्राह्मण प्रतिमा लक्षण से मिलते जुलते हैं।[4]

योगिनियां – ब्राह्मण प्रतिमाओं में उल्लेखित 64 योगिनियों की भांतिजैन प्रतिमा विज्ञान में भी 64 योगिनियों का उल्लेख मिलता है, पर इनमें ब्राह्मण प्रतिमा लक्षणों से वैलक्षण्य हैं। अहिंसक एवं परम वैष्णव जैनियों में योगिनियों का आविर्भाव उन पर तांत्रिक आचार्य एवं तांत्रिकों की पूजा का प्रभाव है।[5]

दिक्पाल – ब्राहमण प्रतिमाओं में दिक्पालों की संख्या 8 निर्दिष्ट है, जिनकों अष्ट दिक्पाल की संज्ञा दी गयी है, पर जैनों में 10 दिक्पाल बताये गये हैं आठ दिशाओं के अष्ट दिक्पालों के अलावा दो दिक्पाल ब्रह्मदेव एवं नागदेव और अधिक जुड़ गए हैं। ये दोनों कमशः ऊर्द्धव दिशा एवं अर्द्ध दिशा (पाताल) के दिक्पाल माने गये हैं। इन दस दिक्पालों के नाम– इन्द्र, अग्नि, भ्रम, निऋृति, वरूण, वायु, कुबेर, ईशान, नागदेव और ब्रह्मदेव हैं। इनके प्रतिमा लक्षण निम्न प्रकार से हैं।[6]

1–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318,
2–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318,
3–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318,
4–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318,
5–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318,
6–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 317,

इन्द्र – तप्त कांचन वर्ण, पीताम्बर, ऐरावत वाहन वज्रहस्त हैं तथा पूर्व दिशा के स्वामी हैं।

अग्नि – कपिल वर्ण, छागवाहन, नीलाम्बर, धनुर्वाण हस्त एवं आग्नेय, दिक्पीश हैं।

यम – कृष्ण वर्ण, चर्मावरण, महिष वाहन, दण्ड हस्त एवं दक्षिण दिक्वीश हैं।

निऋृति – धूम्र वर्ण, व्याध्रचर्मावृत्ति, मुदगरहस्त, प्रेतवाहन एवं नैऋृलयदक्धीश हैं।

वरूण – मेघवर्ण, पीताम्बर, पाशहस्त, मत्स्यवाहन एवं पश्चिमदिक्चीश हैं।

वायु – धूसरवर्ण, रक्ताम्बर, हरिणवाहन, ध्वजप्रहरण एवं वायव्यदिक्चीश हैं।

कुबेर – सत्रकोषाध्यक्ष, कनकवर्ण, श्वेताम्बर, नरवाहन, रत्नहस्त एवं उत्तरदिक्धीश हैं।

ईशान – श्वेतवर्ण, गजाजिनावृत्त, वृषभ वाहन, धिनाकशूलधर एवं ईशानदिक्धीश हैं।

नागदेव – कृष्णवर्ण, पदमावहन, उरगहस्त, पातालाधीश्वर हैं।

ब्रह्मदेव – कंचनवर्ण, चतुर्मुख श्वेताम्बर, हंसवाहन, कमलासन, पुस्तक , कमलहस्त ऊर्द्ववलोकाधीश हैं।

प्रतिहार एवं उनके प्रतिमा–लक्षण – ब्रह्मण प्रतिमाओं की भांति जैन प्रतिमाओं में भी प्रतिहारों का निर्देशन है। रूपमण्डन के अनुसार जैन प्रतिमाओं में आठ प्रतिहारों का उल्लेख मिलता है इन प्रतिहारों के नाम – इन्द्र, इन्द्रजय, महेन्द्र, विजय, धर्णेन्द्र, पद्मक, सुनाभ एवं सुरदुन्दुभि हैं।[1] ये सभी प्रतिहार वीतराग एवं शांक्तिप्रदाता हैं।[2]

1–प्रतिमा विज्ञान, ले0 डा0 द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 28,
2–प्रतिमा विज्ञान, ले0 डा0 द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ0 29,

क्षेत्रपाल – जिन–प्रतिमाओं मे क्षेत्रपाल का उल्लेख मिलता है। यह ब्राह्मण–प्रतिमाओं की भांति जिन प्रतिमाओं में एक प्रकार के भैरव हैं, जो योगिनियों के अधिपति हैं।[1] आचार्य दिनकर में क्षेत्रपाल का लक्षण इस प्रकार से देखने को मिलता हे। "वे कृष्णगौरकांचन – धूसरकपिलवर्ण, विंशतिभुजदण्ड, बर्बरकेश, जटाजूटमण्डित, शेषकृतहार, वासुकीकृतनिजोपवीत, तक्षककृतमेखल, सिंहचर्मावृत, नानायुद्धहस्त, प्रेतासन, कुक्कुरवाहन एवं त्रिलोचन हैं।[2]

जैन–देवों के विभिन्न वर्ग – जैनों के प्राचीन देववाद में चार प्रकार के प्रधान वर्ग हैं [3]– (अ) ज्योतिषी, (ब) विमानवासी, (स) भवनपति, और (द) व्यन्तर।

ज्योतिषी में नवग्रह का संकेतन है।[4] विमानवासी दो उप–वर्गों में विभाजित हैं – (अ) उत्तर कल्प, (ब) अनुत्तर कल्प।

उत्तर कल्प में सुधर्म, ईशान, सनतकुमार व ब्रह्मा आदि 12 देव परिगणित हैं एवं अनुत्तर कल्प में पांच स्थानों के अधिष्ठातृदेव – इन्द्र के पांच रूप (विजय, विजयन्त, जयन्त, अपराति एवं स्वार्थ सिद्ध) सम्मिलित हैं।[5]

भवन–पतियों में असुर, नाग, विधुत, सपर्ण आदि दस श्रेणियां हैं, जब कि व्यन्तरों ने पिशाच, राक्षस, यक्ष एवं गन्धर्व आदि 8 प्रकार की श्रेणिंयाँ हैं।[6]

1–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318,
2–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 318,
3–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 314,
4–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 314,
5–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 314,
6–प्रतिमा विज्ञान, ले० डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, पृ० 314,

जैन मूर्तियां और उनका विश्लेषण

वर्तमान स्थिति – मूर्तियों का विवेचन करने से पूर्व उनकी वर्तमान स्थिति से अवगत होना समीचीन होगा। अनेक मंदिर काल के प्रवाह के साथ ध्वस्त हो गए, मूर्तियों बिखर गयीं, कुछ धरा के गर्भ में समाहित हो गयी और कुछ विनष्ट हो गयीं। बची हुयी इस कला राशि के कुछ नमूने आज भी यत्र–तत्र बिखरे मिलते हैं। देवगढ़ में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण का स्कल्पचर्स शेड है। यहीं जैन संग्रहालय ही है। जिनमें जैन धर्म से संबंधित कुछ प्रतिमायें संग्रहीत हैं। सेरोनजी में सैकड़ों प्रतिमायें जैन समाज के अधिकार में संग्रहीत हैं, यधपि यहां इनकी अपेक्षित व्यवस्था एवं सुरक्षा का पूर्ण अभाव है। दुधई, चांदपुर के संरक्षित स्मारकों से लगभग 130 जैन मूर्तियों को उठा कर झांसी स्थित रानी लक्ष्मीबाई महल संग्रहालय में सुरक्षित रख दिया गया है। कुछ मूर्तियों अब भी प्राचीन मंदिरों में मौजूद हैं।

कलागत विशेषतायें – देवगढ़ और सेरोनजी मूर्तियों के निर्माण केंन्द्र थे। यहां से मूर्तियों अन्यत्र ले जायी गयी थीं। मूर्तियों का निर्माण यहां दीर्घकाल तक हुआ। मौर्यकाल की मूर्तियों आदि अब यहां दृष्टिगत नहीं होती या उनके लक्षण यहां की मूर्तियों में साधारणतः नहीं पाये जाते, तथापि यह मानना होगा कि उस समय यहां मूर्तियों का निर्माण प्रारंभ हो चुका था।[1] गांधार कला का प्रभाव ही निश्चत रूप से यहां की अनेक मूर्तियों पर देखा जा सकता है। एक विशिष्ट मुखाकृति जो गांधार शैली की विशेषता हैं, यहां की तीर्थकर और देव–देवियों की मूर्तियों में पर्याप्त सफलता से अंकित की गयी है। गुप्तकालीन और गुर्जरप्रतिहार करलीन अनेक मूर्तीयों यहां उपलब्ध हैं। कलचुरि और चन्देल युग में यहां प्रचुरता से मूर्तियों निर्मित हुयीं तथा मुगल और बुन्देल काल तक यहां मूर्तियां निर्मित होती रहीं।[2]

1– मंदिर, सं0 12 के ज्ञान शिलालेख में मौर्यकालीन ब्राहमी का भी प्रयोग हुआ है। एनुअल प्रोग्रेस रिपोर्ट भाग–2, 1918: दयाराम साहनी पृ0 10,

2–(अ) देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 95–96,

(ब) भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग, संकलन बलभद्र जैन, पृ0 191–92,

गुप्तकालीन प्रतिमायें प्रभावोत्पादक व सुन्दर है। आकृतियों के अंकन में गतिशीलता है। सौन्दर्य विधान के अवधारित मानदण्डों का प्रयोग कलाकारों ने प्रतिमा निर्माण में किया है। शरीर की स्थूलता समाप्त हो गयी और उसमें छरहरापन आ गया। अर्धमुकलित चक्षु, मुख का शान्त भाव आकर्षक केश विन्यास, पारदर्शक वस्त्र परिधान इस कला की अपनी विशेषतायें हैं। कुषाण काल की अपेक्षा गुप्त काल में अलंकरों की संख्या कम हो गयी है। एकावलि, अंगद, कंकण, नूपुर आदि कुछ चुने हुए आभूषण ही प्रदर्शित किए गये हैं।[1]

प्रतिहार कला शैली की प्रतिमायें मध्यकालीन किसी भी अन्य शैली की कृतियों से अधिक सुन्दर और प्रभावोत्पादक हैं। मुख पर स्मृतिभाव प्रदर्शित हैं, शरीर सुडौल और अलंकरणों का प्रयोग कम किया गया है।[2]

कलचुरि कला शैली की मूर्तियों में अनुपातिक लम्बाई अधिक है। प्रायः पैर सरकंडे जैसे टेक की तरह लगे हुए हैं। कण्ठ तथा कमर के कुछ विशेष प्रकार के अलंकरण भी इस शैलीर की मूर्तियों की विशेषतायें हैं।[3]

चन्देल कला शैली का मूर्ति शिल्प अत्यन्त सम्पन्न है। इस शैली की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं। – [4]

1– कुछ मूर्तियों को छोड़ कर जिन्हें गर्भगृह तथा अन्य स्थानों में लगाया जाता था, अधिकांश कलाकृतियां किसी स्थापत्य का अंग रही हैं। इन्हें पटिया पर उकेर कर बनाया गया है, जिन्हें मंदिर की दीवारों पर स्थापित किया जाता था।

2– मानव मुखाकृति प्रायः अण्डाकार हैं जो ठोढ़ी के पास थोड़ा नुकीलापन लिये हुए हैं।

3– सामने की मुखकृति पर नयने बड़े–बड़े दिखलाए गये हैं।

4– चक्षु अर्धमुकलित और कभी–कभी नीचे को झुके हुए हैं।

1– उत्तर प्रदेश (पुरातत्व विशेषांक) वर्ष नौ अंक 12: बुन्देलखण्ड की मूर्ति सम्पदा, ले० एस० डी० त्रिवेदी, पृ० 21,
2– उत्तर प्रदेश (पुरातत्व विशेषांक) वर्ष नौ अंक 12: बुन्देलखण्ड की मूर्ति सम्पदा, ले० एस० डी० त्रिवेदी, पृ० 21,
3– बुन्देलखण्ड का पुरातत्व ले० एस० डी० त्रिवेदी, पृ० 45,
4– बुन्देलखण्ड का पुरातत्व ले० एस० डी० त्रिवेदी, पृ० 45,

5– भौंहों को एक लंबी वक्राकार रेखा के रूप में प्रदर्शित किया गया है जो नाक के ऊपर समाप्त होती है। परन्तु ये दोनों रेखायें प्रायः मिलती हैं।

6– मोटे ओष्ठ प्रदर्शित किये गये हैं।

7– गले में तीन या चार गरारे पड़े दिखाये गये हैं।

8– अधिकांश प्रतिमायें स्थानक स्थिति में हैं परन्तु जैन तीर्थकरों तथा कुछ अन्य देवी देवताओं को छोड़ कर आकृतियां समभंग नहीं हैं।

9– नीचे से उगती हुयी कमल कलिका प्रायः प्रदर्शित की गयी हैं। कहीं–कहीं इसे देव के लांछनों में सम्मिलित करके उनके हाथों में प्रदर्शित किया गया है।

गुप्तोत्तर कालीन (600–1200 ई0) मूर्तियां शिलापट्टों पर उकेर कर उभार में बनायी गयी है। गोलायी में उकेरी हुयी मूर्तियां कम हैं। बहुत सी मूर्तियों को संयोजन एक सा है। दोनों ओर के किनारों पर कला–अभिप्राय बने रहते हैं जिनमें शार्दूल, मकर तथा कभी–कभी उसके ऊपर किन्नर आकृतियां मिलती हैं। प्रभामण्डल के विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं और उसके दोनों ओर बादलों के मध्य विघाधरों को विहार करते हुए दिखलाया गया है। देवी देवताओं को अलंकृत स्तम्भों के मध्य प्रदर्शित किया गया है।[1]

इस काल में (600–1200 ई0) कलाकार मूर्ति को अलंकरण और चमत्कार के घेरे में उलक्षने लगते हैं परन्तुं मूर्ति के मुख–मण्डल थे शान्ति और वैराग्य का भाव नहीं उभार पाते जो गुप्त कालीन कला की विशेषता थी। इस तथा ऐसे ही कलागत दोषों के लिये न केवल कलाकार उत्तरदायी थे बल्कि उनके आदेशकर्ता भट्टारक या उनसे प्रभावित श्रावक भी थे। तत्कालीन समाज को भी अलंकरण की बोझिलता रूचिकर थी। आभूषणप्रियता, अन्धविश्वास आदि भी इसमें सहायक थे। सहायक थे। चमत्कार को महत्व देने की परंपरा भट्टाराकों में प्रारंभ से रही है। अतः बीसों अस्वाभाविक और अवैज्ञानिक कथाओं को गढ़ने के साथ ही साथ उन्होंने कला में भी ऐसे ही तत्वों का समावेश प्रारंभ कर दिया।

1– बुन्देलखण्ड का पुरातत्व ले0 एस0 डी0 त्रिवेदी, पृ0 45,

उन्होंने सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ के साथ सर्प की पड़ावलि तो दिखायी ही, उनकी तकिया के रूप में (पृष्ठ भाग में) उसकी कुण्डली भी दिखायी।[1] इतना ही नहीं, इन सबके अतिरिक्त, देवगढ़ में पार्श्वनाथ की दो ऐसी मूर्तियां भी मिली हैं, जिनके आसन के रूप में सर्प की कुण्डली भी दिखायी गयी है।[2] इसी प्रकार कुछ मूर्तियों में तीर्थकर की माता एक आकर्षक मुद्रा में लेटी हैं और देवियां विभिन्न प्रकार की सेवा में संलग्न हैं।[3] माता के गौरव और स्नेह के प्रतीक चौबीसों तीर्थकरों का भी अंकन इसमें दृष्टव्य है।

कुछ तीर्थकरों के साथ जटाओं के अंकन में तो भट्टारक शिव को भी पीछे छोड़ देते हैं। शिव की जटायें लंबी अवश्य रहती हैं परन्तु वे प्रायः जूड़े में बंधी रहती हैं, किन्तु कुछ तीर्थकरों की मूर्तियों के साथ जटायें इतनी अधिक और लंबी दिखायी गयी हैं कि वे जूड़े में बंधने के बाद भी बहुत बड़ी मात्रा में कंधों और पीठ पर बिखरी रहती हैं।[4] कभी–कभी तो वे इतनी लंबी होती हैं कि पिण्डलियों तक आ पहुचती हैं।

भट्टारकों की एक प्रवृत्ति शासन देवों और देवियों को अपेक्षाकृत अधिक महत्व देने की भी रही थी। प्रारंभ में तीर्थकर मूर्तियों के साथ उनकी शासन देव–देवियों का अंकन नहीं होता थाा परन्तु भट्टारकों के उक्त प्रवृत्ति के फलस्वरूप ऐसा होने लगा। इतना ही नही स्थिति यहां तक आयी थी कि तीर्थकर मूर्ति की अपेक्षा शासन देवी की मूर्ति बीस गुना तक बड़ी बनायी जाने लगी। देव–देवियों के प्रति भट्टारकों का यह आग्रह यहां तक बढ़ा कि नवग्रहों का अंकन, जो सर्वत्र प्रवेश द्वारों पर ही उपलब्ध होता था, तीर्थकर मूर्तियों के साथ करना भी प्रारंभ कर दिया गया।[5] इससे तीर्थकर मूर्तियों के ऐश्वर्य में वृद्धि न होकर विद्रूपत्ता ही आयी है।

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 69,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 69,
3– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 69,
4– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 69,
5– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 69,

इस प्रकार गुप्तोत्तर काल से चन्देल काल तक और उसके भी पश्चात् मुगल काल के पूर्व तक तीर्थकर की मूर्तियों में सौन्दर्य और आकर्षण में अभिवृद्धि भले ही हुयी हो पर वैराग्य और शांन्ति की अभिव्यक्ति का निरंतर ह्रास होता गया।[1]

जैन मूर्तियां – बुन्देलखण्ड में जैन तीर्थकरों की प्रतिमाओं के अतिरिक्त देव–देवियों, विद्याधरों–साधु–साधुनियों, एलकों, श्रावक–श्राविकाओं, युग्म और मण्डलियों आदि की प्रतिमायें भी प्राप्त हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :–

जैन तीर्थकरों की प्रतिमायें – बुन्देलखण्ड में अन्य मूर्तियों की अपेक्षा तीर्थकरों की मूर्तियां अधिक प्राप्त हैं। बहुसंख्यक मूर्तियों पर लांछन अंकित नहीं हैं और कुछ पर अंकित लांछन शास्त्री मान्यताओं के विरूद्ध प्रतीत होते हैं। जैसे जटाधारी मूर्तियों के साथ बंदर, शंख, चकवा आदि। प्रायः सभी मूर्तियां शिलापट्टों पर उत्कर्ण की गयी हैं। द्वि–मूर्तिकायें, त्रि–मूर्तिकायें, सर्वतो–भद्रिकायें और चतुर्विंशत पट प्रचुरता से उपलब्ध हैं। द्वारों पर भी तीर्थकर मूर्तियों का अंकन हुआ है। प्रायः सभी मूर्तियों के साथ भिन्न–भिन्न रूप से कुछ परंपराओं का निर्वाह किया गया है।

ऋषभनाथ (आदिनाथ, वृषभनाथ) – जनपद ललितपुर में ऋषभनाथ की प्रतिमायें निम्न हैं–

देवगढ़ मंदिर सं0 1 – के मण्डप में सामने की ओर (पूर्व में) मध्य में वृषभनाथ की पद्मासन मूर्ति उल्लेखनीय है जिसका लंबा श्रीवत्स उसके बारहवीं शती के होने की पूर्ति करता है। आठवीं शती ई0 के आस पास की आदिनाथ की एक पद्मासन मूर्ति देवगढ़ मंदिर सं0 में (बांये से दाँयें, नवें स्थान पर 4फी0,7इंचX2फी0,7इंच) अवस्थित हैं। अष्टप्रतिहारियों के अतिरिक्त इसके परिकर में दांये एक अन्य लघु पद्मासन तीर्थकर का अंकन इस मूर्ति की विशेषता है।[2]

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 68,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 74,

मंदिर सं0 2 – में ही चौथे शिलाफलक (4फी0,5इंचX2फी0,7इंच) पर आदिनाथ की एक और पद्मासन मूर्ति है। इसके सिंहासन के नीचे एक पंक्ति के लेख में संवत् 1122 अंकित है तथा परिकर में तीर्थकरों की 2 लघु आकृतियां (पद्मासन में) अभिलिखित है। अष्ट प्रतिहारियों में एक दूसरे की ओर सस्नेह देखते हुए दो विघाधर युगल हमें बर्बस अपनी ओर आकृष्ट करते है।[1]

देवगढ़ मंदिर सं0 3 – में अवस्थित कायोत्सर्गासन ऋषभनाथ की मूर्ति 2फी0,6इंच ऊँचे और 1फी0,3इंच चौड़े शिला फलक पर उकेरी गयी है। इसके हाथ, परिकर, अष्टप्रतिहार्य तथा कुछ अन्य अश खण्डित हो गये हैं। सिंहासन में यक्ष युगल, श्रावक युगल, सिंह युगल और वृषभ का अंकन अत्यन्त सूक्ष्मता और सुन्दरता के साथ किया गया है। पादमूल में दो कमलधारी त्रिर्भगी देव दोनों ओर खड़े हैं। इन्होंने अपने–अपनें हाथ के विकसित कमल ऊपर उठा कर इस ढंग से ले रखी हैं कि वे तीर्थकर की दोनों हथेलियों में ऐसे जा थमे हैं मानों उन्हें स्वयं तीर्थकर ने ले रखा हो। परिकर में दोनों ओर तीन–तीन कायोत्सर्गासन तीर्थकरों की तीन–तीन पंक्तियां हैं। अनुमान है कि इस शिलाफलक के खण्डित अंश में शेष पांच तीर्थकर भी अंकित रहे होंगे। इस प्रकार इस शिलाफलक को चौबीसी कहना उपयुक्त होगा। इसका भी मण्डल अशोक चक् की अनुकृति पर बनाया गया है, जो इसकी अपनी विशेषता है। इसकी नाभि के नीचे की त्रिवली, मुखमण्डल की सौम्यता और अब भी चमकते हुए पलिश की सनिग्धतायें सब मिल कर इसे गुप्तोत्तर युग की सिद्ध करते हैं। यघपि सिंहासन पर तीर्थकर के पादमूल में उत्कीर्ण दो पंक्तियों के अभिलेख में संवत् 1209 उल्लिखित है।[2]

देवगढ़ मंदिर सं0 4 – में समवसरण वेदी में विराजमान ऋषभनाथ की प्रतिमा दर्शनीय है।[3]

देवगढ़ मंदिर सं0 27 – के गर्भगृह के द्वार के ऊपर मध्य में कायोत्सर्गासन ऋषभनाथ अंकित हैं।[4]

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 73,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 74,
3– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, संकलन बलभद्र जैन, पृ0 181,
4– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, संकलन बलभद्र जैन, पृ0 185,

प्रतिमा सं0 250 (दुधई) – वहां भी आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित है। उनके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में तीन–तीन तर्थकरों की छोटी प्रतिमायें अंकित हैं तथा आदिनाथ के पैरों के दोनों ओर एक–एक अलंकृत एवं उभंगी मुद्रा में प्रदर्शित चंवरधारी की सुन्दर आकृतियां है। आदिनाथ के शीर्ष की शोभा कमलदलों से युक्त कलात्मक प्रभा मण्डल के प्रदर्शन से और अधिक बढ़ गयी है। ऊपर केन्द्र में त्रिछत्र अंकित है जिस पर एक अस्पष्ट तीर्थकर की छोटी प्रतिमा है तथा उसके दोनों ओर माल्यधारी किन्न आदि की आकृतियां अंकित हैं। मद्रासन पर बीच में उनका ध्वज चिन्ह वृष तथा उसके नीचे दो सिंह प्रदर्शित है। दायीं ओर शासनदेव एंव बांयी ओर शासन देवी विराजी हैं।[1]

प्रतिमा सं0 231 (दुधई) – इस प्रतिमा में भी आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में हैं पर उनका शिर ध्वस्त है। उनके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में चार–चार तीर्थकरों की प्रतिमायें हैं। लेकिन इन तीर्थकरों के ऊर्ध्व भाग नष्ट हो चुके हैं। आदिनाथ की मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर एक--एक अलंकृत चंवरधारी पुरूषों की आकृतियां अंकित हैं। भद्रासन के नीचे वृष युक्त दो सिंह अंकित हैं तथा उन्हीं के साथ में उनके एक पैर के नीचे दायी ओर एक आरायक तथा बांयी ओर एक आराधिका प्रदर्शित हैं। दांयी ओर शासन देव तथा बांयी ओर शासन देवी उत्कीर्ण हैं।[2]

प्रतिमा सं0 247 (दुधई) (चतुर्विशत प्रतिमा) – दुधई की आदिनाथ की प्रतिमाओं में यह प्रतिमा कलात्मक दृष्टि से उत्तम है। इस प्रतिमा में मध्य में आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित हैं। ऊपर केन्द्र में त्रिछत्र तथा उसके आस–पास अभिषेक करते हुए कलात्मक सजीव गज तथा माल्यधारियों की सुन्दर आकृतियां उत्कीर्ण हैं। दाहिनी ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में 9 सुरक्षित एवं 2 नष्टावस्था में प्रदर्शित छोटी–छोटी जिन प्रतिमायें हैं। बांयी ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में 6 छोटी जिन प्रतिमायें पूर्ण सुरक्षित हैं, पर शेष प्रतिमाओं वाला भाग टूटा हुआ है।[3]

1– रानी लक्ष्मीबाई महल झाँसी संग्रहालय,
2– रानी लक्ष्मीबाई महल झाँसी संग्रहालय,
3– रानी लक्ष्मीबाई महल झाँसी संग्रहालय,

अतः इस ओर 12 जिन प्रतिमाओं का होना निश्चित ही है। उनके आकृतियां उत्कीर्ण हैं। दाहिनी ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में 9 सुरक्षित एवं 2 नष्टावस्था में प्रदर्शित छोटी–छोटी जिन प्रतिमायें हैं। बांयी ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में 6 छोटी प्रतिमायें पूर्ण सुरक्षित हैं, पर शेष प्रतिमाओं वाला भाग टूटा हुआ है। अतः इस ओर 12 जिन प्रतिमाओं का होना निश्चित ही है। उनके पैरों के समीप दोनों ओर एक–एक बैठा हुआ आराधक के एवं 2 खड़े हुए पुरूषों की सुन्दर आकृतियां हैं। पादपीठ पर दो सिंह एवं उनका ध्वज चिन्ह अंकित हैं, नीचे बांयी ओर चक्रेश्वरी एवं दाहिनी ओर गोमुख प्रदर्शित हैं।

प्रतिमा सं0 643(दुधई) – इस प्रतिमा में केवल अधोभाग सुरक्षित है। दोनों पैरों को सीधे रूप में खड़े रखने से यह आभास होता है। कि आदिनाथ की यह प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्मित हुयी होगी। मुख्य प्रतिमा के दोनों पैरों के दाहिनी ओर उर्भगी मुद्रा में एक चंवरधारी व एक आराधक की आकृतियां अंकित हैं, जब कि बांयी ओर की दोनों आकृतियां अस्पष्ट है। पादपीठ पर दो वृष एवं दो सिंह अंकित है।[1]

प्रतिमा सं0 616 (दुधई) – ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित आदिनाथ की इस प्रतिमा का शीर्ष, घुटनों एवं हाथों वाले भाग नष्ट हो चुके हैं। पादपीठ पर वृषभ व दो सिंह अंकित हैं।[2]

प्रतिमा सं0 212 (दुधई) – लगभग 4फी0 9इंच ऊँचाई में निर्मित आदिनाथ की ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित मुद्रा में प्रदर्शित इस प्रतिमा में शीर्ष, बांयी जांघ एवं भुजाों वाले भाग नष्ट हो चुके हैं। पृष्ठ भाग में कामदलों से युक्त प्रभा मण्डल के चिन्ह से प्रभा मण्डल के होने का निश्चयीकरण होता है। दाहिनी ओर एक सजीव एवं कलापूर्ण गज पैर उठाये हुये खड़ा है, जिसके ऊपर एक चंवरधारी की सुन्दर आकृति है जिसका दाहिना हाथ एवं पैर (दोनों) नष्ट हो चुके हैं। इससे स्पष्ट है कि यह पुरूष गज पर स्थित रहा होगा। भद्रासन सुन्दर कमलदलों एवं कीर्तिमुखों से अलंकृत है तथा मुक्तालड़ियों से अलंकृत कलापूर्ण पत्र पर शोभायमान है।

1– रानी लक्ष्मीबाई महल झाँसी संग्रहालय,
2– रानी लक्ष्मीबाई महल झाँसी संग्रहालय,

दाहिनी ओर एक सिंह है तथा बांयी ओर वाले सिंह का केवल एक पिछला पैर अंकित है। इससे बांयी ओर भी सिंह का होना आवश्यक समझा जाता है । दाहिनी ओर गोमुख एवं बांयी ओर गरूड़वाहिनी चक्रेश्वरी की सुंदर एवं सजीव प्रतिमायें हैं।[1]

प्रतिमा सं0 214 (दुधई) 1 – कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित आदिनाथ की यह प्रतिमा शिर विहीन है। दाहिनी ओर छोटी–छोटी दो जिन प्रतिमायें हैं तथा बांयी ओर एक प्रतिमा अंकित हैं। लेकिन उसका ऊपर का भाग नष्ट है। पैरों के समीप दोनों ओर एक–एक चंवरधारी की आकृतियां तथा एक–एक अस्पष्ट आकृतियां अंकित हैं। भद्रासन पर वृषभ एवं दो सिंह प्रदर्शित हैं। बांयी ओर शासनदेवी तथा दाहिनी ओर शासन देव अंकित हैं।

आदिनाथ के कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित उपरोक्त आदिनाथ की प्रतिमाओं के अलावा दुधई के मंदिरों के दक्षिणी समूह में बड़ी बारात एंव छोटी बारात नामक मंदिरों के अवशेषों के बीच में आदिनाथ की एक प्रतिमा है, जिसका शीर्ष वाला भाग, घुटनों वाला भाग तथा भुजाओं वाले भाग नष्ट हो चुके हैं। घुटनों के समीप दोनों ओर एक–एक गज व दाहिनी ओर एक चंवरधारी की आकृति अंकित है। पादपीठ पर वृषभ एवं आस–पास सिंह प्रदर्शित हैं।[2]

प्रतिमा सं0 249 (चांदपुर) – इस प्रतिमा में मध्य में आदिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हुए हैं। दोनों ओर एक–एक उन चवरधारी की आकृतियां अंकित हैं, जो कि पूर्णरूपेण विविध प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हैं। केन्द्र में छत्र है,जिस पर ध्यानी मुद्रा में तीर्थकर की एक छोटी अस्पष्ट प्रतिमा है। इसके दोनों ओर एक–एक आराधक उपासना मुद्रा में है। पादपीठ पर (भद्रासन) पर केन्द्र में वृष एवं उसके आस–पास एक–एक सिंह की आकृतियां निर्मित हैं। दाहिनी ओर शासनदेव (यक्ष) तथा बांयी और शासनदेवी (यक्षिणी) चक्रेश्वरी प्रदर्शित हैं। भाव–भंगिमाओं की दृष्टि से प्रतिमा अनूठी है।[3]

1– रानी लक्ष्मीबाई महल झाँसी संग्रहालय,
2– रानी लक्ष्मीबाई महल झाँसी संग्रहालय,
3– रानी लक्ष्मीबाई महल झाँसी संग्रहालय,

अजितनाथ – इनकी मूर्तियां प्राप्त हैं :–

देवगढ़ मंदिर सं0 12 के गर्भगृह के डेवढ़ी के शिरदल के मध्य में कमलाकृति आसन पर द्वितीय तीर्थकर अजितनाथ का पद्मासन में और उनके दोनों ओर एक–एक तीर्थकर का कायोत्सर्गासन में अंकन है। उनके भी दोनों ओर तोरण के नीचे उड़ान भरते हुए पांच–पांच विधाधर युगल और उनके भी ऊपर नवग्रह चित्रित हुए हैं।[1]

प्रतिमा सं0 235 (दुधई) – शिर एवं भुजाओं से विहीन कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित अजितनाथ की यह कलात्मक प्रतिमा है। दोनों ओर ध्यानी मुद्रा में अंकित दो छोटी–छोटी जिन प्रतिमाओं के अलावा चंवरधारी तथा बांयी ओर आराधिकाओं की कलापूर्ण आकृतियों का प्रदर्शन है। पादपीठ पर केन्द्र में गज के अलावा आस पास सिंहों का प्रदर्शन है। दाहिनी ओर शासनदेवी और बांयी ओर यक्ष की अस्पष्ट आकृति का अंकन है।

पावागिरि के भोयरे मंदिर के गर्भगृह में 2फी0 ऊंची वेदी पर बांयी ओर अजितनाथ की 2फी ऊंची पद्मासन मूर्ति है। पादपीठ पर शिलालेख है।

सम्भव नाथ – जनपद में इनकी केवल एक ही मूर्ति उल्लेखनीय है :–

पावागिरि के भोयरे मंदिर के गर्भगृह में 2फी0 ऊंची वेदी पर 2फी ऊंची पद्मासन प्रतिमा है। पादपीठ पर अपभ्रंश भाषा का शिलालेख है।

अभिनन्दन नाथ – जनपद में इनकी निम्न मूर्तियां प्राप्त हैं–

देवगढ़ मंदिर सं0 9 के गर्भगृह में स्थित कायोत्सर्ग मुद्रा में अभिनन्दन नाथ की मूर्ति स्निग्ध पालिश, अंगप्रत्यंग के समानुपाती अंकन तथा भावाभिव्यक्ति आदि के कारण गुप्त काल की कला – परंपराओं की रक्षा करती हैं। इसका निर्माण काल ईसा की सातवीं–आठवीं शती प्रतीत होता हे। 2फी, 3इंच लंबी इस तीर्थकर मूर्ति के कन्धों पर जटायें लहरा रही हैं। इसके पादमूल में बन्दर का चिन्ह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

1– देवगढ़ की जैन कला ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 58,

इस मूर्ति की एक और विशेषता यह है कि इसके कंधों के पार्श्व में तीर्थंकर का अभिषेक करते हुए दो इन्द्र कलश लिये हुए उपस्थित हैं। दुर्भाग्य से उनके शिर खण्डित हो गये हैं। पादपीठ पर भी दोनों ओर चंवरधारी इन्द्रों की भावपूर्ण मुख मुद्रायें दर्शनीय हैं।[1]

ललितपुर क्षेत्रपाल मंदिर के अंदर मंदिर सं0 3 में भगवान अभिनन्दन नाथ की श्यामवर्ण पाषाण की चार फी0 उत्तुंग पद्मासन भव्य प्रतिमा संवत् 1243 की प्रतिष्ठित है जो अत्यंत मनोज्ञ है।

सुमतिनाथ – जनपद में इनकी केवल निम्न मूर्ति उल्लेखनीय है –

देवगढ़ मंदिर सं0 7 के पश्चिम में जैन चहरदीवारी में फणावलि से युक्त सुमतिनाथ की एक सुंदर मूर्ति जड़ी गई है। इसमें इनका चिन्ह चकक्षा सुस्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।[2]

पदम प्रभु – जनपद में इनकी निम्न उल्लेखनीय मूर्ति हैं।

प्रतिमा सं0 604 (दुधई) – पदम–प्रभु की कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्मित इस प्रतिमा का अधोभाग ही सुरक्षित है। इसमें भी तीर्थंकर का केवल बांया पैर ही शेष है। दूसरे पैर का चिन्ह मात्र शेष है। दोनों ओर अभंगी मुद्रा में प्रदर्शित एक–एक चंवरधारी की आकृतियां तथा दाहिनी ओर आराधक और बांयी ओर एक आराधिका की आकृति का अंकन है। बांयी ओर शासनदेवी एवं दांयी ओर शासनदेव का प्रदर्शन है।

सुपार्श्वनाथ – जनपद में इनकी निम्न उल्लेखनीय मूर्ति हैं।

देवगढ़ मंदिर सं 26 के प्रवेश द्वार के शिरदल पर पांच फणाबलि वाली कायोत्सर्ग सुपार्श्वनाथ की मूर्ति है।[3]

देवगढ़ मंदिर सं 27 के मण्डप के प्रवेश द्वार के शिरदल पर बांये सुपार्श्वनाथ का कायोत्सर्ग मुद्रा में अंकन हुआ है।

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 73,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 76,
3– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 27,

देवगढ़ मंदिर सं 28 के अंग शिखर के देवकुलिका में बांये सुपार्श्वनाथ की पुरानी मूर्ति है।

दुधई के मंदिरों मे दक्षिणी समूह के बड़ी बारात एवं छोटी बारात के भग्नावशेषों में ध्यानी मुद्रा में सुपार्श्वनाथ की सुन्दर प्रतिमा है पर उसका शीर्ष, भुजाओं एवं घुटने वाले भाग नष्ट हो चुके हैं। घुटनों के समीप दोनों ओर एक–एक सुन्दर गज प्रदर्शित है। दहिनी ओर चंवरधारी है जिसका दाहिना भाग नष्ट हो चुका है। चंवरधारी के ऊपर गज एवं उसके ऊपर ध्यानी मुद्रा में तल्लीन तीर्थक्र की एक छोटी प्रतिमा अंकित है। पादपीठ पर केन्द्र में स्वस्तिक का चिन्ह तथा आस–पास एक–एक सिंह का अंकन है। मूर्ति के दोनों ओर शासनदेव एवं शासनदेवी का भी प्रदर्शन है।

चन्द्रप्रभ – इनकी मूर्तियां निम्न हैं–

देवगढ़ स्तम्भ सं0 1 के ऊपर दक्षिणी देवकुलिका के नीचे चन्द्रप्रभ भागवान की मूर्ति है। अर्ध–चन्द्र लांछन बना है।

ललितपुर क्षेत्रपाल मंदिर के अंदर मंदिर सं0 3 के दालान के खम्भे में नीचे व ऊँचे खण्डों में भी चन्द्रप्रभ स्वामी की प्राचीन मूर्तियां हैं।[1]

शीतलनाथ – इनकी निम्न उल्लेखनीय प्रतिमा हैं –

दुधई के मंदिरों में दक्षिणी समूह के बड़ी बारात और छोटी बारात के ध्वंसावशेषों में शीतलनाथ की एक प्रतिमा है जो नष्टप्राय अवस्था में है।[2]

विमलनाथ – इनकी एक ही प्रतिमा प्राप्त है। –

प्रतिमा सं0 647 (दुधई) 5 कायोत्सर्ग मुद्रा में निर्मित विमलनाथ की इस प्रतिमा का केवल अधोभाग ही सुरक्षित है। उसमें भी एक पैर नष्ट है। दोनों ओर कटिहस्त मुद्रा में एक–एक चंवरधारी की आकृतियों का प्रदर्शन है पर दाहिनी ओर चंवरधारी का शिर एवं चंवर वाला भाग नष्ट हो चुका है। पादपीठ पर शूकर चिन्ह तथा आस पास सिंहों का प्रदर्शन है। दोनों ओर शासनदेव एवं शासनदेवी के रूप में क्रमशः चतुरानन और कालिका विराजमान हैं।[3]

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 33,
2– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 70,
3– रानी लक्ष्मीबाई महल संग्रहालय,

शान्तिनाथ – जनपद में इनकी निम्नाकिंत प्रतिमायें हैं। –

देवगढ़ सं0 12 के गर्भगृह में शान्तिनाथ की विशाल मूर्ति है। इसकी कुल ऊंचाई 12फी0,4इंच है। काल के कराल थपेड़ों से यह महत्वपूर्ण मूर्ति बहुत कुछ खण्डित हो गयी है परन्तु भक्तों ने उसकी यथा–संभव जुड़ाई करा दी है। इस 16 वें तीर्थकर शांन्तिनाथ की मूर्ति मानकर इस मंदिर का नाम ही शान्तिनाथ मंदिर प्रचलित हो गया है जब कि शान्तिनाथ का चिन्ह हिरन या यक्ष–यक्षी आदि कोई भी यहां दृष्टव्य नहीं होते।[1]

इस विलाकार मूर्ति के दोनों ओर प्रवेश द्वार के भीतर दोनों ओर तथा द्वार के बाहर ऊपरी भाग में दांये अम्बिका यक्षी की मूर्तियों और द्वार के नीचे बांये पार्श्व यक्ष की मूर्तियों के अंकन होने से यह संभावना अधिक है कि प्रस्तुत मूर्ति 22 वे तीर्थकर नेमिनाथ की होगी । इसकी पुष्टि डा0 भाग चन्द्र जैन और नीरज जैन ने की है।

देवगढ़ मंदिर सं0 13 के मण्डप में विघमान 5फी0, 10इंच के शिलाफलक (बांये से दांये बीसवा) पर उत्कीर्ण शान्तिनाथ की 4फी,7इंच ऊंची कायोत्सर्ग मूर्ति दर्शनीय है। इस मूर्ति की प्रथम विशेषता यह है कि उसके आसन में बांये सिंह और दांये हिरन का अंकन है जब कि अन्यत्र दोनों ओर सिंह का ही अंकन मिलता है। जटाआं की विशालता और विचित्रता इस मूर्ति की दूसरी विशेषता है। जटाओं को पीछे की ओर संभाल कर उनकी पांच–पांच लटें दोनों कंधों पर झुलायी गयी हैं, कुछ लटों की ऊपर दोनों ओर लटका दी गयी हैं जो इतनी लंबी हैं कि पिण्डलियों के भी नीचे तक आ पहुंची हैं।[2]

देवगढ़ मंदिर सं0 31 के प्रवेश द्वार के मध्य में तीर्थकर शान्तिनाथ का अंकन है। उनके दोनों ओर देव–देवियों तथा नाग और नागी का अंकन है।

बानपुर मंदिर सं0 4 (शान्तिनाथ जिनालय) में एक ही देशी प्रस्तर खण्ड से निर्मित तीर्थकर शान्तिनाथ की 18फी0 ऊंची विशाल कायोत्सर्गासन मूर्ति स्थापित है। यह सौम्य मुद्रा, अजानुबाहु और आत्मोन्मुख मूर्ति है।

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 70–71,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भाग चन्द्र जैन, पृ0 71,

सेरोनजी में शान्तिनाथ के भोयरेनुमा मंदिर में 18फी0, ऊंची मनोरम भव्य भगवान शान्तिनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्ति सुशोभित है।

मदनपुर के शान्तिनाथ मंदिर के गर्भगृह के मध्य में 10फी0 ऊंची शान्तिनाथ की खण्डित प्रतिमा है। यह मूर्ति कायोत्सर्ग ध्यानस्थ मुद्रा में है। अष्टप्रतिहार भी अंकित हैं।

मदनपुर के चम्पोमढ़ के मध्य के मढ़ में शान्तिनाथ की 7फी0, ऊंची कायोत्सर्गासन प्रतिमा है। अष्ट प्रतिहार भी निर्मित हैं।[1]

मदनपुर में चम्पोमढ़ के दक्षिण की ओर अर्धभग्न मढ़ में शान्तिनाथ की 5फी0, 6इंच, ऊंची शान्तिनाथ की प्रतिमा है।

दुधई के आदिनाथ मंदिर के सम्मुख ही शान्तिनाथ के मंदिर के गभगृह के अन्दर लगभग 12फी. ऊंची विशालकाय शान्तिनाथ की आकर्षक, भव्य तथा सजीव प्रतिमा है। यह प्रतिमा ध्यानी मुद्रा में है। इसके भुजाओं वाला भाग नष्ट हो चुका है। पर पादपीठ पर केन्द्र में कीर्तिमुख तथा आस–पास एक–एक हिरण और एक–एक आराधक एवं एक–एक विशालकाय भार्दूल की कलापूर्ण आकृतियों का अंकन है।[2]

प्रतिमा सं0 220 (दुधई) – कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रदर्शित शान्तिनाथ की यह भव्य प्रतिमा भुजाविहीन है। पृष्ठ भाग में कमलदलों से युक्त प्रभामण्डल के आस पास पटधारी एवं काल्यधारी सुन्दर आकृतियां प्रदर्शित हैं। पैरों के समीप दोनों ओर अभंगी मुद्रा में प्रदर्शित एक–एक चंवरधारी तथा एक–एक आराधक सुन्दर अंकन है। पादपीठ पर केन्द्र में हिरण अंकित है और आस–पास कलापूर्ण सिंहों का प्रदर्शन है। बांयी ओर यक्षिणी एवं दायीं ओर यक्ष विराजे हैं।

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, कला तीर्थ मदनपुर ले0 विमल जैन, पृ0 80,
2–चांदपुर–दुधई की चंदेली कला और संस्कृति शोध प्रबंध महेन्द्र कुमार वर्मा, पृ0 324,

कुन्थनाथ – इनकी निम्न मूर्तियां प्राप्त हैं। –

चांदपुर से लाकर रानी महल संग्रहालय,झांसी में संग्रहीत कुन्थनाथ की मूर्ति दीर्घकाय है। इस मूर्ति की ऊंचाई 8फी0 है। यह मूर्ति दो भागों में टूटी हुयी है। कुन्थनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में सिंहासन पर खड़े हैं। पैरों के दोनों ओर चंवरधारी अंकित हे। लटकते हुए पर्दे पर तीर्थकर का चिन्ह अर्द्ध अंकित है। सिंहासन के नीचे विपरीत दिशाओं की ओर देखते हुए दो सिंह विराजमान हैं। निकट ही उपासकगण एवं यक्षों का चित्रण बहुत ही सजीव ढंग से किया गया है।[1]

मदनपुर में शान्तिनाथ मंदिर की मुख्य प्रतिमा के दांये भगवान कुन्थनाथ की 7फी0, ऊंची मूर्ति है।

मदनपुर के चम्पोमढ़ के दक्षिण में अर्धभग्न मढ़ के मध्य में कुन्थनाथ की 10फी0, ऊंची कायोत्सर्ग प्रतिमा हैं।

मदनपुर में मोदीमढ़ के अन्दर मुख्य मूर्ति के दांये कुन्थनाथ की 6फी0, ऊंची प्रतिमा है।

बानपुर मंदिर सं0 4 (शान्तिनाथ के मंदिर) में मुख्य मूर्ति के बांयी ओर कुन्थनाथ की 7फी0, ऊंची कायोत्सर्ग प्रतिमा स्थित है। इस प्रतिमा का केश विन्यास वक्ष और बाहुओं के नीचे तक विखरा हुआ है।

सेरानजी में शान्तिनाथ के भोयरेनुमा मंदिर में शान्तिनथ की प्रतिमा के बगल में कुन्थनाथ की कायोत्सर्गासन प्रतिमा अंकित हैं।[2]

अरनाथ – इनकी निम्न मूर्तियां प्राप्त हैं। –

मदनपुर–शान्तिनाथ मंदिर के अन्दर मुख्य मूर्ति के बांयें 7फी0, ऊंची आरनाथ की कायोत्सर्ग प्रतिमा है।[3]

मदनपुर में चम्पोमढ़ के दक्षिण की ओर अर्धभग्न मढ़ के अन्दर बांयी ओर अरनाथ की 7फी0, ऊंची कायोत्सर्ग प्रतिमा है।

1–बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, झाँसी संग्रहालय में जैन मूर्तियाँ लाल मोहन वहल, पृ0 49,

2– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, सेरोनजी ले0 लाल चन्द्र जैन राकेश, पृ0 38,

3– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, कला तीर्थ मदनपुर ले0 विमल जैन, पृ0 80,

मदनपुर में मोदीमढ़ के गर्भगृह में मुख्य मूर्ति के बांये अरनाथ की 6फी0, ऊंची प्रतिमा है।

बानपुर के मंदिर सं0 4 (शान्तिनाथ जिनालय) में मुख्य प्रतिमा के दांयी ओर तीर्थकर अरनाथ की 7फी0, ऊंची मूर्ति स्थित है। यह कायोत्सर्ग मुद्रा में है।

सेरोनजी के शान्तिनाथ मंदिर में मुख्य प्रतिमा के बगल में अरनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्ति स्थित हैं।

मल्लिनाथ -- इनकी निम्न उल्लेखनीय मूर्ति है। –

पावागिरि के भोयरे मंदिर के गर्भगृह में 2फी0, ऊंची वेदी पर बांयी ओर मल्लिनाथ की 2फी0, ऊंची पद्मासन प्रतिमा हे। इस मूर्ति के केशपुंज, लम्बा कर्ण और मुख पर व्याप्त सौम्यता अवर्णनीय है।[1]

मुनि सुवृतनाथ – इनकी निम्नांकित उल्लेखनीय प्रतिमा है। –

दुधई से लाकर रानी महल संग्रहालय, झांसी में मुनि सुवृतनाथ की एक श्रेष्ठ प्रतिमा संग्रहीत है, जिसमें तीर्थकर कायोत्सर्ग मुद्रा में सिंहासन पर खड़े हैं। दांयी तथा बांयी ओर चंवर लिये एक–एक यक्ष खड़ा है। शिर के पीछे प्रभामण्डल, ऊपर त्रिछत्रावली तथा उड़ते हुए गन्धर्व का अंकन बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है। पैरों के नीचे झूलते पर्दे पर तीर्थकर का चिन्ह कूर्म अंकित है। नीचे पदपीठ पर यक्ष व यक्षी तथा दो सिंह विपरीत दिशाओं की ओर देखते हुए दर्शाये गये हैं।[2]

नमिनाथ – इनकी एक ही प्रतिमा जनपद में प्राप्त है।

देवगढ़ मंदिर सं0 28 में नमिनाथ की 8फी0, 3इंच ऊंची कायोत्सर्ग मूर्ति है। यह इस मंदिर के मूल नायक हैं। इनके पैरों से कमर तक की ऊंचाई 5फी0 1इंच, पैरों से कन्धों तक की ऊंचाई 6फी0 10इंच तथा एक कन्धे से दूसरे कन्धे तक की चौड़ाई 2फी0, 10इंच है। आसन में कमल का चिन्ह स्पष्ट है। इसके परिकर और अलंकरण का संक्षेप, प्रतिहारियों (भामण्डल के अतिरिक्त) की अनुपस्थिति और कलात्मकता आदि के साथ हाथों और पैरों की कपिलता इसे आठवीं शती की कृति सिद्ध करते हैं।

1–बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक,पावागिरि की प्रचीन जैन प्रतिमायें,ले0 कमलेश कुमार, पृ053,
2–बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक,झाँसी संग्रहालय में जैन मूर्तियाँ,ले0 लाल मोहन बहल, पृ050,

अरिष्टनेमि या नेमिनाथ – इनकी निम्न प्रतिमायें प्राप्त हैं। –

देवगढ़ मंदिर सं0 12 के महामण्डप में दांये से बांयी ओर तीसरी प्रतिमा नेमिनाथ की है। इसके ऊपर पड़ावलि है। इनका लक्षण पादपीठ पर अंकित है।[1]

देवगढ़ मंदिर सं0 13 गर्भगृह में तीसरी वेदी (बांये से दांये) पर स्थित 5फी0,3इंचX1फी0,11इंच के शिलाफलक नेमिनाथ की मूर्ति अंकित है। इनके मस्तक पर बीसों लटों को एक बड़े ही संयोजित और पेचीदा ढंग से गूंथा गया है। दो–दो लटें कन्धों पर और बीसों लटें पीछे दोनों ओर बिखेर दी हैं।

देवगढ़ मंदिर सं0 15 के गर्भगृह में 5फी0,1इंचX2फी0,11इंच के शिलाफलक पर 2फी0, 10इंच ऊंची और 1फी0, 7इंच चौड़ी नेमिनाथ की पद्मासन मूर्ति है। इस मूर्ति की सज्जा परिकर और इन्द्र आदि बोलते से प्रतीत होते हैं। इसके प्रभामण्डल के चारों ओर अग्निशिखा का अंकन है। यह प्रतिमा गुप्तकाल की कलागत परंपराओं पर आश्रित है।

देवगढ़ मंदिर सं0 27 की प्रवेश द्वार के शिरदल पर नेमिनाथ पद्मासन मुद्रा में अंकित हैं।

देवगढ़ मंदिर सं0 31 के गर्भगृह में वेदिका का शंख चिन्ह से अंकित शिलापट्ट पर तीर्थकर नेमिनाथ की विशालकार पद्मासन मूर्ति उत्कीर्ण है।[2]

रानी महल संग्रहालय झांसी में दुधई और चांदपुर से लाकर संग्रहीत मूर्तियों में नेमिनाथ की अनेक खण्डित मूर्तियां है। एक मूर्ति में नेमिनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में सिंहासन पर दिखायें गये हैं। पैरों के दोनों और एक–एक यक्ष खड़ा है तथा नीचे लटकते पर्दे पर शंख चिन्ह अंकित है। वक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित हैं।

पावागिरि के भोयरे मंदिर के गर्भगृह में 2फी0, ऊंची वेदी पर बांयी ओर मध्य में नेमिनाथ की 3फी, ऊंची प्रतिमा है।

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ प्रथम भाग, संपादन बलभद्र जैन पृ0 191,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 29,

पार्श्वनाथ – जनपद में इनकी निम्नलिखित प्रतिमायें प्राप्त हैं। –

देवगढ़ मंदिर सं0 6 में पार्श्वनाथ की मूर्ति है जिस पर सर्प का आलेखन चिन्ह, आसन, तकिया या मस्तकाच्छादन के रूप में न होकर पादपीठ के ऊपर मूर्ति के पैरों के दोनों ओर दो स्वतंत्र सर्पो के रूप में हुआ है। वहां सर्प अपनी विकराल कुण्डली लगाये हुए अलिखित है।[1]

देवगढ़ मंदिर सं0 27 के प्रवेश द्वार के शिरदल पर नेमिनाथ की मूर्ति के बगल में दांयें एक पार्श्वनाथ की मूर्ति है।

देवगढ़ मंदिर सं0 28 के अंगशिखर में निर्मित देवकुलिका में दांयें सप्तफणावलि सहित पार्श्वनाथ की एक मूर्ति है।

देवगढ़ के ही स्तम्भ सं0 4 के गर्भगृह में वेदी पर कायोत्सर्गासन पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थित है।

देवगढ़ के ही स्तम्भ सं0 5 पर पूर्व में सप्तफणावलि सहित पार्श्वनाथ की मूर्ति है।

पावागिरि के भोयरे मंदिर के गर्भगृह में वेदी पर सामने की ओर पार्श्वनाथ की 3फी0 ऊंची पार्श्वनाथ की पद्मासन मूर्ति है।[2]

ललितपुर के क्षेत्रपाल मंदिर में मंदिर सं0 7 में लगभग 7फी, ऊंची भागवान पार्श्वनाथ की कायोत्सर्गासन मूर्ति चट्टान में उत्कीर्ण है जिसके कारण से लेकर मस्तक के ऊपर सात फणों से युक्त सर्प चिन्ह बना हुआ है। इसकी पालिश चमकदार है तथा प्रतिमा उत्यन्त मनोज्ञ एवं आकर्षक है। 7 यहां प्राचीन भोयरे में चट्टान में उत्कीर्ण पार्श्वनाथ की 6फी, ऊंची एक कायोत्सर्ग मूर्ति है। 8

ललितपुर क्षेत्रपाल मंदिर के अन्दर मंदिर सं0 9 में जिन प्रतिमा के पास में ही एक वेदिका में भागवान पार्श्वनाथ की मूर्ति विराजमान है।

बानपुर जैन अतिशय क्षेत्र में एक शिलाखण्ड के मध्य में भागवान पार्श्वनाथ की फणावलियुक्त पद्मासन प्रतिमा है।

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 76,

2–बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक,पावागिरि की प्रचीन जैन प्रतिमायें,ले0 कमलेश कुमार, पृ053,

प्रतिमा सं0 244 (चांदपुर) – 4फी. 8इंच ऊंची और 1फी. 9इंच चौड़ी पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा कला की दृष्टि से बड़ी ही अनूठी एवं सजीव है। केन्द्र में कायोत्सर्ग मुद्रा में पार्श्वनाथ शोभायमान हैं जिनके मुखमण्डल पर फेली हुयी स्थित–मुस्कराहट बड़ी ही हृदयाकर्षक है। सर्प के फण भी उनके प्रभामण्डल के रूप में शोभायमान हैं। उनके सम्पूर्ण शरीर के दोनों ओर सर्प की सजीव कुण्डलाकृति बनी हुयी है। इस मुख्य प्रतिमा के दाहिनी ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में 11 तीर्थकरों की छोटी प्रतिमायें तथा बांयी ओर 12 तीर्थकरों की कायोत्सर्ग मुद्रा में छोटी–छोटी प्रतिमायें अंकित हैं। केन्द्र में त्रिछत्र है, जिस पर ध्वस्त छोटी मूर्तियां हैं। मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर अभंगी मुद्रा में एक–एक चंवरधारी प्रदर्शित है। भद्रासन में केन्द्र में दो सिंह निर्मित हैं।, बांयी ओर पद्मावली एवं दाहिनी ओर पार्श्व विराजमान हैं।

प्रतिमा सं0 232 (चांदपुर) – शिर एवं भुजाओं से विहीन वह प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा में है। पार्श्वनाथ के दोनों ओर एक–एक चंवरधारी एवं एक–एक आराधक प्रदर्शित हैं। चंवरधारी पुरूषों का एक–एक हाथा कटिहस्तु मुद्रा में है। बांयी ओर के चंवरधारी पुरूष का शिर एवं आराधक का शिर ध्वस्त है। बांयी ओर का आराधक की ध्वंसावस्था में है। चरणों के नीचे दो सिंह हैं। दाहिनी ओर शासनदेव एवं बांयी ओर शासनदेवी शोभायमान हैं।

प्रतिमा सं0 272 (चांदपुर) – पंच तीर्थकर के रूप में पार्श्वनाथ की यह प्रतिमा की जिन प्रतिमाओं में श्रेष्ठ है। सर्प के फण का ऊपरी भाग, तीर्थकर का मुख वाला भाग एवं उनकी बांयी भुजा के साथ–साथ बांया वरण नष्ट हो चुका है। मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर ध्यानी मुद्रा में प्रदर्शित तीर्थकर की एक–एक प्रतिमा के अलावा कायोत्सर्ग मुद्रा में प्रभामण्डल से युक्त एक–एक अन्य तीर्थकर की प्रतिमायें इस मुख्य प्रतिमा के आकर्षण को और अधिक बढ़ाने में सक्षम हैं। दोनों तीर्थकरों के बीच में एक–एक ध्वस्त आकृति दोनों ओर अंकित है। इनमें किन्हीं के कुछ भाग नष्ट हो चुके हैं। पैरों के दोनों ओर कटिहस्त मुद्रा में दो प्रतिमायें हैं। जो संभवतः परिचारक अथवा चंवरधारी रहे होगे। इन्हीं के समीप दाहिनी ओर एक आराधक एवं बांयी ओर एक आराधिका अंजलि मुद्रा में स्थित है। बांयी ओर की

आराधिका का मुख वाला भाग नष्ट हो चुका है। भद्रासन पर दो सिंह प्रदर्शित हैं। उसके दाहिनी ओर शासनदेव एवं बांयी ओर शासनदेवी सुशोभित हैं।

प्रतिमा सं0 166 (चांदपुर) – पार्श्वनाथ की इस प्रतिमा में अधोभाग सुरक्षित है। सर्पकुण्डली सुन्दर एवं सजीव है। दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में एक–एक तीर्थकर के अलावा एक–एक चंवरधारी निर्मित है। इसके दाहिनी ओर के आराधक का अधिकांशतः भाग व बांयी ओर के आराधक का शीर्ष भाग ध्वस्त हो चुका है। पादपीठ पर दो सिंह उत्कीर्ण हैं तथा दाहिनी ओर शासनदेव व बांयी ओर शासनदेवी विराजमान हैं। आदि की आकृतियों के अंकन से और भी आधिक दर्शनीय हो गयी है।[1]

दुधई के शान्तिनाथ मंदिर के गर्भगृह में शान्तिनाथ की प्रतिमा के दोनों ओर लगभग 8–8 फी. ऊंचाई में विशालकाय पार्श्वनाथ की प्रतिमायें है। ये प्रतिमायें चंवरधारियों, कटिहस्त मुद्रा में युक्त पुरूषाकृतियों, त्रिछत्र, माल्यधारियों, किन्नरों, गजादि एवं सवर्णयुक्त सर्प के अलंकरण से और भी अधिक आकर्षित हो गयी है।

वर्धमान महावीर – जनपद में इनकी निम्न प्रतिमायें उल्लेखनीय हैं।–

वर्धमान महावीर सेरोनजी में एक ऊंचे टीले (जो कि एक विशाल मंदिर का खण्डहर है) के नालीदार विशाल वेदी पर भगवान महावीर की 9फी. ऊंची शिरविहीन पद्मासन प्रतिमा है जिसे लोग बैठादेव मान कर पूजते हैं।[2]

सेरोनजी के शान्तिनाथ मंदिर के बाहर धर्मशाला के एक कमरे में एक चौबीसी है। यह 6फी. ऊंची है। इसी पर मल नायक महावीर की मूर्ति है।

दुधई में महावीर की खण्डित अवस्था में एक मूर्ति प्राप्त है जिसमें तीर्थकर महावीर पालथी मार कर सिंहासन पर ध्यान मुद्रा में बैठे हुए दिखाये गये हैं। इनके बक्ष पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित है। दांयी तथा बांयी ओर चंवर लिए एक–एक पक्ष खड़ा है। पैरों के नीचे तीर्थकर का चिन्ह सिंह अंकित है तथा दो सिंह विपरीत दिशाओं की तरफ देखते हुए विराजमान है। शिर के पीछे अंहाकृत प्रभामण्डल है।

1– रानी लक्ष्मी बाई महल संग्रहालय, झाँसी,

2– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, सेरोनजी ले0 लाल चन्द्र जैन, पृ 39,

मदनपुर में चम्पोमढ़ के मध्य के मंदिर के गर्भगृह में मध्य मूर्ति के दोनों तरफ सात–सात फी. ऊंची भागवान महावीर की प्रतिमायें हैं। इनके चरणों के समीप 2,1/2–2, 1/2फी. के 6 इन्द्र और चंवरवाहक हैं। मूर्तियों के हाथ खण्डित हैं।

जनपद के तीर्थकर मूर्तियों में वैविध्य दर्शनीय है। यहां द्विमूर्तिकायें, त्रिमूर्तिकायें, सर्वतोभद्रिकायें, चौबीसी, सहस्त्रकूट प्रतिमायें उपलब्ध हैं।

द्विमूर्तिकाये – कई स्थानों पर एक ही शिलापट पर दो तीर्थकर मूर्तियों का निमार्ण हुआ है। देवगढ़ में ऐसी द्विमूर्तिकायें मंदिर सं0 1, 2, 13, 17, 26, जैन चहारदीवारी, साहू जैन संग्रहालय तथा मंदिर सं0 12 के अंगशिखर में जड़ी हुयी है।[1]

त्रिमूर्तिकायें – इसमें एक ही शिलापट्ट पर तीन तीर्थकर मूर्तियां होती हैं। देवगढ़ में मंदिर सं0 1, 2, 12 को महामण्डप, 29 को अंगशिखर में दुधई में आदिनाथ के मंदिर और शान्तिनाथ के मंदिर में पावागिरि के भोयरे मंदिर के गर्भगृह में बानपुर में मंदिर सं0 1 और 4 में , तथा मदनपुर में शान्तिनाथ मंदिर, चम्पोमढ़ के दक्षिण में अर्धभग्नावशेष मढ़ एवं मोदीमढ़ में त्रिमूर्तिकायें हैं।[2]

सर्वतोभद्रिकायें – इसके उदाहरण देवगढ़ 1 में जैन चाहरदीवारी तथा स्तम्भों और खण्डित तीर्थो पर प्राप्त होते हैं।

चौबीसी – इसके उदाहरण देवगढ़ में मंदिर सं0 4, 12, 25, 26, 29, एवं जैन चाहरदीवारी और जैन धर्मशाला, साहू जैन संग्रहालय में चांदपुर में मंदिर के परकोटे में सेरोनजी के मंदिर सं0 2 में, और दुधई से लाकर रानी लक्ष्मी बाई महल झाँसी संग्रहालय में संग्रहीत प्रतिमा सं0 157, 244 और 247 में प्राप्त होते हैं।[3]

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 77,
2– बुन्देलखण्ड की क्षेत्र विशेषांक, जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 68–69,
3– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 77,

सहसकूट – इसके उदाहरण देवगढ़ के मंदिर सं0 5 सहस्त्रकूट चैत्यालय में बानपुर में मंदिर सं0 5 सहस्त्रकूट चैत्यालय में और सेरोनजी के शान्तिनाथ मंदिर के प्रवेश द्वार के दोनों ओर एक ही पत्थर पर सहस्त्रकूट चैत्यालय के दृश्य देखने को मिलते हैं।

जटाओं के विविध रूप भी तीर्थकर मूर्तियों में देखने को मिलते हैं। कहीं पांच लटें कन्धों पर लहरा रही हैं तो कहीं कन्धे पर आती हुयी दो लटें लअकते लटकते बीसियों लटों में बदल गयी हैं। कहीं शिर पर उठी हुयी लटों की चोटी बंधी दिखायी पड़ती है तो कहां ये लटें पैरों पर पहुंच रही हैं। ऐसा लगता है कि यहां आकर कला की धारा सारे विधि–विधानों और बन्धनों को तोड़ कर उन्मुक्त भाव से प्रवाहित हो उठी हैं। पड़ावलि वाली प्रतिमायें प्रायः पार्श्वनाथ की होती हैं किन्तु कुछ ऐसी फणी वाली प्रतिमायें भी हैं। जो पार्श्वनाथ के अतिरिक्त अन्य तीर्थकरों की भी हैं। मंदिर सं0 12 के महामण्डप में (दांयें से बांयी ओर तीसरी) नेमिनाथ प्रतिमा स्थापित है के प्रवेश द्वार के दांयी ओर बाहर ऊपर दूसरे स्थान पर सुमतिनाथ प्रतिमा के ऊपर फणावलि है, जब कि इन तीर्थकरों का लांछन पादपीठ पर स्पष्ट अंकित है। पंचफणावलि वाली सुपार्श्वनाथ और सप्तफणावलि युक्त पार्श्वनाथ की अनेक मूर्तियां यहां पर हैं। सर्पकुण्डली के आसन पर बैठी पार्श्वनाथ की प्रतिमायें कई हैं। सप्तकुण्डली आसन बनाती हुयी और पीठ के पीछे होती हुयी ऊपर गर्दन तक गयी है। शिर पर फणावलि का छत्र तना हुआ है।[1]

देव–देवियों की प्रतिमायें – जैन देव शास्त्र में मौलिक और सर्वोपरि पूज्यता पंच परमेष्ठियों[2] को ही प्राप्त है। प्रारंभ में तीर्थकरों (अरहन्तपरमेष्ठी) की ही मूर्तियां बनती थीं, बाद में हिन्दू देवताओं और कदाचित् बोधिसत्वों की मूर्तियों के अनुकरण या प्रतिस्पर्द्धा के कारण जैन देव एवं देवियों की भी मूर्तियां बनने लगीं। शास्त्रीय दृष्टि से चूंकि मोक्ष प्राप्ति मानव जीवन से ही संभव है, देव जन्म से नहीं अतः मानव को देवों से अधिक महत्व मिलता है।

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, ले0 बलभद्र जैन, पृ0 191,
2– अरिहंत, सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु,

पंचपरमेष्ठी देव नहीं मान्य ही होते हैं। अतः देव-देवियों की मूर्तियां बनने तो अवश्य लगीं परन्तु तीर्थकरों के सामान न तो उनकी पूजा ही होती थी और न मंदिर में उन्हें मुख्य स्थान प्राप्त होता था। उन्हें तीर्थकरों के चंवरधारी, आराधक एवं सेंवक आदि के रूप में स्थान दिया गया तथा मंदिरों के प्रवेश द्वारों आदि विभिन्न स्थानों पर उन्हें अंकित किया जाने लगा। भट्टारकों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुयी आडम्बरप्रियता और भौतिकता के प्रति आकर्षण के फलस्वरूप देव-देवियों में यक्ष (तीर्थकर के शासनदेव) तथा यक्षियों (शासन देवियों) का विशेष महत्व हो गया। भट्टारकों में से अधिकांश मंत्र-तंत्रादि पर विश्वास रखते थे जिनकी सिद्धि के लिये विभिन्न देवियों की उपासना अनिवार्य बतायी गयी है फलतः देवियों का महत्व बढ़ता ही गया। उन्हें तीर्थकरों के पादमूल में स्थान मिल गया। परन्तु देवियों की शक्ति पर विश्वास और कदाचित् सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक कमियों तथा दबाबों के फलस्वरूप उनका महत्व इतना बढ़ा कि उनकी तीर्थकर की मूर्ति से बीस गुनी तक बड़ी बनने लगी।[1]

जैन देव-देवियों को निम्न पांच वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। 1-यक्ष (शसन देव), 2-यक्षी(शासन देवी), 3-विघा देवी, 4-प्रतीकात्मक देव-देवियां, 5-अन्य देव-देवियां।

1-यक्ष (शसन देव) – यहां मुख्य रूप से तीन यक्षों की उल्लेखनीय मूर्तियां प्राप्त होयी हैं, गोमुख, पार्श्व और धरणेन्द्र।

गोमुख – ये प्रथम तीर्थकर आदिनाथ के यक्ष हैं। इनका मुख मनुष्य के समान न होकर बैल के समान हैं। इनकी कुछ मूर्तियां देवगढ़ में प्राप्त हुयी हैं।[2] जिनमें से मंदिर सं0 3, 12, 19, 22, उल्लेखनीय हैं। मंदिर सं0 3 की गोमुख यक्ष की मूर्ति तीर्थकर आदिनाथ की मूर्ति के साथ उत्कीर्ण हैं। गोमुख मूर्ति की आनुपातिक लघुता इस सम्पूर्ण मूर्तिफलक को गुप्तोत्तर युग का सिद्ध करती है। मंदिर सं0 12 की गोमुख मूर्ति 1फी, 1इंच और 9इंच चौड़ी है।

1- देवगढ़ की जैन कला ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 78,
2- देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 81,

उसका मुख बैल के समान है और शेष शरीर मनुष्य के समान है। वह अपने चार हाथों में माला और कलश आदि लिये हैं। पायल, कबिंध, हार, शीशमुकुट आदि आभूषण तथा यज्ञोपवीत धारण किये हुये हैं।

दुधई में आदिनाथ मंदिर के गर्भगृह के मुख्य द्वार के केन्द्र में आदिनाथ के पादपीठ पर गोमुख का अंकन है।

पार्श्व – ये 22वें तीर्थकर नेमिनाथ के यक्ष हैं। इनकी कुछ मूर्तियां देवगढ़ 5 में मंदिर सं0 12, 13, 15, और 23, में उत्कीर्ण हैं। जैन मूर्ति शास्त्र ग्रंथों में इनका नामांतर गोमेध भी प्राप्त होता है।[1]

धरणेन्द्र – ये तेइसवे तीर्थकर पार्श्वनाथ के यक्ष हैं। इनकी मूर्तियां देवगढ़ 7 में मंदिर सं0 24, 28, और अनेक स्तम्भों (स्तम्भ सं0 2, 19) पर स्वतंत्र रूप से निर्मित हुयी है। अन्य स्थानों में इनकी मूर्तियां पद्मसवती के साथ अंकित हैं। कभी–कभी इनके मस्तक पर फणावलि भी अंकित की गयी है। जैसे जैन चहारदीवारी मंदिर सं0 24 में जड़ी मूर्तियों में। जैन मूर्ति शास्त्र ग्रंथों में इनका नामांतर पार्श्व भी प्राप्त होता है।[2]

2– यक्षी (शासनदेवी) – यक्षी की मूर्तियां तीर्थकर मूर्तियों के साथ कम और स्वतंत्र रूप से अधिक निर्मित हुयी है। कुछ को प्रवेश द्वारों पर और मानस्तम्भों की देवकुलिकाओं में भी उत्कीर्ण किया गया है। सभी एक ही युग की देन नहीं हैं तथा सभी ने अपने–अपने वर्ण में भी लाक्षणिक समानता नहीं है। प्रायः सभी बहुमूल्य बस्त्रों और रत्नाभूषणों से अलंकृत हैं। जनपद ललितपुर में प्राप्त कुछ उल्लेखनीय यक्षी मूर्तियों का विवरण निम्न है।

चक्रेश्वरी – इनकी प्रतिमायें कई स्थानों पर प्राप्त हुयी है। देवगढ़ में इनकी प्रतिमायें निम्न है।

देवगढ़ के मंदिर सं0 2 के सामने पूर्व में ध्वंसावशेषों में 20 भुजी चक्रेश्वरी की शिरविहीन प्रतिमा है।

1– प्रतिष्ठा सारोद्वार, ले0 पं0 आशाघर, पृ0 150,
2– अपराजित पृच्छा, ले0 आचार्य भुवनदेव, 221/40–41,

देवगढ़ के 12 वें मंदिर के अंतराल की बांयी मढ़िया से लाकर साहू जैन संग्रहालय में स्थापित की गयी इनकी मूर्ति अलौकिक है। 4फी, ऊंचे एवं 2फी, 6इंच चौड़े शिलाफलक पर उत्कीर्ण 2फी, 11इंच ऊंची और 1फी, 11इंच चौड़ी यह गरूणावाहिनी देवी अपने एक हाथ में अक्षमाला, एक में शंख और साथ में चक् धारण किये हुए हैं। उनके शेष 11 हाथ खण्डित हो गए हैं। देवी के परिकर में दांये लक्ष्मी ओर बांये सरस्वती तथा मालाधारी विघाधर युगल उल्लेखनीय हैं। संगीत मण्डली द्वारा पूजित होते हुए तीन तीर्थकर इस यक्षी के मस्तक पर विराजमान हैं। चक्रेश्वरी स्वयं भक्ति की अवतार सी प्रतीत होती हैं।

देवगढ़ के साहू जैन संग्रहालय में ही स्थित एक अन्य 4फी, 4इंच ऊंचे और 2फी, 7इंच चौड़े शिलाफलक पर उत्कीर्ण इस गरूणवाहिनी यक्षी के सभी बीस हाथा सुरक्षित हैं, जिनमें चक्र, खड्ग, मुदगर, त्रिशूल, धनुष आदि विविध आयुध दिखाये गये हैं। परिकर में दोनों ओर एक–एक चंवरधारी परिचारिका अंकित हैं। मस्तक पर पद्मासन तीर्थकर को मालाधारी विघाधरों द्वारा अर्चित दिखाया गया है। ऊपर के दोंनों कोणों पर एक–एक कायोत्सर्गासन तीर्थक्र मूर्ति अलिखित है।

देवगढ़ के मंदिर सं0 19 में स्थित 10 भुजी चक्रेश्वरी देवी के सभी हाथ खण्डित हो चुके हैं। उनके वाहन गरूड़ की विशेष्ट रूपाकृति है। परिकर में दोनों ओर एक–एक चंवरधरिणी परिचारिका अंकित हैं।

देवगढ़ के स्तम्भ सं0 2 और 11 पर पूर्वी ओर 10 भुजी चक्रेश्वरी का मनोरम अंकन है।

दुधई के आदिनाथ मंदिर के गर्भगृह के मुख्य द्वार के केन्द्र में आदिनाथ के पादपीठ पर चक्रेश्वरी का अंकन है।

सेरोनजी में शान्तिनाथ के मंदिर के दांये–बांयें स्थित मंदिरों के बाहर धर्मशाला के प्रांगण में चक्रेश्वरी की एक मूर्ति है।

अम्बिका– अम्बिका 22वे तीर्थकर नेमिनाथ की शासनदेवी मानी जाती है। कदाचित इन्हें देवगढ की अधिष्ठात्री देवी माना जाता है। तभी तो इनकी मूर्तियों की संख्या यहॉ 100 से अधिक है।

देवगढ के मंदिर सं 12 के गर्भगह मे प्रवेश द्वार के दायें 7फीट और 3फीट 2इंच चौडे शिलाफलक पर निर्मित 5फीट 7इंच ऊँची तथा 2फीट 9इंच चौडी अम्बिका की मूर्ति है। इनका वाहन सिंह अपेक्षाकत विशाल सशकत एवं स्वभाविक बन पडा है। पार्श्व में खडा एक बालक वस्त्राभूषणों से अलंकृत है । गोद में स्थित दूसरा बालक एक हाथ में आम्रफल धारण किये है और दूसरे से अपनी माँ के कर्णाभरण से खेल रहा है। यक्षी के आभूषण और वस्त्र आदि तो कलागत समद्वि के प्रतीक है ही उनकी धीण कटि भावपूर्ण मुद्रा आदि अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

इस मूर्ति के अतिरिक्त इसी गर्भगह में इस यक्षी की तीन मूर्तियां और भी है। इन तीनों की टोपियां उक्त अम्बिका की टोपी से जो सेनापति की टोपी से मिलती जुलती है, भिन्न हैं। इनके अधोवस्त्र विशेष आर्कषक हैं।[1]

चाँदपुर में अम्बिका यक्षी की निम्न दो मूर्तियॉं प्राप्त हैं जो वर्तमान में रानी लक्ष्मीबाई महल झाँसी संग्रहालय में संग्रहीत है।

प्रतिमा सं 149 चाँदपुर – ललितासन मे विराजी द्विभुजधारिणी, सर्वाभूषणों से अलंकृत अम्बिका की यह प्रतिमा बड़ी सजीव एवं कलापूर्ण है। केशपाश का ऊर्ध्व भाग स्तनों का ऊपरी भाग नष्ट हो चुका है।

बांयी जंघा पर एक बच्चा बैठा हुआ है। जिसको देवी अपने बांये हाथ से पलड़े हुए हैं। दांयें हाथ में अस्पष्ट लांछन है। देवी की शोभा प्रभा मण्डल के कारण और अधिक बढ़ जाती है। दोनों ओर अस्पष्ट पुरूषाकृतियां है। नीचे दांयी ओर कटिहस्त मुद्रा में एक परिचारक एवं एक आराधक की आकृतियां अंकित हैं। बांयी ओर कटिहस्त मुद्रा में एक पचिारक प्रदर्शित है। देवी की बांयी जंघा के नीचे एक लेटी हुयी पुरूषाकृति है, जो अपने हाथों पर बच्चे के पैरों को रखे हुए है।[2]

प्रतिमा सं0 186 (चांदपुर) – यह प्रतिमा प्रतिमा सं0 149 की ही भांति है। बांयी ओर अजमुख सदृश एक पुरूषाकृति अंकित है और दांयी ओर भी अस्पष्ट एक पुरूषाकृति अंकित है।

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 84,
2– रानीलक्ष्मी बाई झाँसी संग्रहालय,

बानपुर में मंदिर सं0 5 (सहस्त्रकूट चैत्यालय) के वाह्य भित्ति पर अम्बिका का अंकन है इसमें आयुधयुक्त मुनि वेष में हिंसा–अहिंसा की समन्वयक प्रतिमा के रूप में दर्शाया गया है।

पद्मावती – पद्मावती की मूर्तियां दो तरह की प्राप्त हैं: एक वे जिसमें केवल पद्मावती गोद में बालक को लिए बैठी होती हैं और दूसरी वे जिनमें वह अपने पति धरणेन्द्र के वाम पार्श्व में या गोद में बैठी होती हैं तथा उन दोनों की गोद में या उनमें से किसी एक की गोद में एक–एक बालक होता हे। कभी–कभी इन दोनों प्रकार की मूर्तियों में वे खड़े भी दिखाये जाते हैं। धरणेन्द्र पद्मावती के इस रूप परिवर्तन ने अनेक कला मर्मज्ञों और इतिहासकारों को भी भ्रम में डाल दिया है। श्री दयाराम साहनी ने इन्हें कल्पदृम के नीचे स्थित सुषमाकाल का सुखी युगल माना हे। पर यह निरी कल्पना है क्योंकि इस प्रकार की मूर्तियां बनाने का न तो कोई विधान है और न परम्परा। डा0 स्ओला केमरिश ने इस युगल को गोमेध और अम्बिका माना है।[1]

डा0 क्लाउज ब्रून और डा0 उर्मिला अग्रवाल ने भी इन्हें गोमेध और अम्बिका माना है। परन्तु यह विचारणीय है कि अम्बिका के दो बालक केवल उसी के साथ दिखाये जाते हैं और वह स्वयं किसी अन्य देव के साथ बैठी हुयी कभी नहीं दिखायी जाती। इसका कारण यह है कि 23वें तीर्थकर के यक्ष–यक्षी धरणेन्द्र–पद्मावती परस्पर पति–पत्नी भी थे, जब कि अम्बिका और गोमेध (पार्श्व) नहीं। अतः यहां एक सामान्य और उत्तरदायित्व पूर्ण देवी को, विशेष रूप से साक्षात तीर्थकर के चरणों में एक पराये देव के साथ सट कर बैठा हुआ दिखाया जाना भारतीय संस्कृति और परंपरा के सर्वथा विरूद्ध है। डा0 उमाकान्त प्रेमानन्द शाह के अनुसार यह युगल मूर्ति तीर्थकर के माता–पिता की होनी चाहिये। यह कल्पना उस समय हास्यास्पद लगती है जब पति और पत्नी दोनों की गोद में एक–एक बालक होता है जब कि तीर्थकर अपने माता पिता की इकलौती सन्तान होते हैं । वास्तव में ये युगल मूर्तियां धरणेन्द्र–पद्मावती की ही हैं।[2]

1– द हिन्दू टेम्पिल्स, ले0 डा0 स्टेला क्रेमरिश, पृ0 397,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 85,

पद्मावती की स्वतंत्र मूर्तियां निम्न हैं --

देवगढ़ में साहू जैन संग्रहालय में स्थित उसकी एक स्वतंत्र मूर्ति (धरणेन्द्र के बिना) 2फी, 5इंच ऊंचे और 2फी, 2इंच चौड़े शिलाफलक पर अंकित है। यह प्रतिमा मंदिर सं0 12 के अंतराल की दांयी मढ़िया से यहां सीनान्तरित की गयी है। उसका वाहन सिंह और गोद में बालक बैठा है। यह ललितासन में प्रदर्शित हैं। वह बांये हाथ से बालक को संभाले हैं और दांये हाथ में बज्र धारण किये है। आसन पर दोनों ओर एक–एक पद्मासन तीर्थकर मूर्तियां अंकित हैं।

सेरोनजी में शान्तिनाथ मंदिर के दांयें बांयें स्थित मंदिरों के बाहर धर्मशाला के प्रांगण में पद्मावती की एक मूर्ति है।

पद्मावती की युगल मूर्तियां (पद्मावती–धरणेन्द्र) – इनकी निम्न मूर्तियां प्राप्त हैं।

देवगढ़ में मंदिर सं0 24 की पश्चिमी बहिर्भित्ति में जड़े हुए एक शिलाफलक पर पद्मावती–धरणेन्द्र की युगल मूर्ति अंकित है। दोनों की गोद में बालक और दांये हाथ में नारिकेल है।

प्रतिमा सं0 229 (चांदपुर) – युगलिया में दोनों ललितासन में कल्पवृक्ष के नीचे विराजे हुए दिखाये गये हैं। देवी का शीर्ष भाग एवं दोनों की भुजाओं के अग्र भाग तथा बांये पैर वाले खण्डित हैं। कलापूर्ण प्रभामण्डल दोनों के शीर्ष भाग के पृष्ठ पर अंकित है। कल्पवृक्ष के केन्द्र में चंवरधारी युक्त ध्यानी जिन प्रतिमा अंकित है।[1]

24 यक्षियों की मूर्तियां – उपरोक्त यक्षी मूर्तियों के अतिरिक्त देवगढ़ में मंदिर सं0 12 की बाह्य भित्तियों पर यक्षी मूर्तियां के अलग–अलग 24 शिलाफलक जड़े हुए है। प्रत्येक शिलाफलक पर ऊपर तीर्थकर की पद्मासन मूर्ति और नीचे यक्षी की खड़ी हुयी मूर्ति अंकित हैं। कुछ के वाहन भी प्रदर्शित हैं, जिन पर देवी को आसीन दिखाया गया हे या जो देवी के निकट ही कहीं आलिखित हैं।

1– रानी लक्ष्मी बाई महल झाँसी संग्रहालय,

यक्षी के नीचे उसका नाम और कभी–कभी तीर्थकर के नीचे उसका नाम उत्कीर्ण है। इसमें से कुछ अस्पष्ट हो जाने से पढ़े नहीं जा सकते और जो पढ़े जा सकते हैं वे क्रमशः निम्नलिखित हैं।[1]

1– चक्रेश्वरी, 4– भगवती सरस्वती, 6– सुलोचन, 8– सुमालिनी, 9– बहुरूपिणी, 10– सीयदेवी, 11– वाहिनी, 12– अभोगरोहिणी, 13– सुलक्षणा, 14– अनन्तवीर्या, 15–सुरधिता, 16– श्रीयदेवी (अनन्तवीर्या), (मयूरवाहिनी), 17– अरकर्मी, 18– तारादेवी, 19– भीमदेवी, 20– (नामरहित), 21– (नामरहित), 22– अम्बिका, 23– पद्मावती, 24–सिद्धापिका,

यक्षियों की यह नामावली प्रस्तुत करने वाले प्रतिनिधि ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति, प्रतिष्ठासारोद्वार, प्रतिष्ठातिलक और अपराजितप्रच्छा, आदि ग्रंथों की तथा यहां उत्कीर्ण नामावली में यक्षियों के नामों, क्रम, वाहनों, हाथों की संख्या और आयुधों आदि में अत्यधिक विषमता है। इसका कारण वह हो सकता है कि मूर्तियों के कलाकारों के सामने कोई ऐसा ग्रन्थ रहा होगा जो अब अप्राप्त है, या वे पर्याप्त शिक्षित और सावधान नहीं थे।

3– विधा–देवियां – देवगढ़ के कलाकारों ने विधा–देवियों के अंकन में भी पर्याप्त अभिरूचि दिखायी है। जनपद में अनेक विधादेवियों की मूर्तियां प्राप्त हुयी हैं।

महाकाली – इनकी उल्लेखनीय मूर्तियां निम्न हैं। –

देवगढ़ मंदिर सं0 5 के पूर्वी द्वार के ऊपर दांये महाकाली का अंकन हे। उनके तीन हाथों में बज्र, घंटिका और फल विघमान हैं जब कि चौथा अभयमुद्र में है।[2]

देवगढ़ में इनकी दूसरी मूर्ति मंदिर सं0 9 के प्रवेश द्वार के सिरदल पर मध्य में उत्कीर्ण है। उनके ऊपर के दांये हाथ में बज्र, बांयें में घंटिका तथा नीचे दांयां हाथ अभय मुद्रा में तथा बांयें में अक्षमाला है। उनका वाहन नर भीं अंकित हैं।

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 85–86,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 86,

देवगढ में इनकी तीसरी मूर्ति मंदिर सं0 12 के गर्भगृह के प्रवेश द्वार के सिरदल पर बांये अंकित है। यहां इनका एक हाथ अभय मुद्रा में और दूसरा हाथ खण्डित हो गया है। उनके शेष दो हाथों में बज्र और घंटिका है। इनका वाहन नर भी अंकित है।[1]

देवगढ स्तम्भ सं0 4 पर भी इनकी मूर्ति अंकित हैं।

गौरी – देवगढ़ में मंदिर सं0 5 के पूर्वी द्वार के बायें गौरी का अंकन है, जिनके हाथों में कमल, अक्षमाला, कुम्भ और मूसल हैं। उनका वाहन गौधा भी अंकित हैं।[2]

महामानसी – इनकी निम्न मूर्तियां प्राप्त हैं–

देवगढ़ के मंदिर सं0 5 के पश्चिमी द्वार के सिरदल पर बांये महामासी का अंकन हे। इनके ऊपर के दांयें हाथ में कृपाण और बांये में खेटक (ढाल) एवं नीचे के बांये हाथ में कलश है तथा दांया वरद मुद्रा में है। इनके दांये सिंह बैठा है।

देवगढ़ स्तम्भ सं0 11 पर भी इनकी मूर्ति अंकित है।[3]

चांदपुर में शान्तिनाथ के प्रथम मंदिर के बाहरी भाग में शान्तिनाथ की मूर्ति है पादपीठ पर महामानसी का अंकन है।

4– प्रतीकात्मक देव–देवियां – इस वर्ग में लक्ष्मी, सरस्वती, नवग्रह, गंगा–यमुना, नाग–नागी के नाम लिए जा सकते हैं, इन्हें प्रतीकात्मक कहा जाता है। उदाहरणार्थ–लक्ष्मी को सम्पत्ति का और सरस्वती को श्रुति देवता का प्रतीक कहा जा सकता है। इनका सूक्ष्म विवरण निम्न है।

लक्ष्मी – लक्ष्मी, धन–धान्य आदि सर्वप्रदात्री देवी मानी गयी हैं। कला में इनका अंकन बहुत प्राचीन काल से प्राप्त होता है।[4]

देवगढ़ 1 में लक्ष्मी की मूर्तियां मंदिर सं0 12 के प्रवेश द्वार के सिरदल के बांये तथा जैन धर्मशाला में चक्रेश्वरी के ऊपर दांये आदि पर ही प्राप्त हुयी हैं।

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 88,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 88,
3– भारत के दिगम्बर तीर्थ प्रथम भाग, संकलन बलभद्र जैन, पृ0 188,
4– भारतीय साहित्य और कला में लक्ष्मी, ले0 कृष्ण चन्द्र बाजपेयी, पृ0 25–26,

मंदिर सं0 12 के प्रवेश द्वार के सिरदल पर उत्कीर्ण लक्ष्मी मूर्ति बहुत ही मनोरम और महत्वपूर्ण हैं। चतुर्भुजी इस देवी के ऊपर के दांये हाथ में सनाल कमल है जब कि नीचे का वरद मुद्रा में है। इसका बांया ऊपरी हाथ खण्डित है और नीचे वाले में सुन्दर कमल है। सुन्दर वस्त्रों के अतिरिक्त इनके पायल, पांवपोष, क्‌विषन्ध, चूड़ियां, भुजबन्द, चन्द्रहार, एकावलि, स्तनहार, कण्ठश्री, कर्ण कुण्डल और रत्नजटिल मुकुट दर्शनीय हैं।

सरस्वती – सरस्वती को ज्ञान व श्रुति देवता का प्रतीक माना जाता है। देवगढ़ में इनकी निम्न प्रतिमायें प्राप्त हैं।[1]

मंदिर सं0 1 के पीछे बांये से दांये (उत्तर से दक्षिण) जो सातवीं मूर्ति जड़ी है उसके बांये पार्श्व में उत्कीर्ण की गयी मूर्ति सरस्वती खड़ी हैं। उनके ऊपर के हाथों में अक्षमाला और कमल है तथा नीचे के बांये में पुस्तक और दांया अभय मुद्रा में है।

मंदिर सं0 11 के दूसरे खण्ड के प्रवेश द्वार पर बांये अंकित सरस्वती के हाथों में पुस्तक, वीणा ओर कलश हैं तथा एक हाथ अभय मुद्रा में है। मंदिर सं0 12 के गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर दांये सरस्वती उत्कीर्ण हैं। इनके ऊपर के दांये हाथ में सूत्र से मजबूती के साथ लपेटी गयी पुस्तक और नीचे वाले वीणा के तार हैं। ऊपर का बांया हाथ वीणा सूक्ष्मता के साथ निदर्शित हैं। इनकी केक्षराशि घंघराली और जूड़ा ऊपर को सम्हाल कर बांधा गया है।

मंदिर सं0 12 के अन्तराल की बांयी मढ़िया में सरस्वती की मूर्ति स्थापित है। चतुर्भुजी इस देवी के दांये ऊपरी हाथ में माला है और नीचे का वरद मुद्रा में है, बांये ऊपरी हाथ में सनाज कमल हे जब कि नीचे का ताडुपत्रीय ग्रंथ सम्हाले हुए हे। इनके पायल, पायजेब, कटिबंध, कंगन, गोंहटा, अरसी, कंठश्री, स्तनहार, कर्णाभरण और मुकुट अत्यंत सुन्दरता से निदेर्शित हैं। पादपीठ के ऊपर इनके पार्श्व में दोनों ओर दो–दो सेविकायें उत्कीर्ण हैं तथा ऊपर तीन पद्मासन तीर्थकरों का अंकन है। देवी की मुख मुद्रा सौम्य और प्रसन्न है।

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 87–88,

मंदिर सं0 31 के प्रवेश द्वार पर भी सरस्वती की सुन्दर मूर्ति अंकित है। यहां के साहू जैन संग्रहालय में चक्रेश्वरी की मूर्ति के ऊपरी भाग मं बांये सरस्वती की एक मनोज्ञ मूर्ति अंकित है।

बानपुर के सहस्त्रकूट चैत्यालय के उत्तरी प्रवेश द्वार की वाह्य भित्ति पर सरस्वती का अंकन है।[1]

सेरोनजी में शान्तिनाथ मंदिर के दांये–बांये स्थित मंदिरों के बाहर धर्मशाला के प्रांगण में सरस्वती की एक मूर्ति है।

चांदपुर, दुधई में भी सरस्वती की प्रतिमायें प्राप्त हुयी है।

नवग्रह – नवग्रहो का अंकन भारतीय कला में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। और इनका अपना विशेष महत्व भी है।[2] इनका आलेखन खड़े रूप में प्रायः मंदिरों के प्रवेश द्वारों तथा तोरणों पर और बैठे रूप में प्रायः मूर्ति फलकों पर प्राप्त होता है। जनपद में इनकी निम्न मूर्तियां प्राप्त हैं।

देवगढ़ 3 में इनका अंकन मंदिर सं0 4, 5, 30, और 31 के प्रवेश द्वारों तथा तोरणों पर और मंदिर सं0 11 और 12 में मूर्ति फलकों पर प्राप्त होता है।

सेरोनजी में मंदिर सं0 1 के प्रवेश द्वार के तोरण पर और मान स्तम्भ पर नवग्रहों का अंकन है।

बानपुर में सहस्त्रकूट चैत्यालय के पूर्वी और पश्चिमी द्वारों के तोरणों पर नवग्रह का अंकन है।

चांदपुर में शान्तिनाथ के प्रथम मंदिर के गर्भगृह के सिरदल पर नवग्रहों का अंकन है।[3]

गंगा–यमुना और नाग–नागी – गंगा–यमुना और नाग–नागी का स्थापत्य से सम्बन्ध 300 ई0 से द्वार स्तम्भों से प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास ने गंगा और यमुना के मूर्ति रूप का उल्लेख किया है। गंगा–यमुना के साथ नाग–नागी का सामीप्य भी गुप्त काल से प्राप्त होता है।[4]

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ विशेषांक, सेरोनजी, ले0 लाल चन्द्र जैन, पृ0 38,
2– वास्तुसार प्रकरण, ले0 ठक्कुर फेरू, पृ0 172–74,
3– बुन्देलखण्ड तीर्थ विशेषांक, अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाश मड़बइया, पृ0 68,
4– यक्षाजः भाग–1 आनन्द कुमार स्वामी,

गुप्त काल के द्वार स्तम्भों पर गंगा–यमुना बनाने की प्रथा थी।[1]

देवगढ़ में गंगा–यमुना का अंकन मंदिर सं0 4, 5 (दो बार), 9, 11 (दो बार), 19, 20, 23, 24, 28 और 31 तथा लघु मंदिर सं0 4 में आकर्षक ढंग से हुए हैं।[2]

5– अन्य देव–देवियां – इस वर्ग में इन्द्र–इन्द्राणी, उद्घोषक, परिचारक–परिचारिकायें, कीर्तिमुख, कीचक, द्वारपाल, क्षेत्रपाल आदि की मूर्तियां प्राप्त हुयी हैं। तीर्थकर के दोनों ओर (1) चंवर डुलाते हुए यक्षेन्द्र और उनकी इन्द्राणियां, (2) तीर्थकर की वाणी को आम बोलचाल में प्रस्तुत कर तीनों लोकों में गुदा देने वाला उद्घोषक, (3) उच्च श्रेणी के देव–देवियों की छाया की भांति साथ रह कर, सेवा–टहल करने वाले परिचारक, परिचारिकायें (4) स्तंभगवाक्षों और देवकुलिकाओं आदि के अलंकरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने वाले कीर्तिमुख, (5) भवन की छत का विपुल भार धारण करने वाले शक्तिशाली कीचक, (6) अनधिकारियों और आततताइयों को मंदिर के भीतर प्रवेश का निषध करने वाले दण्डधारी द्वारपाल और (7) समग्र तीर्थ क्षेत्र की रक्षा करने वाले क्षेत्रपाल आदि की मूर्तियां देवगढ़, बानपुर, चांदपुर, दुधई आदि स्थानों में यथा स्थान प्राप्त होती हैं।[3]

श्रावक–श्राविकायें

श्रावक–श्राविकाओं की मूर्तियों का विधान भी जैन मूर्ति शास्त्र में दृष्टिगत नहीं होता। इस दृष्टि से इसके उल्लंघन का सूत्रपात शक काल में हुआ प्रतीत होता है। कदाचित इसी समय से दानदाताओं और दानदात्रियों की मूर्तियां भी बनने लगीं। तीर्थकर की पूजा भक्ति करते हुए श्रावक युगल भी इसके पश्चात् अंकित किये जाने लगे। चन्देलों और कच्छपघातों का समय आने तक श्रावक–श्राविकाओं के दैनिक जीवन की विभिन्न झांकियां धार्मिक क्षेत्र से दूर हो गयीं और उनका सामाजिक महत्व भी कम रह गया।

1– म0 प्र0 सन्देश, 26 जनवरी, 1963ई0, म0 प्र0 की कला का ऐतिहासिक परिशीलन, ले0 कृष्णदत्त वाजपेयी, पृ0 16,

2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 90,

3– बुन्देलखण्ड तीर्थ विशेषांक, जैन धर्म के उत्कर्ष में चांदपुर दुधई का योगदान, ले0 महेन्द्र वर्मा, पृ0 69–70,

लेकिन ललितपुर में प्राप्त श्रावक–श्राविकाओं की मूर्तियों में धर्मिक तत्व ही अधिकतर हैं।

उल्लेखनीय श्रावक–श्राविका मूर्तियां निम्न हैं।--

1– तीर्थंकर की माता– देवगढ़ में श्रावक–श्राविकाओं की मूर्तियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय मूर्ति तीर्थकर माता की हैं। इनकी एक मूर्ति फलक मंदिर सं0 के गर्भगृह की बांयी भित्ति पर जुड़ी है। आसन पर क्रमशः हाथी, सिंह, सिंह, हाथी और बालकथारिणी देवी अंकित है। इनके पार्श्व में खड़ी देवी तीर्थकर की माता को चंवर डुला रही हैं। माता दांयी करवट लेटी हैं। उनकी दांयी कोहनी शैया पर टिकी है। खड़ी उठी हुयी हथेली पर सिर थमा है। माता का मुकुट, कर्णाभरण, मोहनमाला, ठुसी (कण्ठश्री), केयूर, कंकड़, मेखला और पायल उत्यन्त सूक्ष्मता से अंकित हैं। फलक पर फणामण्डित एवं पार्श्वनाथ सहित 24 तीर्थकरों की प्रस्तुति है। शैया के नीचे एक पंक्ति का अभिलेख उत्कीर्ण है उसमें इस मूर्ति के समर्पणकर्ता का नाम और निर्माणकाल संवत् 1030 (ई सन् 973) का उल्लेख है। श्री दयाराम साहिनी ने भ्रमवश इसे संवत् 1803 पढ़ा था।[1]

यहां मंदिर सं0 30 के गर्भगृह में स्थित 1फी0 9इंच ऊंचे और 1फी0 4इंच चौड़े शिलाफलक पर तीर्थकर की माता का अंकन है। सबसे नीचे दो सिंहाकृतियां अंकित हें। उनके ऊपर स्थित शैया पर माता उपधान पर मस्तक रखे बांये करवट से लेटी हैं। उनके दोनों ओर खाड़ी एक–एक देवी चंवर डुला रही हैं। माता के पीछे कल्पवृक्ष का अंकन है। इस पर विघमान आसन पर तीर्थकर की एक पद्मासन मूर्ति और उसके दोनों ओर एक–एक चंवरधारी यक्ष अंकित हैं।[2]

तीर्थकर माता की इन दो मूर्तियों के अतिरिक्त देवगढ़ में श्रावक–श्राविकाओं की और भी अनेक मूर्तियां भिन्न–भिन्न रूपों में प्रस्तुत की गयी हैं।

1– ए0 पी0 आर0 1918, परिशिष्ठ अभिलेख क्रम 29, पृ 14, दयाराम साहनी,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 100,

भक्त श्रावक–श्राविका –

देवगढ़ मंदिर सं0 1 के मण्डप में जड़े हुये एक फलक पर आचार्य परमेष्ठी की सेवा में खड़े एक चंवरधारी श्रावक के कंधे पर झोली टंगी है। इसके दोनों हाथ कलाइयों के ऊपर से खण्डित हैं। इसका झुका हुआ खण्डित मस्तक है। आचार्य के दूसरी ओर एक श्राविका जो कदाचित उस श्रावक की पत्नी होगी, छत्र धारण किये खड़ी है। छत्र खण्डित हो गया है। श्राविका की वेष–भूषा और अभूषण सादे हैं। किन्तु मोतियों के हैं। उत्तरीय पीछे हाथों में फंस कर फिर पीछे निकल आया है। मुखमण्डल खण्डित है।

इसी मंदिर सं0 1 के मण्डप में एक मूर्ति फलक के पादपीठ में विनम्र श्राविका की वेषभूषा में एक अंकन है।[1]

विनयी श्रावक – देवगढ़ में जैन चाहरदीवारी में एक ऐसी श्रावक मूर्ति जड़ी हुयी है, जो वस्त्राभूषण, परिष्कृत अभिरूचि एवं विनम्र भाव–भंगिमा आदि की दृष्टि से विशेष कही जायेगी।

उदासीन श्रावक – देवगढ़ मंदिर सं0 10 की उत्तरी स्तंभ पर पूर्व की ओर वाह्य संसार से विमुख किन्तु आत्मचिंतन में लीन एक उदासीन श्रावक का अंकन हुआ है। यह श्रावक पद्मासन में बैठ कर आत्म–मनन कर रहा है। उसकी वेषभूषा में तनीदार दोहरी छाती की अंगरखी तथा सिर पर टोपा दर्शनीय है।[2]

अन्य अंकन –

इनके उपरोक्त मूल्यांकनों के अतिरिक्त पाठशालाओं में अध्ययनरत, अतिथियों की सेवा में संलग्न मूर्तियों का भी अंकन है।[3]

1– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 101,
2– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 102,
3– देवगढ़ की जैन कला, ले0 भागचन्द्र जैन, पृ0 102,

अध्याय-सात

बुन्देलखण्ड के जैन मन्दिरों में पर्यटन की सम्भाव्यता

अध्याय – 7

बुन्देलखण्ड के जैन मंदिर क्षेत्रों में पर्यटन विकास की सम्भाव्यता

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के जैन मंदिरों की स्थिति का अध्ययन करने से ज्ञात होता है। कि यहां के विभिन्न स्थानों (झाँसी, सोनागिरी, खजुराहो, देवगढ़, चांदपुर–जहाजपुर, दुधई, मदनपुर, बानपुर, पावागिरि, सिरोन, सेरोनजी, गिरनार, ललितपुर) में भिन्न–भिन्न समयों में अनेक जैन मंदिर निर्मित करवाये गये थे। जिनमें आज भी कुछ की हालत ठीक है लेकिन कुछ जीर्ण–जीर्ण अवस्था में मौजूद हैं। यहां के जैन मंदिर धार्मिक, ऐतिहासिक और कलात्मक महत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं। जैनियों के अतिरिक्त यहां हिन्दुओं के धार्मिक केन्द्र स्थल और प्राकृतिक रमणीक स्थल भी भ्रमणीय हैं।

ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक महत्व की पाषाण कला मंदिर और मूर्तियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होने के कारण जनपद के उपरोक्त स्थल शोधकर्ताओं, तीर्थयात्रियों तथा पर्यटकों के लिए रूचिवर्धक हैं तथा पर्यटन विकास की उपलब्ध संभावनायें रखते हैं। परन्तु पर्यटन विकास सम्बन्धी अवरोध (जैसे– पर्यटक आवास, सुचारू आवागमन, मनोरंजन तथा अन्य सुविधाओं का न होना) ही यहां के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। अतः यह आवश्यक है कि पर्यटन विकास के मार्ग में बाधक मूलभूत अवरोधों की गम्भीरता से अध्ययन करके एक ऐसी विकास योजना बनायी जाए जो पर्यटन को बढ़ावा देने के साथ ही साथ यहां के निवासियों के आर्थिक एवं सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने में सहायक हो सके।

बुन्देलखण्ड के इन महत्वपूर्ण जैन मंदिर क्षेत्रों का उल्लेख साहित्य में नगण्य रहा है और अन्य श्रोत भी इस विषय में मौन रहे हैं। उपलब्ध अभिलेख ही इनके विषय में कुछ प्रकास डालते हैं। धीरे–धीरे विद्वानों का ध्यान इनकी कला और संस्कृति के अध्ययन की ओर गया लेकिन देवगढ़ के अतिरिक्त अन्यत्र इनका कोई विशेष ध्यान नहीं गया है। देवगढ़ के अध्ययन, सुरक्षा व विकास के लिये विभिन्न स्तरों पर प्रयत्न हुए हैं।

शासकीय प्रयत्नों के अन्तर्गत देवगढ़ के पुरातात्विक महत्व पर सर्वप्रथम श्री ऐलेक्जेन्डर कनिंघम का ध्यान गया। उन्होंने भारत सरकार की ओर से 1874–75

और 1876–77 ई0 में यहां का सर्वेक्षण किया। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने दशावतार, शान्तिनाथ तथा कुछ अन्य मंदिरों का संक्षिप्त विवरण प्रकाशित कराया।[1] इससे देवगढ़ अन्य पुरातात्विक महत्व वाले स्थानों की भांति अपने खण्डित ऐतिहासिक कड़ी से पुनः जुड़ गया। उनके पश्चात् डा0 ए0 फयूहरर ने 1891 ई0 में यहां का विवरण प्रकाशित कराया।[2] 1899 ई0 में श्री पूर्ण चन्द्र मुखर्जी ने एक पुस्तक में देवगढ़ के स्मारकों का परिचय दिया।[3] सन् 1908 ई0 में इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया जिल्द ग्यारहवीं और 1909 ई0 में झांसी ग्जेटियर प्रकाशित हुए, जिनमें देवगढ़ का संक्षिप्त विवरण है। भारत के पुरातात्विक सर्वेक्षण की 1914–15 ई0 की वार्षिक रिपोर्ट के प्रथम भाग में सर जान मार्शल ने इसका कुछ पंक्तियों में उल्लेख किया। सन् 1915 की वार्षिक प्रगति की रिपोर्ट में यहां के सात शिलालेखों का विवरण प्रकाशित हुआ। 1916 ई0 की वार्ष्रिक प्रगति की रिपोर्ट में भी श्री एच0 हरग्रीव्ज ने 13 शिलालेखों का विवरण प्रकाशित किया।

शासन ने अपने नोटीफिकेशन क0 958–एम0–367–47–111 दिनाँक 10 सितम्बर, 1917 द्वारा देवगढ़ किले के जैन मंदिरों को सन् 1904 के एन्शियेन्ट मोनुमेन्ट्स प्रिजर्वेशन एक्ट 7" के अनुसार संरक्षित घाषित किया और नोटिफिकेशन क0 1162–एम0–367–47–111, दिनाँक 1 नवम्बर, 1917 द्वारा अपने उक्त आदेश की सम्पुष्टि की तथा 1 नवम्बर, 1917 को भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने इस क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लिया और राय–बहादुर दयाराम साहनी को वहां सर्वेक्षण के लिए भेजा। दिनाँक 22–11–1917 ई0 से 17–12–1917 ई0 तक उन्होंने सर्वेक्षण करके स्मारकों, मूर्तियों और सैंकड़ों के जीर्णोद्वार के लिए प्रान्तीय और केन्द्रीय शासनों से कुछ राशि स्वीकृत करायी परन्तु जंगल की सफाई और स्मारकों के प्रारंभिक जीर्णोद्वार के अतिरिक्त कुछ न हो सका।

1– ए0 एस0 आई0 आर0 टूर्स इन बुन्देलखण्ड एण्ड मालवा इन 1874–75,एण्ड 1876–77ई0 जिल्द 10, ए0 कर्निघम, पृ0 100–110,

2– ए0 एस0 आई0 आर0, दि मोनूमेन्टल एन्टीक्विटीज एण्ड इन्सक्रिप्शन्स इन दि नार्थ बेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध, ए0 फयूहरर, पृ0 119–121,

3– रिर्पोट आन दि एन्टिक्विटीज इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर, जिल्द पहली, पी0 सी0 मुखर्जी,

जैसा कि सर जान मार्शल ने लिखा है कि इस जिले में आकाल पड़ जाने से कार्य को उस समय तक के लिए स्थगित कर देना पड़ा जब तक कोई अनुकूल स्थिति न आये।[1] इस बीच श्री डी0पी0 स्पोनर ने भी 1917–18 ई0 की वार्षिक रिपोर्ट के प्रथम भाग में इसकी चर्चा की।

सामाजिक प्रयत्नों के अन्तर्गत ललितपुर के कर्मठ युवक श्री परमानन्द वर्या ने देवगढ़ के जीर्णोद्वार आदि में गहरी दिलचस्पी लेना प्रारंभ किया। उन्होंने शासन और समाज के सहयोग से इस क्षेत्र की दीर्घकाल तक सेवा की । इन्ही के सतत प्रयत्न के फलस्वरूप सन् 1918 ई0 में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ रक्षा समिति ने इस क्षेत्र का प्रबन्ध अपने निर्देशन में ले लिया। सन् 1930 ई0 में जाखलौन, ललितपुर आदि के जैनों ने एक समिति गठित करके इस क्षेत्र. का प्रबंध उपरोक्त समिति से अपने हाथ में ले लिया। इस समिति का नाम "श्री देवगढ़ मैनेजिंग दिगम्बर जैन कमेटी" रखा गया। इस संस्था में भारत सरकार के पुरातत्व विभाग से दिनाँक 4–3–1935 ई0 को जैन स्मारकों को तथा वन विभाग से दिनांक 11–6–1938 ई0 को जैन स्मारकों के आस–पास की भूमि का अधिकार प्राप्त किया।[2]

सर्वप्रथम इस क्षेत्र की दशा देखकर आगरा निवासी श्री गुटरूमल उत्तमचंद जी बेनाडा ने इसका जीर्णोद्वार कराया तथा क्षेत्र पर बिखरी मूर्तियों का एक परकोटे में लगा कर उन्हें सुरक्षित किया।

शोध ग्रंथों, अभिलेखों के अंतर्गत माधवस्वरूप वत्स और श्री मती माधुरी देसाई ने देवगढ़ के दशावतार मंदिर पर ग्रंथ लिखे। सर्वश्री डा0 ज्योती प्रसाद जैन, डा0 उमाकान्त प्रेमानन्द शाह, डा0 कामताप्रसाद जैन, डा0 हीरालाल जैन, डा0 क्लाउज ब्रून, पं0 परमानन्द जैन शास्त्री, डा0 कृष्णदत्त वाजपेयी, डा0 भाग चन्द्र जैन आदि ने विभिन्न शोध ग्रंथों और लेखों के माध्यम से देवगढ़ की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्व को उजागर किया।

1– ए0 एस0 आई0 आर0, 1919–20, सर जान मार्शल, पृ0 6,
2– ए0 एस0 आई0 आर0 ए0 रि0, 1917–18, प्रथम भाग, डी0 बी0 स्पूनर, पृ0 7, 32,

इसके अतिरिक्त प्रेमसागर की "देवगढ़ पूजन" श्री कल्याणकुमार शशि का "देवगढ़ काव्य" और श्री हरिप्रसाद हरि की "देवगढ़" नामक काव्य में पुस्तिकायें और डा0 वृन्दावनलाल वर्मा का "देवगढ़ की मुस्कान" नामक उपन्यास भी प्रकाशित हुए हैं।

जनपद ललितपुर के कई पुरातात्विक स्थलों पर जैन धर्म से सम्बन्धित सैंकड़ों की संख्या में प्रतिमायें सुरक्षित रखी हुयी हैं। इनमें देवगढ़, सेरोनजी, बानपुर, मदनपुर, पावागिरि, चादंपुर–जहाजपुर और दुधई आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कुछ समय पूर्व भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण आगरा के अधीक्षक डा0 डी0 आर0 पाटिल के निर्देशन में तकनीकी सहायक श्री लालमोहन बहल एवं कन्जरवेटिव असिस्टेंट श्री एस0 एस0 सैनी के प्रयत्नस्वरूप चांदपुर–दुधई से बिखरी प्राचीन मूर्तियां एकत्र करके रानी लक्ष्मीबाई महल, झांसी संग्रहालय में रख दी गयी हैं। यहां से करीब 130 जैन धर्म से सम्बन्धित मूर्तियां संग्रहीत की गयी हैं।[1]

<u>देवगढ़, एक पर्यटन केन्द्र –</u>

स्वाधीनता के पश्चात् देवगढ़ के पुरावशेषों के महत्व को देखते हुये पुरातत्व विभाग द्वारा यहां एक संग्रहालय बनाया गया है। तथा एक अन्य (साहू जैन संग्रहालय) साहू ट्रस्ट की ओर से सन् 1969 में बनाया गया। वर्ष 1934, 1936, 1939, 1954, 1956, 1965, एवं 1979 में मेलों का आयोजन किया गया था।[2]

वर्ष 1979 में नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग, उ0प्र0 झांसी द्वारा सम्पन्न किये गये आर्थिक एवं सामाजिक सर्वेक्षण के आधार पर देवगढ़ की जनसंख्या 371 थी जब कि देवगढ़ डांग सरकार गैर आबाद था। देवगढ़ के धार्मिक एवं पुरातात्विक स्थल देवगढ़ एवं देवगढ़ डांग ग्रामों में ही पड़ते हैं। पर्यटन सुविधाओं का पूर्णतया आभाव होने के कारण देवगढ़ का विकास पर्यटन स्थल के रूप में सीमित रहा। यहां केवल एक धर्मशाला है जिसमें 40 कमरे हैं तथा धर्मशाला में केवल 6 सुलभ शौचालय एवं तीन स्नानगृह हैं।

1– बुंदेलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, झाँसी संग्रहालय में जैन मूर्तियाँ, ले0 लाल मोहन बहल, पृ0 47,

2– देवगढ़ विकास योजना, निर्माता झाँसी सम्भागीय नियोजन खण्ड, नगर एवं ग्राम, नियोजन विभाग, उ0 प्र0 झाँसी, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 10,

पेय जल की उपलब्धता केवल कुंये द्वारा होती है जो प्रायः गर्मी में सूख जाते थे। दैनिक आवश्यकताओं के लिये यहां के लोग जाखलौन पर निर्भर रहते थे, कोई स्वस्थ्य सुविधा उपलब्ध नहीं थी। देवगढ़ में एक प्राइमरी स्कूल, धर्मशाला में एक पुलिस चौकी तथा एक एक विश्रामगृह भी उपलब्ध थे। पर्यअन सुविधाओं के अभाव के कारण देवगढ़ आने वाले अधिकतर पर्यटक ललितपुर में ही ठहरते रहे हैं। प्रतिदिन चार बसें देवगढ़–ललितपुर मार्ग पर सेवारत थीं। इनमें से प्रतिदिन तीन बसें अपने 6 फेरों द्वारा ललितपुर–देवगढ़ के बीच तथा एक बस अपने दो फेरों द्वारा झांसी–देवगढ़ के बीच आती जाती थी।[1]

एक महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल, ऐतिहासिक कला केन्द्रि एवं प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से मनमोहक होने के कारण देवगढ़ को नियोजित द्रुग से विकसित करने की आवश्यकता है। ललितपुर के जिलाधिकारी एवं अध्यक्ष नियंत्रक प्राधिकारी विनियमित क्षेत्र देवगढ़ में प्रयत्नों के परिणामस्वरूप झांसी सम्भागीय नियोजक खण्ड नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग, उ0प्र0 झांसी में उ0प्र0 (निर्माण कार्यविनिमय) अधिनियम 1958 के आधीन देवगढ़ विकास योजना (2000–05) का निर्माण कर शासन को भेजा है।[2] योजना निम्नवत है।

यघपि देवगढ़ मुख्यतः जैन मंदिरों तथा गुप्त काल के दशावतार मंदिर के लए प्रसिद्ध है, तथापि यह अन्य पर्यटकों तथा आकस्मिक आगुन्तकों के भी आकर्षण का केन्द्र है। प्राचीन ऐतिहासिक तथा पुरातात्विक महत्व के मंदिरों एवं मूर्तियों के कारण यह स्थान छात्रों, तीर्थ–यात्रियों तथा पर्यटकों के रूचिवर्धक होने के साथ–साथ विकास की भी उज्जवल संभावनायें रखता है। संरक्षित वनों के मध्य उनकी भूमि परिस्थिति जैन मंदिर समूह तथा नीची भूमि दूर–दूर तक फैली प्रसिद्ध भूमि बेतवा नदी के साथ मिलकर एक मनमोहक दृश्य उपस्थित करती हैं। जैन मंदिर समूह के दक्षिण में लगभग 100 मीटर नीचे बेतवा नदी के बहाव के मध्य स्थित हरे भरे वृक्षों से आच्छादित टापू, प्रकृति का सुन्दर चित्रण करते हैं।

1– देवगढ़ विकास योजना, निर्माता झाँसी सम्भागीय नियोजन खण्ड, नगर एवं ग्राम, नियोजन विभाग, उ0 प्र0 झाँसी, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 10–11,
2– देवगढ़ विकास योजना, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 9,

देवगढ़ में प्रकृतिक भू दृश्यों की प्रधानता है तथा यहां स्वच्छ भावना विकसित होती है। समुचित पर्यटन सुविधाओं, जैसे पर्यटक आवास, सुरक्षा हेतु पुलिस चौकी, आवागमन क्रय–विक्रय, पोस्टल तथा बैंकिग सुविधाओं के साथ–साथ सांस्कृतिक व अन्य तत्सम्बन्धित मूल सुविधाओं, जैसे नलों द्वारा पेय जल एवं बिजली प्रावधान कर देने से इस उपेक्षित स्थान को नवजीवन मिल सकता, जिससे दूर–दूर से अधिकाधिक जैन तीर्थ यात्री तथा अन्य आकस्मिक आगन्तुक व पर्यटक भी यहां आकर्षित हो सकते हैं। दशावतार मंदिर के आस–पास का क्षेत्र खुला है जिसे व्यवस्थित रूप से सजाया सकता है । आवांछित विकास को रोकने के लिए यहां भूमि नियंत्रण कानून आसानी से लागू किये जा सकेत हैं। नयें मार्गों के किनारे विश्राम व पिकनिक स्थल आदि के बन जाने से इस पर्यटन केन्द्र को सुसम्पन्न बनाया जा सकता है। जैन मेले के अवसर पर अधिक संख्या में पर्यटक व तीर्थयात्री देवगढ़ आते हैं। परन्तु आने वाले पर्यटकों हेतु कैम्पिंग के लिये कोई भूमि निश्चित नहीं है। इसके अलावा पानी और बिजली आदि की सुविधा भी पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं हो पाती। अतः मेले के अवसरों पर पानी व बिजली की सुविधाओं का विशेष रूप से सावधान करने की आवश्यकता है। बसों का आवागमन अत्यंत कम है, जिससे यहां आने वाले पर्यटकों को अत्यधिक समय व्यय करना पड़ता है। देवगढ़ में कोई पर्यटक सुविधा उपलब्ध नहीं हैं। आवास सुविधा निम्न स्तर की है।[1]

पर्यटकों की वर्तमान प्रवृत्ति – पर्यटन विभाग उ0प्र0 द्वारा उपलब्ध कराये गये आंकड़ों के अनुसार 45, 250 पर्यटक वर्ष 2004 में देवगढ़ आये। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2001, 2002 तथा 2003 में क्रमशः 25, 50, 36, 180, तथा 38, 159 पर्यटक देवगढ़ आये। अधिकांश पर्यटक देश के विभिन्न भागों से यहां आये। देवगढ़ में स्थानीय पर्यटकों की संख्या कम है। अधिकांश पर्यटक झांसी व ललितपुर होकर देवगढ़ आते हैं।

1– देवगढ़ विकास योजना, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 9,

जैन धर्मशाला, देवगढ़ में उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2004 में यहां रूकने वाले पर्यटकों का औसत समय एक या दो दिन है तथा रूकने वाले पर्यटकों की औसत दैनिक संख्या केवल 10 है। देवगढ़ में स्थित जैन धर्मशाला में ठहरने वाले पर्यटकों की संख्या वर्ष 2004 में कुल 2300 थी, जिनका मासिक विवरण निम्न तारिणी में दर्शाया गया है।[1]

सारिणी[2] – देवगढ़ में ठहरने वाले पर्यटकों का मासिक विवरण:– वर्ष 2004

माह	पर्यटक	माह	पर्यटक
जनवरी	433	जुलाई	520
फरवरी	429	अगस्त	421
मार्च	321	सितम्बर	722
अप्रैल	411	अक्टूबर	707
मई	425	नवम्बर	636
जून	512	दिसम्बर	623

पर्यटक सुविधा तथा इन्फास्टक्चर के आभाव के कारण पर्यटक प्रायः व्यक्तिगत कारों से आते हैं। कुछ पर्यटक बसों द्वारा भी आते हैं जो ललितपुर से देवगढ़ के बीच चलती हैं।

भावी पर्यटकों का अनुमान – विगत पर्यटकों के बारे में कोई तथ्य, सही आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण भावी पर्यटकों का अनुमान लगाना कठिन है, फिर भी उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग द्वारा प्रकाशित "देवगढ़ क्षेत्र पर्यटन विकास परियोजना", 2004 के अनुसार पर्यटकों की औसत वार्षिक वृद्धि दर लगभग 21 प्रतिशत है। तद्नुसार यह अनुमान लगाया गया है कि भावी वर्ष 2005–06 तक यह वृद्धि दर जारी रहेगी।

1– देवगढ़ विकास योजना, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 11,
2– जैन धर्म शाला रजिस्टर, देवगढ़ 2004,

पर्यटन सुविधाओं के विकास हो जाने के पश्चात् भावी दशक में यह वृद्धि दर बढ़ जाने की सम्भावना है। उपरोक्तानुसार यह अनुमान किया जाता हे कि भावी दशक 2006–2016 के दौरान पर्यटकों की वृद्धि दर 250 प्रतिशत हो जायेगी। तद्नुसार वर्ष 2006 तक लगभग 55000 तथा वर्ष 2016 तक लगभग 752600 पर्यटक देवगढ़ में आने का अनुमान लगाया गया है।[1]

देवगढ़ के 125 कि0मी0 की दूरी पर स्थित झांसी एक अत्यन्त विकसित नगर है, अतः आशा की जाती है कि अत्यधिक संख्या में आकस्मिक आगन्तुक पिकनिक करने तथा प्राकृतिक सुषमा के अवलोकन हेतू देवगढ़ आयेंगे।

<u>देवगढ़ मेला – वर्तमान तथा भावी पर्यटन</u> – उत्तर प्रदेश क्षेत्रीय पर्यटन कार्यालय, झांसी के "देवगढ़" क्षेत्र पर्यटन विकास परियोजना प्रतिवेदन 2003–04 के अनुसार वर्ष 2003 में आयोजित मेले के अवसर पर 47800 पर्यटक देवगढ़ आये थे। देवगढ़ जैन मेला प्रबंध समिति से हुए वार्तालाप के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि अधिकतर पर्यटक जो क्षेत्र के बाहर से मेले के अवसर पर यहां आये तीन दिन तक देवगढ़ में ठहरे । अनुमानित है कि ऐसे पर्यटक लगभग 6000 अर्थात् आने वाले पर्यटकों का 10 प्रतिशत थे। मेले में आने वाले अधिकतम पर्यटक आस–पास के क्षेत्र के थे जो अधिकांश संख्या में "गजरथ महोत्सव" (आखिरी दिन) वाले दिन देवगढ़ आते हैं तथा वहां नहीं ठहरते । अनुमानित है कि देवगढ़ में पर्यटन सुविधाओं के विकास के फलस्वरूप आयोजित मेले के अवसर पर आने वाले पर्यटकों की संख्या वर्ष 2016 में लगभग 100000 हो जायेगी। यह अपेक्षित है कि साधारण पर्यटन सुविधाओं के प्रावधान के साथ–साथ मेले के दिनों के लिए अतिरिक्त प्रस्तावित सुविधाओं जैसे शिविर, स्थल, पानी, बिजली व पार्किंग की व्यवस्था के फलस्वरूप देश के विभिन्न भागों से आने वाले पर्यटकों में वृद्धि होगी। अतः अनुमान है कि ऐसे मेले के दिनों में देवगढ़ ठहरने वाले पर्यटकों की संख्या लगभग 15000 अर्थात् कुल आने वाले पर्यटकों का लगभग 15 प्रतिशत हो जायेगा।[2]

1– देवगढ़ विकास योजना, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 13,
2– देवगढ़ विकास योजना, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 14,

वर्तमान एवं प्रस्तावित पर्यटक सुविधायें :– वर्तमान समय में देवगढ़ में स्थित जैन धर्मशाला में 75 मध्यवर्ग एवं निम्न आय वाले पर्यटकों हेतू ठहरने की सुविधा है। यहां वन विभाग के विकास गृह में केवल 14 व्यक्तियों के ठहरने की सुविधा उपलब्ध है। वर्ष 2006 में प्रतिदिन आने वाले कुल पर्यटक लगभग 4230 होंगे। यह भी अपेक्षित है कि विदेशी पर्यटक जो अधिकतर मध्यम एवं उच्च वर्ग के होते हैं वे भी देवगढ़ आयेंगे। ठहरने की सुविधाओं का प्रावधान पर्यटकों के विभिन्न आय वर्गों के आधार पर किया गया है। जिसका विवरण निम्न सारिणी में दर्शाया गया है।

सारिणी :– वर्ष 1991 में अनुमानित पर्यटकों के लिये ठहरने की सुविधा ।

आय वर्ग	प्रतिशत	शैयाओं की संख्या
उच्च आय वर्ग	30	22
उच्च–मध्यम आय वर्ग	25	18
निम्न–मध्यम आय वर्ग	25	18
निम्न आय वर्ग	28	14
कुल	108	72

टिप्पणी – उच्च एवं उच्च मध्यम आय वर्ग टूरिस्ट लॉज में ठहरेंगे।

निम्न – मध्यम एवं निम्न वर्ग धर्मशाला में ठहरेंगे।

उच्च एवं मध्यम आय वर्ग के पर्यटकों के लिए ठहरनें की सुविधा के शीघ्र प्रावधान करने की अत्यावश्यकता है। वर्तमान समय में यह सुविधा जैन धर्मशाला में सुधार करके प्रदान की जा सकती है तथा निकट भविष्य में 32 शैयाओं वाले पर्यटक आवास गृह के निर्माण का प्रावधान है। भविष्य में पर्यटकों की संख्या की बढ़ती हुयी आवश्यकता के अनुसार आवासगृह में शैयाओं के बढ़ाने की क्षमता रखी गयी है।[1]

1– देवगढ़ विकास योजना, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 14–15,

शिविर स्थल – वर्तमान समय में शिविर स्थल हेतु कोई स्थान निर्धारित नहीं है अतः जहां पर स्थान मिलता है वहीं पर्यटक ठहर जाते हैं। 9 वर्गमीटर प्रति ठहरने वाले पर्यटक की दर से 15000 पर्यटकों हेतू लगभग 13.5 हैक्टेयर भूमि 20 मीटर चौड़े बाई पास मार्ग बस्ती के पश्चिम की ओर एवं 6.5 हैक्टैयर भूमि बाई पास मार्ग पर दशावतार मंदिर के उत्तर की ओर आरक्षित रखने की आवश्यकता है।[1]

विकास प्रस्ताव

नियोज़न की रूप रेखा – जैन मंदिर समूह बेतवा नदी के तल से लगभग 100 मीटर की ऊंचाई पर स्थित हैं। वर्तमान बनस्पति एवं आस–पास का क्षेत्र जैन मंदिर समूह के लिए अद्भुत पर्यावरण प्रदान करता है। दशवतार मंदिर कम ऊंचाई पर स्थित है तथा इसका विकास सुन्दरीकरण करके किया जा सकता है। नियोजन की रूप रेखा का मुख्य उद्देश्य पुरातात्विक संस्थानों एवं स्मारकों को सुरक्षित रखने के साथ–साथ उसका विकास करना है। वर्तमान गांव की बस्ती एवं दशावतार मंदिर के इर्द–गिर्द का क्षेत्र जो देवगढ़–ललितपुर मार्ग की और स्थित है, भावी विकस हेतू उपयुक्त है।[2]

पर्यटन सुविधायें एवं अव स्थापना – वर्ष 2006 के लिए पर्यटकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित सुविधाओं का प्रावधान किया गया है। जो पर्यटकों के साथ–साथ स्थानीय जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करेगी।[3]

क – स्वागत केन्द्र एवं संबंधित सुविधायें :

1– स्वागत् कक्ष :– एक भली प्रकार से विकसित सूचना केन्द्र जिसमें सभी संबंधित सूचनायें जैसे बैठने के लिये स्थान, शौचालय इत्यादि उपलब्ध हो, के लिये 90 वर्ग मीटर तक प्रस्तावित है।

1– देवगढ़ विकास योजना, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 15,
2– देवगढ़ विकास योजना, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 15,
3– देवगढ़ विकास योजना, प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 16–19,

2– रेस्टोरेन्ट :– एक रेस्टोरेन्ट जिसमें विभिन्न प्रकार के भोजन विभिन्न स्थानों से आने वाले पर्यटकों के लिए उपलब्ध हो का प्राविधान है। इसमें 50 व्यक्तियों के एक साथ बैठने की क्षमता को ध्यान में रखते हुए 170 वर्ग मीटर तल क्षेत्र का प्रावधान रखा गया है।

3– दुकानें :– दस दुकानों हेतू 15 वर्ग मीटर प्रति दुकान की दर से 150 वर्ग मीटर तल क्षेत्र प्रस्तावित है।

4– पार्किगं :– 30 वर्ग मीटर प्रति वाहन की दर से 46 वाहनों के लिए 1380 वर्ग मीटर का प्रावधान है। जिसमें, स्मारकों के समीप की जाने वाली क्षणिक पार्किगं भी सम्मिलित है। दस वाहनों के लिए दशावतार मंदिर के पास 16 वाहनों हेतु पर्यटक आवास गृह के सुविधाओं के समीप, 10 वाहनों के लिए जैन मंदिर समूहों के पास, 5 वाहनों के लिए बाराह मंदिर व 5 वाहनों के लिए राजघाटी के समीप पार्किंग का प्रावधान है।

ख – पर्यटक आवास गृह :– उच्च एवं उच्च मध्यम आय वर्ग के पर्यटकों के लिए ठहरने की सुविधाओं का प्रावधान पर्यटक आवास गृह में किया गया है। इसमें एक स्वागत कक्ष तथा खाने पीने के लिए एक हाल का प्रस्ताव है। आवास गृह में विभिन्न प्रकार के एक शैया व दो शैयाओं वाले कमरों का संलग्न स्नान एवं शौचालयों की सुविधाओं के साथ प्रावधान रखा गया है। पर्यटक आवास गृह के विकास की रूप रेखा ऐसी रखना अपेक्षित है कि यदि भविष्य में इसके विस्तार की आवश्यकता पड़े तो कोई कठिनाई न हो । इसमें कुल 32 शैयाओं का प्रावधान रखा गया है तथा कुल 1.20 हेक्टेयर भूमि प्रस्तावित है।

ग – ट्रेलर पार्किंग :– ट्रेलर पार्किंग हेतू 150 वर्ग मीटर ट्रेलर पार्किंग की दर से 1500 वर्ग मीटर भूमि का प्रावधान है।

घ – संग्रहालय :– आस–पास के क्षेत्र की विभिन्न प्रकार की मूर्तियों व शिलालेखों को भली भांति सुरक्षित रखने के लिए वर्तमान संग्रहालय स्थल को सम्मिलित करते हुए कुल 750 वर्ग मीटर भूमि प्रस्तावित है।

ड – अन्य सुविधायें :– पर्यटकों व स्थानीय जनसंख्या के लिए निम्नलिखित सुविधाओं का प्रावधान रखा गया है।

अन्य बैंक हेतू 108 वर्ग मीटर एवं पोस्ट आफिस हेतु 108 वर्ग मीटर तल क्षेत्र का प्रावधान है।

ब – पुलिस पोस्ट हेतु 400 वर्ग मीटर तल क्षेत्र का प्रावधान है।

स – डिस्पेन्सरी के लिए 400 वर्ग मीटर तल क्षेत्र का प्रावधान है।

द – जूनियर बेसिक स्कूल का स्तर बढ़ा कर सीनियर बेसिक स्कूल के रूप में विकसित करने के लिये कुल 50 हेक्टेयर भूमि का प्रावधान है।

य – विभिन्न सुविधाओं एवं पुरातात्विक विभाग में कार्य करने वाले व्यक्तियों एवं उनके परिवारों के लिये एक हेक्टैयर भूमि पर 32 स्टाफ क्वार्टर बनाने का प्रावधान किया गया है।

च – सुन्दरीकरण :– सम्पूर्ण पर्यअन विकास क्षेत्रों में सुन्दरीकरण एक योजना के आधार पर पुरातात्विक स्थलों के आस–पास खूबसूरत एवं शोम्य वातावरण कायम रखने के लिए प्रावधान रखा गया है। वर्तमान प्रस्तावित मार्गो, स्मारकों, तथा पर्यटक आवास गृह के साथ विभिन्न प्रकार के वृक्षों के लगाने का प्रावधन है। स्वागत कक्ष, पर्यटक आवास गृह एवं रेस्टोरेंन्ट के इर्द–गिर्द छायादार एवं फूलों–फलों वाले वृक्षों के लगाने का प्रस्ताव रखा गया है। दशावतार मंदिर में जाने वाले मार्ग को पत्थरों से पक्का करने साथ–साथ ऊंचे छायादार वृक्ष लगाने तथा भलीभांति सुन्दरीकरण करने का प्रावधान है। स्टाफ क्वार्टरों के आस–पास भी वृक्ष लगाने का प्रस्ताव रखा गया है। बैंचों एवं अन्य समुदायिक सुविधओं को विभिन्न स्थानों पर पर्यटकों के लिये स्थापित किया जायेगा। देवगढ़ में स्थित तालाब को विकसित करने के साथ–साथ उनके इर्द–गिर्द ज्यादातर वृक्षों का प्रावधान है।

छ – उपयोगितायें एवं सेवायें – देवगढ़ में इस समय पेय जल तथा बिजली की सुविधा उपलब्ध नहीं है। एकीकृत पर्यटन विकास की वृद्धि से यह आवश्यक है कि उपयोगी सेवाओं का प्राथमिकता के स्तर पर प्रावधान किया जाये। पर्यटन समूह, भागों तथा सुन्दरीकृत क्षेत्रों में विधुत सुनिश्चित की जाये। पेय जल की निरन्तर सुविधा सुनिश्चित करने हेतु एक समुचितजल–क्षमता का ओवर हैंड टेंक बना कर बेतवा नदी से पानी पम्प किया जाए। 20 गैलन प्रति व्यक्ति प्रति

दिन की दर से 24600 गैलन प्रति दिन की जलपूर्ति आवश्यकता का गणन किया गया हें जो स्थानीय जनसंख्या तथा पर्यटकों के लिये वर्ष 2006 तक के लिये पर्याप्त होगी। इसके अतिरिक्त मेलों के अवसरों पर भी पेय जल तथा बिजली का सुविधा आवश्यकतानुसार की जाए। प्रत्येक प्रस्तवित सुविधा तथा पर्यटन समूह के लिए पृथक पृथक टेंक तथा सोक–पिट बनाऐ जायें।

ज – प्रस्तावित मार्ग –

1– दशावतार मंदिर तथा देवगढ़ की वर्तमान बस्ती के पश्चिम से होते हुए एक बीस मीटर बाई पास मार्ग प्रस्तावित किया गया है जो वन विश्रामगृह के निकट ललितपुर–देवगढ़ मार्ग से मिलेगा।

2– वर्तमान स्थानीय बच्चे मार्गो को पक्का करके उन्हें वर्तमान तथा प्रस्तावित मार्गों से जोड़ने का प्ररताव है।

3– पहाड़ पर स्थित जैन समूह से प्रारंभ करके किले की दीवार के साथ तथा नाहर घाटी, राजघाटी, सिद्ध गुफा व बारह मंदिर के पास से होते हुए एक 12 मीटर चौड़ा वन मार्ग प्रस्तावित किया गया है। जो अन्त में जैन मंदिर समूह को जाने वाले मार्ग से मिलेगा।

श्र – अन्य अभिप्रस्ताव –

1– नाहर घाटी तथा उससे आगे बेतवा नदी के किनारे स्थित सती टीले के मध्य नौका विहार का प्रावधान किया जाये।

2– पर्यटकों की सुविधा हेतु राजघाट व सिद्ध गुफा को जाने वाली सीढ़ियों का जीर्णोद्वार किया जाये।

3– राजघाटी के पास बेतवा नदी पर घाट बनाये जायें जहां से नाहर घाट तक नौका, बिहार सुविधा प्राप्त हो सके।

4– मेले के अवसरों के लिए प्रस्तावित कैम्पिंग साइड, मेला स्थल , पार्किगं आदि के लिए निर्धारित भूमि को आरक्षित रखा जाये।

5– जैन मंदिर के सामने की दीवारों का जीर्णोद्वार किया जाये।

6– वर्तमान मूर्तियों, मंदिरों तथा अन्य पुरातात्विक स्मारकों का नवीनीकरण तथा जीर्णोद्वार किया जाये।

7– वर्तमान वन विश्रामगृह अभिनवीकरण किया जाये।

8– वर्तमान तथा प्रस्तावित मार्गो व पद मार्गो के किनारे फलदार व छायादार वृक्षों को नियोजित ढंग से लगाया जाये।

विकास क्रम :– देवगढ़ में पर्यटन विकास हेतु कोई भी प्राथमिक इन्फ्रास्ट्रक्चर एवं अन्य सुविधा उपलब्ध नहीं है। अतः विकास योजना में प्रस्तावित की गई इन सुविधाओं को उपलब्ध कराने हेतु समयानुसार दो चरणों में विभाजित किया गया है। विकास के प्रथम चरण (1999–2005) में जो इन्फ्रास्टक्चर सुविधाओं के प्रावधान करने का सुझाव दिया गया है। जो देवगढ में तुरन्त आवश्यक है। अन्य आवश्यकता सुविधाओं को द्वितीय चरण में उपलब्ध कराये जाने को प्रस्ताव है।[1]

मुनिधर सुधासागर जी एवं ऐलक निशंक सागर जी महाराज के सतत प्रेरण, प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन के फलस्वरूप 30 जिनालय तथा 500 जिनबिम्बों का जीर्णोद्वार किया गया। इन्हीं के सानिघ्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं पंच गजरथ समारोह 5 दिसम्बर 11 दिम्बर 1999 तक सम्पन्न हुआ। उ0 प्र0 शासन द्वारा इस महोत्सव के परिक्मा मार्ग हेतु छः लाख रूपये, पेय जल व्यवस्था हेतु 14 लाख रूपये, विघुत व्यवस्था के निमित्त 11 लाख रूपये, स्वास्थ्य एवं सफाई व्यवस्था के लिये एक लाख रूपये की धनराशियां प्रदान की गई। गल्ला मंडी एसोसियेशन, ललितपुर द्वारा पहाड़ी पर एक लाख गैलन क्षमता का एक पानी की टंकी का निर्माण कराया गया।[2] इस महोत्सव में वर्तमान 1999 की श्री देवगढ़ मैनेजिंग दिगम्बर जैन कमेटी के अध्यक्ष डा0 बाहुबलि कुमार जैन और महामंत्री श्री मुरारीलाल जैन, एडवोकेट के अनुसार प्राप्त पुलिस आंकड़ों के आधार पर, ढाई–तीन लाख पर्यटक व धर्म प्रेमी पधारे थे।

देवगढ़ में पर्यटन विकास के लिये उपरोक्त कार्यो के अतिरिक्त अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। देवगढ़ के अतिरिक्त जनपद ललितपुर के अन्य जैन मंदिर क्षेत्र निम्न हैं, जहां पर्यटन विकास की सम्भावना है।

1– देवगढ़ विकास योजना, (1999–2005), प्रकाशक नियंत्रक अधिकारी देवगढ़, पृ0 15,
2– श्री देवगढ़ क्षेत्र एवं जिनबिम्ब पूजन, मुद्रक, शक्ति प्रेस ललितपुर, 1991, पृ0 306,

मदनपुर – मदनपुर नवीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक की जैन वास्तुकला का जीता जागता निदर्शन है। झांसी से मदनपुर तक पक्की सड़क है और बसें बराबर आती जाती हैं। महरौनी से भी मदनपुर के लिये पक्का मार्ग बन गया है जो आगे जाकर बरौदिया कला पर झांसी–सागर राष्ट्रीय मार्ग से मिल जाता है। मदनपुर गांव से जैन मंदिर क्षेत्र तक का मार्ग भी बहुत सुन्दर बन गया है। चम्पोमढ़ और मोदीमढ़ जाने का मार्ग भी बन गया है। जंगल कटवा दिये गये हैं।[1]

इस गांव में थाना भी बन गया है जो क्षेत्र से 3–4 फर्लांग दूर है। इससे अब असुरक्षा का भय बिल्कुल नहीं है। थाने के निकट ही सरकारी डाक बंगला भी बना हुआ है।

क्षेत्र पर फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी से पंचमी तक प्रति वर्ष मेला भरता है। इस मेले में आस पास के हजारों जैन – जैनेतर व्यक्ति आते हैं और जिनेन्द्र देव के दर्शन करके एवं अन्य धार्मिक आयोजनों में सम्मिलित होते हैं।

यहां 1999 में पंचकल्याणक और गजरथ महोत्सव हुआ था। पंचकल्याणक में पहला गर्भ कल्याणक, दूसरा जन्म कल्याणक, तीसरा दीक्षा कल्याणक, चौथा ज्ञान कल्याणक और पांचवा मोक्ष कल्याणक और गजरथ फेरी का महोत्सव आयोजित हुआ था। मदनपुर मैनेजिंग दिगम्बर जैन क्षेत्र समिति के वर्तमान अध्यक्ष के अनुसार इस अवसर पर एक लाख व्यक्ति उपस्थित हुए थे और मदनपुर जैन क्षेत्र विकास हेतु उ0प्र0 शासन की ओर सबा दो लाख रूपये की धनराशि प्रदान की गयी थी।[2]

वर्तमान अध्यक्ष के अनुसार इस क्षेत्र के विकास हेतु स्व0 गणेश प्रसाद वर्णी ने विशेष योगदान दिया था।

1– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, संकलन, बलभद्र जैन, पृ0 203,
2– व्यक्तिगत साक्षात्कार, (जैन समिति के अध्यक्ष), जुलाई 2005,

बानपुर – बानपुर क्षेत्र ललितपुर से 41 मील, महरौनी तहसील से 9 मील और मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जनपद से केवल 6 मील की दूरी पर अवस्थित है। ललितपुर से महरौनी होकर सीधी बस सेवा है। टीकमगढ़ से बानपुर पहुंचने के लिये 5 मील की पक्की सड़क है। यहां से टैक्सी सुविधापूर्वक किराये पर मिल जाती है।[1]

बानपुर की दक्षिणी दिशा से बानपुर–महरौनी मार्ग पर दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र स्थित है। पुरातत्व की दृष्टि से यहां दसवीं शताब्दी से शिल्पकला दर्शनीय है।

पावागिरी – पावगिरि ललितपुर से 48 कि0मी0 और झांसी से 41 कि0मी0 है। मध्य रेलवे के तालबेहट या बसई स्टेशन से क्रमशः 14–13 कि0मी0 की दूरी पर पूर्व में है। कड़ेसरा तक सीमेंट रोड है। यहां से क्षेत्र केवल तीन किलोमीटर यह कच्चा मार्ग है लेकिन मोटर व जीप जा सकती है। क्षेत्र के पश्चिम में बेतवा नदी बहती है। उत्तर की ओर जो नदी बहती हे उसे नाला कहा जाता है तथा उसके कई नाम है। नाले को बांध के पास बेला नाला कहते हैं और दूसरे बांध के पास इसका नाम बैलोंताल है। यह ताल बहुत बड़ा है। आगे पहाड़ी की परिक्रमा करता हुआ यह नाला बैकोना नाम से पुकारा जाता है। किन्तु थोड़ी और आगे चलकर इसे बेलना कहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि यह बेलना चेलना का अपभ्रंश है। इस बेलना नदी का उल्लेख जैन पुराणों में कई बार हुआ है। चेलना नदी पर दो पुल बन चुके हैं।[2]

यहां संवत् 299 से संवत् 1345 तक की मूर्तिकला और स्थापत्य कला दर्शनीय है।

यात्रियों के ठहरने के लिए यहां धर्मशाला बनी है। क्षेत्र का वार्षिक मेला मंगसिर कृष्णा 2 से 5 तक होता है। 3 अप्रैल 2001 ई0 में यहां एक विशाल गजरथ मेले का आयोजन हुआ था, जिसने लाखों नर–नारियों ने इस पावन तीर्थ में आकर अपने को उपकृत किया।

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, अतिशय क्षेत्र बानपुर, ले0 कैलाश मड़बइया, पृ0 18,
2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, संकलक बलभद्र जैन, पृ0 198,

यह जैन क्षेत्र पुरातत्व की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही पर्यटन की दृष्टि से भी इसके विकास की प्रबल संभावना है।

सेरोनजी – सेरोनजी ललितपुर के उत्तर–पश्चिम में लगभग 20 कि0मी0 दूर स्थित है। यहां तक ललितपुर से राजघाट होते हुए अथवा बांसी से जखौरा होते हुए पहुंचा जा सकता है। जखौरा राजघाट राजमार्ग पर लगभग 2 कि0मी0 हट कर पूर्व में कच्ची सड़क से यह स्थान सम्बद्ध है।[1] दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र गांव से कुछ दूर पर स्थित है। 20 कि0मी0 सड़क पक्की है शेष कच्ची। क्षेत्र के पीछे की ओर लगभग एक फर्लांग दूर एक छोटी सी नदी खैडर बहती है।

यहां विक्रम संवत् 954 से लेकर वि0सं0 1451 तक के पुरातत्व अवशेष (जैन मंदिर व मूर्तियां) प्राप्त होते हैं। यहां ठहरने के लिये धर्मशाला है।[2]

26 नवम्बर से 2 दिसम्बर 2002 ई0 तक यहां पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव आयोजित हुआ था। सेरोनजी प्रबंधक दिगम्बर जैन समिति के अध्यक्ष के अनुसार यहां इस महोत्सव में 50000 से 60000 तक श्रद्धालु और पर्यटक आये थे, जिसमें अंतिम दिन 2 दिसम्बर 20025 को गजरथ फेरी के दिन सबसे अधिक भीड़ थी। इन्ही के अनुसार उ0प्र0 शासन से 50 लाख रूपये की धनराशि सेरोनजी क्षेत्र के विकास हेतु प्राप्त हुयी थी।[3] यहां पर्यटन विकास की और भी अधिक सम्भावना है।

ललितपुर– ललितपुर नगर जनपद ललितपुर का मुख्यालय है। मध्य रेलवे के बांसी–बीना जंक्शन के बीच ललितपुर स्टेशन है। यह नगर जैन तीर्थ क्षेत्रों का जंक्शन है क्योंकि इसके चारों ओर मामूली दूरी पर अनेक प्रसिद्ध जैन तीर्थ क्षेत्र हैं।

1– बुन्देलखण्ड का पुरातत्व ले0 डा0 एस0 डी0 त्रिवेदी, पृ0 84,
2– भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, संकलन बलभद्र जैन, पृ0 195,
3– व्यक्तिगत साक्षात्कार, (सेरोनजी, प्रबंधक जैन समिति के अध्यक्ष) जुलाई 2005,

ललितपुर नगर में वर्ष 1706, 1849, 1955 तथा 1979 में तथा 1999 पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें एवं गजरथ महोत्सव हुए थे। शहजाद नदी के डोढ़ा घाट के निकट बनी प्रतिष्ठा वेदिकायें इनके स्मारक हैं। 4 दिसम्बर 1993 ई0 में भी वहीं पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव मनाये जाने की योजना है जिसके लिए तैयारियां की जा रहीं हैं।

चांदपुर–जहाजपुर – चांदपुर गांव ललितपुर जनपद के बालाबेहट परगने में मध्य–रेलवे के ललितपुर–बीना लाइन पर थौर्रा स्टेशन से लगभग 3कि0मी0 पूर्व की ओर स्थित है। यह रास्ता पैदल ही तय करना पड़ता है। यहां देवगढ़ जाने वाली बस से भी जाया जा सकता हे परन्तु इसके लिए सैचुरा गांव में उतर कर लगभग 4कि0मी0 की दूरी पैदल तय करनी पड़ती है।[1] यहां के जैन मंदिर व मूर्तियां 10 वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी के मध्य की हैं। ऐतिहासिक पुरातत्व की दृष्टि से ये स्थान महत्वपूर्ण हैं।

दुधई – दुधई ललितपुर से दक्षिण में लगभग 27 कि0मी0 दूर है और धौर्रा स्टेशन से 10,1/2 कि0मी0 दक्षिण–पश्चिम की ओर घने जंगल के मध्य स्थित है। यहां पहुंचने के लिये यह रास्ता पैदल की तय करना पड़ता है। यहां भी 10वीं शताब्दी से 13 वीं शताब्दी के जैन मंदिर व मूर्तियां हैं। ऐतिहासिक पुरातत्व की दृष्टि से यह स्थान महत्वपूर्ण हैं।

इनके अतिरिक्त जनपद ललितपुर के मड़वरा नगर से 6कि0मी0 और 16कि0मी0 दूरी पर क्रमशः सिरौन और गिरार के जैन मंदिर क्षेत्र हैं। धार्मिक, एतिहासिक पुरातत्व की दृष्टि से इनका भी महत्व है लेकिन अभी तक इनका महत्व के बीच ही है। गिरार में मार्च महीने में प्रति वर्ष एक मेला भी लगता है।[2] इन्हें भी पर्यटन की दृष्टि से विकसित किया जा सकता है।

1– बुन्देलखण्ड का पुरातत्व ले0 डा0 एस0 डी0 त्रिवेदी, पृ0 88,
2– झाँसी गजेटियर, 1970, ई0 बी0 जोशी, पृ0 341–42,

जनपद के जैन मंदिर क्षेत्रों को पर्यटन की दृष्टि से विकसित करने के लिये केन्द्रों पर बिखरी हुयी सामग्री के पुरातत्व को एकत्र करके क्षेत्र में ही संग्रहालय में सुरक्षित करा कर उनको प्रदर्शित किया जाना चाहिए। मूर्ति भंजकों द्वारा काटे गए मूर्तियों के जो सिर वापस मिले हैं उन्हें संग्रहालय में प्रदर्शित न करके सम्बद्ध मूर्तियों से यथा स्थान संयुक्त देना चाहिये। जैन कला की तथा जिसके एक ओर लघु पर्वतीय श्रंखला स्थित है और दूसरी तरफ सघन वन, सैलानियों के आकर्षण का केन्द्र बन सकता है। इसी पर्यटन–पर्यक्षेत्र से जुड़ जाते हैं सरकार द्वारा स्वतंत्रता पश्चात् निर्मित अनेक बांध[1] – राजघाट, माताटीला, गोविन्द सागर, सुमेरा ताल, शहजाद बांध, जामनी बांध तथा सजनाम बांध।

इन सबको पर्यटन की दृष्टि से विकसित कर पर्यटकों के आकर्षण और मनोंरंजन का केन्द्र बनाया जा सकता है।

सोनागिरी – सोनागिरी मध्य प्रदेश के दतिया जिले में आता है यह झाँसी–दिल्ली रेल्वे लाइन पर झाँसी से 35 कि0मी0 दूर पर स्थित है। छोटा कस्बा होने के कारण यहाँ वर्ष में मेला लगता है जिसमें भाग लेने के लिए सम्पूर्ण भारत वर्ष से जैन धर्मालम्बी आते हैं मेले के दिनों यहाँ कई महत्वपूर्ण ट्रेनों को विशेष रूप से रोका जाता है ताकि मेले में आने वाल दर्शनार्थियों को असुविधा ना हो।

सोनागिरी का मुख्य आर्कषण यहां के जैन मंदिर है जो कि पहाड़ी पर श्रंखलाबद्ध रूप से स्थित हैं। पहले यहाँ पर्यटकों व दर्शनार्थियों को ठहरने आदि में बहुत असुविधा उत्पन्न होती थी क्योंकि यहां धर्मशालाओं व गेस्ट हाउस का अभाव था।[2]

सन् 1989 में जैन मुनि श्री सुखसागर जी एवं उनके शिष्यों के सतत प्रयास व मार्गदर्शन से 15 धर्मशालाओं का निर्माण हुआ उन्ही के सानिध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं पंच गजरथ समारोह 5 दिसम्बर से 11 दिसम्बर 1990 तक सम्पन्न हुआ। म0प्र0 शासन द्वारा मंदिर मार्ग के नवीनीकरण हेतु 20 लाख रू पेय जल व अन्य व्यवस्थाओं के लिए 15 लाख रू की धनराशि प्रदान की गयी।

1– श्री देवगढ़ क्षेत्र एवं जिन–बिम्ब पूजा, (संक्षिप्त क्षेत्र–परिचय सहित),मुद्रक, शक्ति प्रेस, ललितपुर, 1991,

2– बुन्देलखण्ड तीर्थ विशेषांक, अतिशय क्षेत्र सोनागिर, ले0 बलभद्र जैन, पृ0 41,

यहां सभी मंदिर पहाड़ी पर बने हुये हैं मंदिर तक पहुँचने के लिये घोड़ा गाड़ी पिठ्ठू आदि उपलब्ध रहते हैं, मंदिर मार्ग में जगह–जगह पर प्याऊ खुले हैं जिससे कि मार्ग की थकान दूर करने के लिए दर्शनार्थियों को पेयजल मिल सके साथ ही रूकने के लिए धर्मशालायें भी बनी हैं।[1]

करगुवांजी – झाँसी कानपुर मार्ग पर कैमासन पहाड़ी से लगी पहाड़ियों के मध्य करगुवां ग्राम में स्थित जैन मंदिर की गणना बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध जैन तीर्थ स्थलों में होती है नगर के जैन मतालम्बियों के लिये इस स्थल का बहुत महत्व है। यहाँ श्री शांतिनाथ जी, श्री आदिनाथ जी, श्री पार्श्वनाथ जी व श्री नेमिनाथ जी की मूर्तियां स्थापित हैं।

यह स्थल नगर से दूर होने के कारण पहले यहाँ कम लोग ही जाते थे, मगर विकास की गंगा बहने से इस क्षेत्र का भी उद्धार हुआ है।

मंदिर परिसर काफी विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ के लहराते वृक्ष व छायी हरियाली के बीच मन को अभूतपूर्व शान्ति का अनुभव होता हे। जैन समाज के उत्साही कार्यकताओं के सद् प्रयासों से यह क्षेत्र अब बहुत विकसित हो गया है तथा दर्शनार्थियों के अलावा विदेशी पर्यटकों के लिये महत्वपूर्ण स्थल बन गया है। झाँसी रेल्वे स्टेशन से टैक्सी, बस द्वारा यहां आसानी से पहुँचा जा सकता है। रूकने के लिये यहाँ जैन धर्मशाला है खान पान की आवश्यक वस्तुयें यहाँ आसानी से सुलभ हो जाती हैं।[2]

नगर के संभ्रात जैन समाज द्वारा यहाँ प्रतिवर्ष विशाल मेला का आयोजन किया जाता हे। जिसमें विभिन्न जैन मुनियों द्वारा प्रवचन किये जाते हैं भारी संख्या में श्रद्धालु लोग यहाँ आकर अमृतवाणी का श्रवण करके अपना जीवन धन्य बनाते हैं।

1– बुन्देलखण्ड तीर्थ विशेषांक, अतिशय क्षेत्र सोनागिर, ले0 बलभद्र जैन, पृ0 42,
2– बुन्देलखण्ड दर्पण झाँसी महोत्सव, 1998, पृ0 52–53,

अध्याय–आठ

उपसंहार

अध्याय–8

उपसंहार

बुन्देलखण्ड को मध्य भारत का वह भाग मानते हैं जिसकी पूर्वी सीमा बघेलखण्ड से मिलती है। इसके उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पष्चिम में चंबल एवं पूर्व में स्थित टोंस नदी इस क्षेत्र की प्राकृतिक सीमाओं का निर्धारण करती है।

बुन्देलखण्ड दस नदियों अर्थात दशार्ण क्षेत्र था। इस क्षेत्र में जालौन के ग्राम जगम्मनपुर के समीप चम्बल, पहूज, काली सिंध और क्वारी नदियों का संगम यमुना से होता है। इस स्थान को पचनंद भी कहा जाता है। इस क्षेत्र की शेष पांच नदियों में बेतवा (वेत्रवंती) मंदाकिनी, केन तमसा और धसान है। इस कारण इस क्षेत्र को 'दशार्ण' नाम से जाना गया है।

जनपद ललितपुर, जो कि पुराने जनपद चन्देरी एवं नरहट ताल्लुका का एक भाग एवं बानपुर व शाहगढ़द्य के राजाओं का पुराना कस्बा था, 1860ई0 में ब्रिटिश सरकार के प्रशासन का एक नया जिला बना। लेकिन दिसम्बर, 1891ई0 में जनपद ललितपुर का विलीनीकरण झांसी जनपद में हो गया था। एक मार्च, 1974ई0 को जनता की मांग पर समुचित विकास ललितपुर बनाया गया। इस जनपद में पूर्व ऐतिहासिक काल से लेकर अंग्रेजी शासन काल तक के क्मिक पाषाण काल, ब्राह्मण काल, चेदि काल, अभिरस काल, मपत काल, गोंड काल, चन्देल काल, मुस्लिम काल, चंन्देल शासन काल और अंग्रेजी शासन काल के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।

वर्तमान काल का यह पिछड़ा और गरीब जनपद प्राचीन और मध्य कालों में सामाजिका दृष्टि से सभय, सरल, शान्त, धार्मिक उदारता तथा निष्ठा से सम्पन्न और अर्थिक दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न था। यहां जैन धर्म का काफी प्रभाव रहा था। फलस्वरूप जैनियों की संख्या भी यहां अधिक रही थी। सामाजिक आर्थिक सम्पन्नता के कारण ही यहां की जैन स्थापत्य और मूर्ति कला का सम्यक विकास सम्भव हो सका है। यहां की जैन स्थापत्य और शिल्प सामग्रियां दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। विभिन्न लेखों से स्पष्ट है कि यहां के अधिकतर जैन मंदिर और

मूर्तियां लोगों के दान और सहयोग से ही निर्मित हुए थे। यहां जैन धर्म को राजकीय समर्थन के कुछ ही प्रमाण प्राप्त होते हैं।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में देवगढ़, चांदपुर–जहाजपुर, दुधई, मदनपुर, बानपुर, पावागिरि, सिरौन, सेरोनजी, गिरार, ललितपुर, झाँसी, खजुराहो, सोनागिरी जैन मंदिरों और मूर्तियों के केन्द्र स्थल हैं। इनका निर्माण गुप्त काल से उत्तर मुगल काल तक होता रहा था। देवगढ़ मंदिर सं0 12 के महामण्डप से प्राप्त एक अभिलेख (ज्ञान शिला) की लिपि मौर्यकालीन दाहिनी भित्ति से पर्याप्त समानता रखती है। इसी प्रकार पावागिरि की बावड़ी की खुदायी में प्राप्त एक तीर्थकर मूर्ति पर संवत् 299 अंकित है। यह उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि यहां गुप्त काल में जैन मंदिरों और मूर्तियों के निर्माण हुए थे। देवगढ़ मंदिर सं0 12 के अर्धमण्डप के दक्षिण–पूर्वी स्तंभ पर उत्कीर्ण वि0सं0 919 के अभिलेख से स्पष्ट होता है कि गुर्जर प्रतिहारों के शासन में यहं की जैन स्थापत्य और मूर्ति कला को पर्याप्त समृद्धि प्राप्त हुयी थी। चन्देल काल में इस जनपद में सर्वाधिक मंदिर व मूर्तियां निर्मित हुए थे। बुन्देलों के समय में भी कई मंदिर बने थे। मंदिर और मूर्ति निर्माण का यह क्म अनवरत यप से विक्म की 19वीं शती तक चलता रहा। मंदिर और मूर्तियों के निर्माण की प्रकिया अविछिन्न रूप से इतने दीर्घ काल तक भारत के गिने चुने स्थानों में ही मिलती है।

लगभग 1600 वर्षो की दीर्घ अवधि में निर्मित होते रहने से इन स्मारकों की विन्यास रेखा आदि में समानता नहीं आ सकी। उसका स्थितक्म भी किसी सरल या सुनियोजत रेखा में नहीं है। इसी प्रकार उनके अंगों और उपांगों की संरचना में भी किसी निश्चित सिद्धान्त का निर्वाह नहीं हो सका है।

कुछ स्मारक साधुओं और भट्टारकों के निवास और समाधि के रूप में निर्मित हुए थे जिन्हें कालान्तर में मंदिरों का रूप दे दिया गया। इनके उदाहरण हैं देवगढ़ मंदिर सं0 2, 8, 14, 21 और 27।

कुछ मंदिर शास्त्रीय विधान के विरूद्ध दक्षिण–मुख भी हैं इनके उदाहरण हैं देवगढ़ मंदिर सं0 4, 18, 19, 20, 22, 24, 28, और 31 तथा लघु मंदिर सं0 3।

ऐसे स्मारक गिने चुने ही अवशिष्ट हैं जिनका मौलिक तथा सम्पूर्ण रूप अब भी विघमान हो । कुछ स्मारक तो पूर्णरूपेण भूमिगत हो गये हैं। केवल कुछ भग्न अधिष्ठान आद से ही उनके अस्तित्व का अनुभव होता है। चांदपुर–जहाजपुर, दुधई, मदनपुर, बानपुर, पावागिरि, सिरौन, और सेरोनजी आदि स्थानों में तो प्रायः सभी मंदिर जीर्ण–जीर्ण अवस्था में हैं। तमाम जैन मंदिरों के तो खण्डहर ही शेष हैं। सेरोनजी में तो क्षेत्र के आस–पास 2–3 मील के घेरे में प्राचीन मंदिरों के अवशेष के रूप में 42 टीले गिने जा सकते हैं। इसी प्रकार मदनपुर में पंचमढ़, खण्डित मढ़, चम्पोमढ़, मोदीमढ़ में मंदिरों के खण्डहर मात्र शेष हैं। इस दृष्टि से देवगढ़ की स्थिति ठीक कही जा सकती हैं। लेकिन यहां भी कुछ स्मारक ध्यवस्त हुए हैं और कुछ अंशतः ध्वस्त हुए हैं। अंशतः ध्वस्त हुए मंदिर के रूप में मंदिर सं0 3 उल्लेखनीय है जिसके दो तलों में से एक ही अवशिष्ट है।

इन मंदिरों के जीर्णोद्वार के कार्य भी हुए हैं। लेकिन अधिकतर देवगढ़ में ही ऐसो कार्य हुए हैं। प्रारम्भ में सेरोनजी, मदनपुर में जीर्णोद्वार कर्ताओं ने स्मारकों की मौलिकता को सुरक्षित रखने की ओर पर्याप्त ध्यान दिया था लेकिन वर्तमान में हुए जीर्णोद्वार के काम में इस पर बहुत कम ध्यान दिया गया जिससे उसकी मौलिकता पर असर पड़ा है। भविष्य में यहां की जैन प्रबन्ध समिति को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये जिससे इन स्मारकों की मौलिकता सुरक्षित रहे।

जनपद ललितपुर के जैन मंदिर क्षेत्रों के भूगर्भ में पर्याप्त सामग्री के दबे रहने के प्रमाण प्रायः मिलते हैं। जैसे सेरोनजी में मंदिरों के परकोटे के बाहर दांयी ओर 1961 में खुदाई हुयी थी। फलस्वरूप वेदी निकली, अनेक स्तंभ, मूर्तियां और धर्मचक्र निकले। अनुमान है कि यहां कोई विशाल मंदिर रहा होगा। इसी प्रकार से देवगढ़ में जैन प्राचीर की नींव खोदते समय ईटों की प्राचीन भित्तियां और अनेक प्रतिमायें प्राप्त हुयी थीं। वस्तुतः सभी जैन मंदिर क्षेत्रों में अब तक उत्खनन कार्य नहीं किया गया है। अतः केन्द्रीय तथा राज्य शासनों को यहां वैज्ञानिक उसवनन कराने की व्यवस्था करनी चाहिये जिससे पुरातत्व संबंधी तमाम महत्वपूर्ण सांस्कृतिक रहस्यों को सुलझाया जा सके और मानवता अपनी अद्भुत सांस्कृतिक धरोहर से परिचित हो सके।

शैली की दृष्टि से जनपद ललितपुर के जैन मंदिर नागर शैली के अन्तर्गत आते हैं मंदिर वास्तु की दृष्टि से जनपद के मंदिरों में शास्त्रीय विधान का पूर्ण निर्वाह न होने पर भी सर्वतोभद्र, पूर्णभद्र, षोडशभद्र, पंचायतन आदि शैलियों का परिपूर्ण निदर्शन उपलब्ध होता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से बुंदेल काल तक मंदिर वास्तु का जो विकास हुआ उसका स्पष्ट प्रभावांकन यहां के मंदिर वास्तु में परिलक्षित होता है।

जैन मंदिरों के सम्मुख विशाल स्तंभ बनवाने की प्रथा विशेषतः दिगम्बर जैन समाज में रही है। जैन परम्परा में स्तंभों को मान स्तंभ का रूप देकर मंदिरों के सामने निर्मित किया जाता रहा है। मथुरा के अनन्तर सर्वाधिक प्राचीन मान स्तंभ कदाचित देवगढ़ में ही उपलब्ध हुए हैं। सूक्ष्म सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि यहां मान स्तंभ जैसे कुछ स्मारक स्थानान्तरित भी किये गये हैं।

जनपद ललितपुर की जैन कला में तीर्थकरासें देव–देवियों विघाघरों, साधु–साध्वियों और श्रावक–श्राविकाओं की मूर्तियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। अन्य मूर्तियों की अपेक्षा तीर्थकरों की मूर्तियां कई गुनी अधिक हैं। मुख्य रूप से आदिनाथ (ऋषभनाथ), पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, शान्तिनाथ और महावीर की ही मूर्तियां अधिक हैं। कुछ मूर्तियों पर लांछन अंकित नहीं हैं। कुछ मूर्तियों पर उत्कीर्ण लांछन शास्त्रीय मान्यताओं के विरूद्ध प्रतीत होते हैं। जैसे जटाधारी ऊँचे मूर्तियों के साथ बन्दर, शंख, फणावलि तथा फणावलियुक्त मूर्तियों के साथ चकवा, और अम्बिका यक्षी एवं आदिनाथ अभिलिखित होने पर भी सिंह लांछन उक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं। भारतीय मूर्ति कला के इतिहास में यहां की मूर्तियों का योगदान अद्वितीय है। जनपद में उपलब्ध 2 इंच से लेकेर 18फी0 तक की विशालकाय तीर्थक्र मूर्तियों के अतिरिक्त 24 यक्षियों, विघाघरों एवं उपासकों की मूर्तियों के निदर्शन भारतीय कला में अत्यन्त विरल हैं।

जनपद की जैन कला में निदर्शित युग्म और मण्डलियों तथा विभिन्न प्रतीकों के शिल्पांकन भारतीय कला में अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं।

प्रारंभ में यहां के स्थपतियों तथा शिल्पियों ने अध्यात्म प्रधान कृतियां निर्मित की लेकिन कालांतर में भट्टारकों के प्रभाव की वृद्धि के साथ यह प्रवृत्ति क्षीण

होती गयी और उत्तरोत्तर भौतिक उपलब्धिओं पर बल दिया जाने लगा फलस्वरूप कला में निखार और विविधता तो अवश्य आयी, परन्तु उसमें प्राणतत्व का ह्रास होता गया। सात्विकता और मौलिकता गुप्तोत्तर काल में क्षीण से क्षीणतर होती गयी। भट्टारकों ने जैन कला को कितना ही समृद्ध बनाया हो पर उन्होंने जैन साहित्य की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

यहां के कला प्रेरकों और कलाकारों का झुकाव गुणवत्ता की अपेक्षा परिमाण की ओर अधिक रहा है। यही कारण है कि यहां सहस्त्रों मूर्तियॉ गाढ़ी गयीं पर कलागत विलक्षणता की दृष्टि से गिनी–चुनी मूर्तियों का ही उल्लेख किया जा सकता है। जनपद ललितपुर में इतने अधिक वास्तु तथा शिल्प पुरातत्व सामाग्री होने के बावजूद भी पर्यटन की दृष्टि से इसका विकास अभी नहीं के बराबर ही हो सका है। केवल देवगढ़ ही थोड़ा–बहुत पर्यटन की दृष्टि से विकासित हो सका है। जनपद के जैन मंदिर स्थलों में पर्यटन के विकास की सम्भाव्यता तो है लेकिन अभी तक इसके विकास के लिए प्रयत्न नहीं किये गये हैं। अतः जनपद में पर्यटन के विकास के लिये आवश्यक तत्वों को विकसित करने की अति आवश्यकता है।

यदि इस क्षेत्र के जैन मंदिर क्षेत्रों और उनके आस–पास के रमणीक प्राकृतिक स्थलों तथा धर्म स्थलों के विस्तृत परिक्षेत्र को पर्यटन स्थल के रूप में विकसित किया जा सके तो यह तथाकथित पिछड़ा क्षेत्र पर्यटकों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र अर्थात् पर्यटकों का स्वर्ग बन सकता है।

परिशिष्ट–1

क्मांक – 1 –

राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित शिलाफलक देवगढ़ से प्राप्त अभिलेख का 32वां अनुच्छेद –

32 दीये उपमं सोमः स जीयाद्धोलिशंकरः 113 प्रातः कालीयरागदलदखिलतमोरेगुरैयादपद्महृत्पद्मोल्लासिलक्ष्य मस्तरूण .... चंचच्चान्द्रीयश्रवाकलंक सकलकुवलये साधुतां होलिसाधोः 114 अग्रोतकान्वये गर्गगोत्रे हाटबुधांगजाः

क्मांक – 2 –

देवगढ़ की जैन धर्मशाला में सुरक्षित अभिलेख वि0सं0 1493 संवत् 1493 शाके 1368 वर्षे बैशाख बदी 5 गुरौ दिने मूलनक्षत्रे श्रीमूलसंपे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छ कुन्दकुन्दाचार्यान्वेय भट्टारकः श्रीप्रमाचन्द्रदेवः तचिछ्ष्यः वादवादीन्द्रभट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवः तच्छिष्य/श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवस्तत्योदारपादान्वेय अष्टशास्वे आहारदान दानेश्वरः श्रीसिंघई लक्ष्मणः तस्य भार्या अक्ष्यश्रीः तस्या कुक्ष्यानुत्पन्नः सिंघई अर्जुनस्तस्य भार्या क्षेमा त (त्र) तः जातः खेमराजः तत्भर्या खियुसिणि संघाधिपतिरर्जुनस्ततपुत्रः संघाधिपतिः सिंघई जुगराजः तस्य भार्या गुणश्रीः सुबंन्धववंघस्ततपुत्रभार्या पद्मश्रीः तत्पुत्रः बंवबं रामदेवः तत्भार्या कालश्रीः तत्पुत्रः सिंघई चतुर्थवतः तत्भार्या रव्युश्रीः रव्युराजः तस्य पुत्रः म्युराजश्च म्युश्रीः तस्य भार्या सघनपतिः तत्पुत्रः भ्राता बेनुः श्री शान्तिनाथ चैत्यालये सकलकला प्रवीणः पद्मस्तस्य भार्या पूर्णश्रीः तस्याः पुत्रः पंडितनयनसिंहस्तेन प्रतिष्ठित संघाधिपतिः सिंघई जुगुराजः तेनकर्मक्षयनिमित्ते नेदंकारित नित्यं प्रणमान्त। सूत्रधारः जैनसि पुत्रक कर्मचन्द्रः सघनपतिः तत्पुत्रः जिनः तस्य पुत्र संघपेन सासा सूत्रधारः। येन कृतगिदं नित्यं प्रणमन्तीति।

क्मांक – 3 – विक्रम संवत् 1693, मंदिर संख्या सात में चरणपादुक्ताओं पर उत्कीर्ण अभिलेख।

ओम नमः सिद्धेभ्यः गुरूपूज्यपाद .... ज्ञानदर्शनचारित्र मोक्ष मार्गश्रीललितकीर्ति भट्टारक–वध देवलोवन शान्तिनाथ सं : 1693 फाल्गुन सुदी 8

विक्‌मादित्य साके सालवाहन तस्यांनगरी वर्तते महाराजाधिराज देवीसिंह तस्य पद्‌मनी सुजानकुमारी दुहिता राणितं कुरिग दीक्षिते ललितकीर्ते सं0 1695 पौष सुदी 2 वर्तमान दिनधरी दीक्षा 611 मोक्षप्राप्ते श्रीसागरे देशजाति देशकरनाटकी अठारा लिखा गोलपूरब गोपालगढ़।

सहायक ग्रन्थ सूची

(1) अमर सिंह : अमर कोष, सम्पादक पं0 हरगोविन्द शास्त्री, बनारस, 1957ई0

(2) आशाधर : प्रतिष्ठासारोद्वार, संपादक पं0 मनोहर लाल शास्त्री, बम्बई, 1974ई0

(3) कालिदास : कुमार सम्भव, संपादक तेजराम शास्त्री पाण्डेय, काशी, 1961ई0

(4) जिनप्रभसूरि : विविध तीर्थकला, सम्पादक मुनि जिनविजय, कबलकत्ता, 1934

(5) ठक्कुर केरू : वस्तुसार प्रकरण , संपादक–पोपटभाई आबाशंकर मनकड़, बड़ौदा, 1950ई0

(6) डा0 द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल : प्रतिमा विज्ञान, लखनऊ, सं0 2013

(7) भुवनदेव आचार्य : अपराजित पृच्छा, सम्पादक–पोपटभाई अम्बाशंकर मनकड़, बड़ौदा, 1950ई0

(8) भोज : समसंगण सूत्रधार, खण्ड एक, संपादक–टी0 गणपति शास्त्री, बड़ौदा, 1924

(9) बतिवृषभ आचार्य : तिलोयपण्णति, सम्पादक–आ0ने0 उपाध्याय तथा डा0 हीरालाल जैन, शोलापुर, 1943ई0

(10) बराह मिहिर : वृहत सहिता, बंगलौर, 1947ई0

(11) डा0 उमाकान्त प्रेमानन्दशाह, : स्टडीज इन जैन आर्ट, बनारस 5, 1955ई0

(12) डा0 उर्मिला अग्रवाल : खजुराहो स्कल्पचर्स एण्ड देयर सिग्निफिकेन्स, दिल्ली, 1964

(13) एलन : केटलागआफ क्वाइन्स आफ एन्शियेन्ट इंडियइन दि ब्रिटिश म्युजियम, चन्दन, 1936ई0

(14) पं0 कल्याणकुमार जैन शशि : देवगढ़ काव्य ललितपुर 1939ई0

(15) डा0 कृष्णदत्त बाजपेयी : उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक एतिहास आगरा, 1959ई0

(16) डा0 कृष्णदत्त बाजपेयी : उत्तर प्रदेश की एतिहासिक विभूति, लखनऊ, 1957ई0

(17) डा0 कृष्णदत्त बाजपेयी : भारतीय संस्कृति में मध्य प्रदेश का योगदान, इलाहाबाद, 1967ई0

(18) डा0 कृष्ण दत्त बाजपेयी : युग–युगों में उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1954ई0

(19) गोरेलाल तिवारी : बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, काशी सं0 1990

(20) प्रेमसागर : अतिशय क्षेत्र देवगढ़ पूजा, ललितपुर वी0सं0 2454

(21) पी0 एन0 लूनिया : प्राचीन भारतीय संसकृति, आगरा–3, 1966ई0

(22) वी0 सी0 भट्टाचार्य : जैन आईकानोग्राफी, लाहौर, 1939ई0

(23) श्रीमती माधुरी देसाई : श्री गुप्ता टेम्पिल एट देवगढ़, बम्बई 1958ई0

(24) विशम्भरदास भार्गवेः देवगढ़ के जैन मंदिर , ललितपुर , 1922

(25) अमलानन्द घोष : जैन कला एवं स्थापत्य, तीन भाग, नई दिल्ली , 1975ई0

(26) लुइस फ्ड्रिक : इण्डियन टेम्पिल्स एण्ड स्कल्पचर, लन्दन, 1959ई0

(27) शीतल प्रसाद : संयुक्त प्रान्त के प्राचीन जैन स्मारक, इलाहाबाद, 1932ई0

(28) डा0 सत्येनारायण दुबे : प्राचीन भारत का इतिहास, आगरा – 1967ई0

(29) डा0 स्टेना क्रेमरिश : दि हिन्दू टेम्पिल्स, जिल्द दो कलकत्ता, 1946ई0

(30) हरि प्रसाद "हरि" : देवगढ़, ललितपुर, 1954ई0

(31) डा0 हंसराज धीरजमुख संकालिया : जैन आइकोग्रेफी ए वालूम आफ इण्डियन इरानियन स्टडीज, बम्बई

(32) डा0 हीरा लाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल, 1962ई0

(33) अबुल फजल, आइने अकबरी : अनुवाद–एच0एस0जेनेट और सरकार भाग–2 कलकत्ता, 1949ई0

(34) केशव चन्द्र मिश्र : चन्देल और उनका राजत्वकाल, वाराणसी, 1974ई0

(35) एस0 ही0 त्रिवेदी : फ्रीडम स्ट्रगिल इन उ0प्र0 भाग– 1 और 3 ,लखनऊ 1957ई0–1959ई0

(36) एस0 ए0 ए0 रिजवी : फ्रीडम स्ट्रगिल इन उ0प्र0 भाग– 1 और 3, लखनऊ 1957ई0–1959ई0

(37) सच्चिदानन्द भट्टाचार्य : भारतीय इतिहास कोष

(38) डा0 आयोध्या प्रसाद पाण्डेय : चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रयाग, 1968ई0

(39) डा0 आर्शीवादीलाल श्रीवास्तव : मुगलकालीन भारत, दिल्ली, 1983ई0

(40) आर0 के0 दीक्षित : चन्देलाज आफ जैजाकभुक्ति, नई दिल्ली, 1977ई0

(41) हेमचन्द्ररा : डायनेस्टिक हिस्ट्री आफ चन्देलाज, कलकत्ता 1956ई0

(42) आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : भारत का इतिहास, आगरा , 1955

(43) एन0 एस0 बोस : हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग–3 द्वितीय संस्करण, दिल्ली 1965ई0

(44) सर बुल्जेले हेग : केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया , भाग–3 द्वितीय संस्करण, दिल्ली 1965ई0

(45) अनु0 मेहंदी हसन : इब्नबतूताज रेहला, बड़ौदा, 1953ई0

(46) आगा मेंहदी हसन : दी राइज एण्ड फाल आफ मोहम्मद बिन तुगलक,

(47) एस0 ए0 ए0 रिजवी : उत्तर तैमूर कालीन भारत भाग 1 और 2 अलीगढ़, 1955ई0, 1959ई0

(48) भगवान दास श्रीवास्तव : बुन्देलों का इतिहास दिल्ली, 1982

(49) रतिभानु सिंह नाहर : पूर्व मध्यकालीन भारत, इलाहाबाद, 1958ई0

(50) इलियट तथा डाउसन : हिस्ट्री आफ इण्डिया, कलकत्ता, 1933ई0

(51) शमशुद्दौला शाहनवाज खान : दि मासिर–उल–उल्लाह भाग 1 और 2, अनु0 वाई0 एच0 विबरेज, कलकत्ता 1941ई0, 1952ई0

(52) अनुवादक ए0 रोजर्स एवं एच0 वेवेरिज तुजके जहांगीरी भाग–1, लन्दन, 1909ई0

(53) लक्ष्मण सिंह गौड़ : ओरछा का इतिहास

(54) बी0 पी0 सक्सेना : हिस्ट्री आफ शाहजहां आफ दिल्ली, इलाहाबाद, 1948ई0

(55) राधाकृष्ण बुन्देली एवं श्रीमती सत्यभामा बुन्देली बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक मूल्यांकन, भाग–1 बांदा, 1989ई0

(56) गोविन्द सखाराम सरदेसाई : मराठों का नवीन इतिहास खण्ड 2, आगरा, 1961ई0

(57) सी0 के0 श्रीनिवास : वाजीराव फर्स्ट द ग्रेट पेशवा, बम्बई, 1962ई0

(58) इण्डिया दी रिवोल्ट आफ सेन्ट्रल इण्डिया (1857–59), शिमला, 1908ई0

(59) एल0 पी0 राय चौधरी : सोयल्स आफ इण्डिया, आईसी0ए0 आर0 नई दिल्ली, 1963,

(60) इलियट तथा डाउसन : हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाई ड्ड्स ओम हिस्टोरियन, भाग–1 पेरिस, 1861ई0

(61) ए0 एस0 आल्टेकर : दि राष्ट्रकूट्स एण्ड देयर टाइम्स, पूना, 1934,

(62) अलबरूनी : किताबुल हिन्द अनुवादक ई0सी0 सचान भाग–1 लन्दन , 1914,

(63) कल्हण : राजतरंगिणी स्टीन द्वारा संपादित अनुवादित बाम्बे, , 1852ई0

(64) बालभद्र जैन – संकलन–संपादक भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, प्रथम भाग, बम्बई, 1974ई0

(65) डा0 भाग चन्द्र जैन : देवगढ़ की जैन कला एक संस्कृतिक अध्ययन नई दिल्ली , 1974ई0

(66) ए0 एस0 आल्टेकर : दी पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, बनारस, 1938,

(67) बी0 एन0 लूनिया : भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, आगरा, 1966ई0

(68) सत्यकेतु विशालंकर : भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास मसूरी, 1956ई0

(69) अमलानन्द घोषः जैन कला एवं स्थापत्य खण्ड 1.2.3–.भारतीय ज्ञानपीठ. दिल्ली

(70) शीतल प्रसादः वृहत जैन शब्दार्णद – द्वितीय खण्ड, सूरत 2460 वि0नि0सं0

(71) आचार्य वसुनन्दि : वसुनन्दि श्रावकाचार्य, काशी, 1952,

(72) डा0 एस0 पी0 पाठकः, झांसी ड्यूरिंग दि ब्रिटिश रूल, दिल्ली, 1987ई0

(73) डा0 मारूतिनन्दन प्रसाद तिवारी : जैन प्रतिमा विज्ञान, वाराणसी, 1981ई0

(74) एन0 के0 कुमार स्वामी : हिस्ट्री आफ इण्डियन आर्ट, लिपजिन, 1926ई0

(75) ओ0 पी0 टण्डन जैन : श्रीइन्स इन इण्डिया, भारत सरकार प्रकाशन, 1986ई0

(76) शिवनारायण सिंह राना : भारत भूमि का इतिहास 1988 ई0

(77) जिंनसेन : महापुराण आदिपुराण भाग– 1, 2 काशी, 1951ई01954ई0

(78) बल्देव उपाध्याय : पुराण विमर्श, बनारस, 1965ई0

(79) सैयद मुजफ्फर अली : ज्योग्राफी आफ दि पुराणय् , नई दिल्ली, 1966ई0

(80) हैनरिच जिम्भर : दि आर्ट आफ इण्डियन एशिया, जिल्द–1 न्युयार्क, 1954ई0

(81) नाथूराम प्रेमी : जैन सहित्य और इतिहास, बम्बई, 1956ई0

(82) डा0 विघाधर : जुहरापुरकर भट्टारक सम्प्रदाय, शोलापुर,

(83) सर जान मार्शल : दि मोनूमेन्ट्स आफ सांची, जिल्द–1

(84) भारती विघा भवन : दि एज आफ इम्पीरियल, कन्नौज, जिल्द–4 बम्बई, 1960ई0

(85) उत्तम चन्द्र राकेश शास्त्री : देवगढ़ दर्शन ललितपुर, 1975ई0

(86) क्लाउज ब्रून : दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़ (स्टडीज इन साउथ एशियन कल्वर, एडिटेड फार दि इन्सटीट्यूट आफ साउथ एशियन आर्कीलोजी, युनिवर्सिटी आफ आर्म्सटर्डम बाई जे0 ई0 वान लोहनी जैन – डी0 लीव, वोतूम–1) लिडेन, 1969ई0

(87) महर्षि वेदव्यास : अग्निपुराण, आचार्य वल्देव उपाध्याय द्वारा संपादित, वाराणसी, 1966ई0

(88) वेदव्यास : गरूण पुराण, डा0 रामशंकर भट्टाचार्य द्वारा संपादित, वाराणसी, 1964ई0

(89) मुनि शान्त : सागर खण्डहरों का वैभव, काशी, 1959ई0

(90) बलराम श्रीवास्तव : रूपमण्डन, बनारस सं0 2021,

(91) डा0 श्रीमती पंकजलता श्रीवास्तव : हिन्दू तथा जैन प्रतिमा विज्ञान, लखनऊ

(92) हीरा लाल सिद्धान्त शास्त्री : जैन धर्मामृत, काशी, 1960ई0

(93) देवसेन सूरि दर्शन सार : पं0 नाथूराम प्रेमी, द्वारा संपादित, बम्बई सि0 सं01974

(94) श्रुति सागर सूर्यः (षट् प्राभृल) आचार्य कुन्दकुन्द के अष्ट पाहुड पर संस्कृत टीका, बम्बई वि0सं0 1977,

(95) योगेन्द्र देव : परमात्म प्रकाश, ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका, बम्बई सं0 1978ई0

(96) एस0 डी0 त्रिवेदी : स्कल्पचर्स इन दि झांसी म्यूजियम, झांसी, सं0 1978

(97) एस0 ए0 ए0 रिजवी : तुगलक कालीन भारत भाग–1, 2 , अलीगढ़ 1956ई0, 1957ई0

(98) डा0 विभूतिभूषण मिश्र : गुर्जर प्रतिहार एण्ड देयर टाइम्स, दिल्ली, 1961ई0

(99) विन्सेन्ट ए0 स्मिथ : ए हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन, बम्बई तृतीय संस्करण,

(100) अनिक साहू : मदनपुर (जिला–ललितपुर) की मूर्ति कला का अध्ययन सागर वि0वि0 की एम0 फिल0 उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबंध,

(101) वन्दना जैन : सिरोन खुर्द से प्राप्त मूर्तिकला का अध्ययन (सागर वि0वि0 की पी0एच–डी0 उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबंध)

(102) महेन्द्र कुमार वर्मा : चांदपुर–दुधई की चन्देली कला और संस्कृति (कानपुर वि0वि0 की पी0 एच0–डी उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबंध)

(103) एम0 एल0 जोशी : ललितपुर जिले का सामाजिक–आर्थिक इतिहास, 1966ई0–1947ई0 (बु0 वि0 वि0, झाँसी की पी–एच0डी0 उपाधि हेतु स्वीकृत शोधप्रबंध),

आर्क्योलौजिकल सर्वे रिपोर्टस

(104) ए0 कनिंघम आर्क्योलौजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिर्पोर्ट, जिल्द 18,21 एवं कनिंघम आर्क्योलौजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिर्पोट टूर्स इन बुन्देलखण्ड एण्ड मालवा इन 1874–75 एण्ड 76–77, जिल्द 10, कलकत्ता, 1880ई0,

(105) डा0 ए0 फ्युहरर आर्कियोलौजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिर्पोट दी मोनुमेन्टल एक्टिविटिभ्ज एण्ड इंस्क्रिप्सन्स इन दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध, 1891ई0

(106) पी0 सी0 मुकर्जी रिर्पोर्ट आन दि एक्टिविटीज इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर, जिल्द 1, 1891ई0,

(107) वी0 ए0 स्मिथ दी जैन स्तूप एण्ड अदर एण्टिक्विटीज आफ मथुरा, आर्क्योलौजिकल सर्वे आफ इण्डिया, न्यू इम्पीरियल सीरीज, जिल्द 20, इलाहाबाद, 1901ई0

(108) एनुअल रिर्पोट आफ दी आर्क्योलौजिकल सर्वे आफ इण्डिया, 1903–04ई0

(109) एच0 हरग्रीव्ज एनुअल प्रोग्रेस रिर्पोट आर्क्योलौजिकल सर्वे आफ इण्डिया 1915ई0

(110) एच0 हरग्रीव्ज आर्क्योलौजिकल सर्वे आफ इण्डिया एनुअल प्रोग्रेस रिर्पोट फार 1916ई0

(111) सर जान मार्शल आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया एनुअल रिर्पोट 1914–15 भाग–1 कलकत्ता, 1916ई0

(112) दयाराम साहनी एनुअल प्रोग्रेस रिर्पोट आफ दी सुप्रिटेण्डेण्ट हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट मनुमेन्ट्स, नार्दर्न सर्किल, भाग2, लाहौर, 1918ई0

(113) डा0 डी0 वी0 एयुनर आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया एनुअल रिर्पोट, 1917–18, भाग–1, कलकत्ता, 1920ई0

(114) एटकिन्सन–स्टेटिस्टिकल, डेस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउन्ट आफ दि एन0 उब्लू प्राविन्सेज आफ इण्डिया, भाग–1 (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद, 1974ई0

(115) डी0 एस0 ड्रेक ब्रोकमैन झांसी, ए गजेटियर, इलाहाबाद, 1909.

(116) ए0 बी0 जोशी0 – उ0प्र0 , डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, झांसी, लखनऊ, 1965ई0

(117) सी0डी0लुआर्ड – ईस्टर्न स्टेट्स (बुन्देलखण्ड) गजेटियर्स, लखनऊ, 1907ई0

(118) सी0 ई0 लुआर्ड डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स आफ युनाइटेड प्राविम्सेज आफ आगरा एण्ड अवध (सप्लीमेन्टरी स्टेटिक्स) भाग 20, इलाहाबाद, 1924ई0

राजकीय प्रकाशन, रजिस्टर, रिर्पोटस्

(119) इपीग्राफी इण्डिया भाग–1

(120) इपीग्राफी इण्डिया खण्ड–4

(121) प्रगति के पथ पर अग्रसर, ललितपुर , 1986, जिला सूचना विभाग, ललितपुर,

(122) अनुक्मणिका 1989 , जिला सूचना विभाग ललितपुर.

(123) पर्यटन उघोग नीति, 1991 ,पर्यटन विभाग, ललितपुर,

(124) पर्यटन विभाग, उ0प्र0, 1990–91 के कार्य कलाप उ0प्र0 शासन, लखनऊ,

(125) श्री देवगढ़ क्षेत्र एवं जिन बिम्ब पूजा (संक्षिप्त क्षेत्र परिचय सहित), मुद्रक, शक्ति प्रेस, ललितपुर, 1991,

(126) 1998–99, 2001–2002, उ09प्र0 वार्षिकी, निर्देशक, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ0प्र0, लखनऊ

(127) अर्थ एवं संख्याधिकारी, ललितपुर के कार्यालय की आख्या तालिका सं0 1"जनपद एक दृष्टि में", 1999,

(128) फाइल–झांसी मण्डल जिला योजना, 1998–99, कार्यालय, क्षेत्रीय पर्यटन अधिकारी, झांसी मण्उल, होटल वीरांगना, झांसी (अप्रकाशित)

(129) फाइल–झांसी मण्डल जिला योजना, 1998–99, कार्यालय, क्षेत्रीय पर्यटन अधिकारी, झांसी मण्उल, होटल वीरांगना, झांसी (अप्रकाशित)

(130) जे0डेविसन रिर्पोट आन दि सेटिलमेन्ट आफ ललितपुर, नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज, इलाहाबाद, 1869,

(131) जे0 फ्रेंकलिन मेमायर्स आन बुन्देलखण्ड, 1825,

(132) डब्लू0 एच0 एल0 इम्फे तथा जे0 एस0 मेस्टन रिर्पोट आन दि सेकन्ड सेटिलमेन्ट आफ झांसी डिस्ट्रिक्ट (इन्क्लूडिंग ललितपुर सब डिवीजन) नार्थ वेस्ट प्राविंसेज, इलाहाबाद, 1892ई0

(133) एच0 एस0 होरे फायनल रिर्पोट आन दि रिवीजन आफ सेटिलमेन्ट इन ललितपुर, इलाहाबाद, 1896,

(134) ए0 डब्लू0 पिम फायनल सेटिलमेन्ट रिर्पोट आन दि रिवीजन आफ झांसी डिस्ट्रिक्ट (इन्क्लूडिंग ललितपुर सब–डिवीजन) इलाहाबाद, 1907,

पत्र–पत्रिकायें

(135) अनेकान्त, (136) अहिंसावाणी, (137) कलकत्ता रिव्यू, (138) कल्पना, (139) जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, (140) जैन मित्र, (141) जैन रिव्यू, (142) जैन संदेश, (143) जैन सिद्धान्त भास्कर, (144) जैन हितैषी, (145) धर्मयुग, (146) काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, (147) बुलेटिन आफ एनिशियेनट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड आर्क्योलाजी, सागर विश्वविघालय, (148) बुलेटिन आफ दि डेकन कालेज, रिसर्च इन्सटीट्यूट,पूना, (149) मध्य प्रदेश सन्देश, (150) विश्वेश्वरानन्द भारत–भारती, होशियारपुर, (151) वीर, (152) वीर वाणी, (153) शिक्षा, (154) सागर विश्वविघालय पुरातत्व पत्रिका, (155) सन्मति संदेश (156) त्रिपथगा, (157) उ0प्र0 (पुरातत्व विशेषांक), (158) बुन्देलखण्ड परिषद पत्रिका, इलाहाबाद विश्वविघालय, (159) बुन्देलखण्ड तीर्थ क्षेत्र विशेषांक, 1975, (160) भास्कर समाचार पत्र, (161) जनप्रिय, साप्ताहिक , ललितपुर, (162) वार्षिक पत्रिका–1999 बुन्देलखण्ड महाविघालय (163) सर्वेक्षण समीक्षाः भारतीय पुरातत्व विभाग झॉसी–1989 (164) मध्य प्रदेश में पर्यटन

पार्श्वनाथ (लगभग 10वीं श0ई0) ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद– ललितपुर

शीतलनाथ (लगभग 12वीं श0ई0) ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर

पार्श्वनाथ (लगभग 11वीं श0ई0)ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर

मल्लिनाथ (लगभग 12वीं श0ई0) ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर

अजितनाथ (लगभग 12वीं श0ई0) ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर

पद्मप्रभनाथ (लगभग 12वीं शताब्दी) ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर

सुमतिनाथ (लगभग 12वीं श0ई0)ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर

चन्द्रप्रभनाथ (लगभग 12वीं श0ई0)ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर
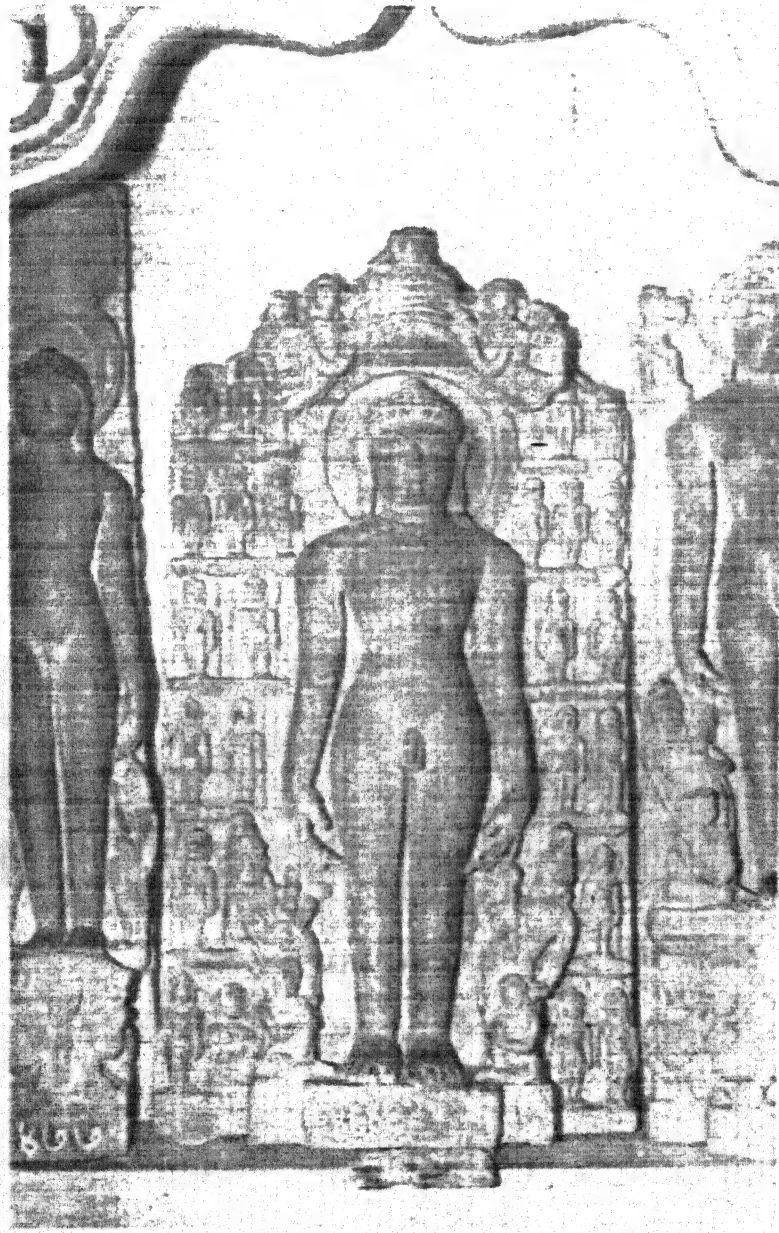
ऋषभनाथ सहित चौबीसी प्रतिमा (लगभग 11वीं श0ई0)
ग्राम-सीरोन खुर्द, जनपद-ललितपुर
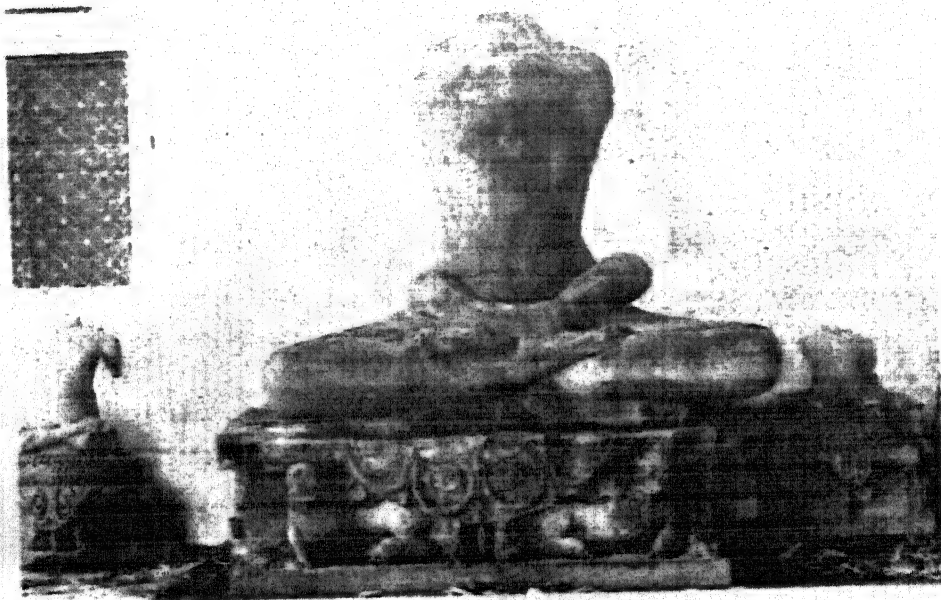
बैठादेव (लगभग 13वीं शताब्दी) ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर

सर्वतोभद्र-स्तम्भ (मध्यकालीन) ग्राम – सीरोन खुर्द,
जनपद – ललितपुर

चि० सं० 31. नेमिनाथ (लगभग 12वीं श०ई०) ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर

शान्तिनाथ (लगभग 12वीं श०ई०) ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर
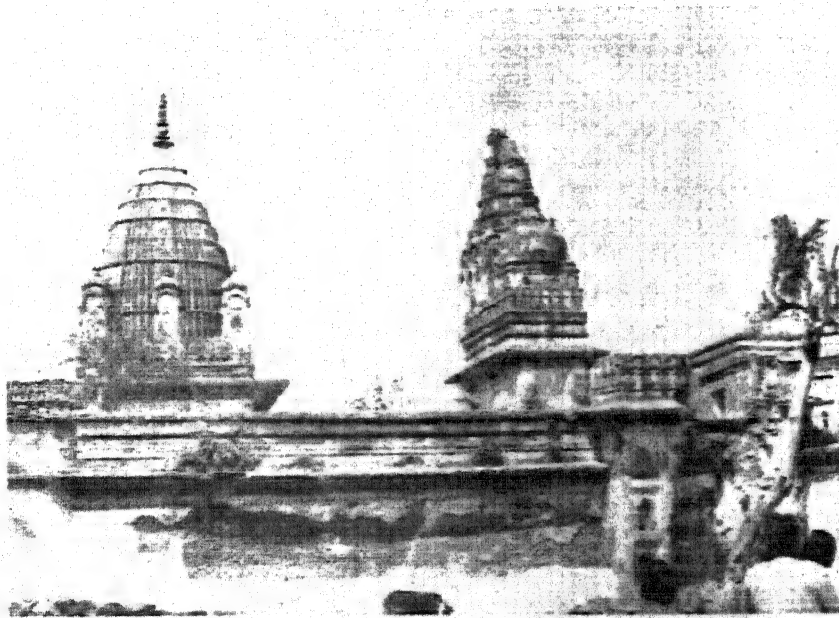
जैन मन्दिर (लगभग 17वीं–18वीं श0ई0) ग्राम – मसौरा खुर्द,
जनपद – ललितपुर

चन्द्रप्रभनाथ (लगभग 12वीं - श०ई०) ग्राम–सीरोन खुर्द, जनपद–ललितपुर

आरंग — भाण्ड-देवल-मंदिर

खजुराहो — पार्श्वनाथ-मंदिर, बहिर्भाग, शिव-मस्तक

चांदपुर — नवग्रहपट्ट

आरंग — भाण्ड-देवल-मंदिर, गर्भगृह में तीर्थंकर-मूर्तियां

खजुराहो — पार्श्वनाथ-मंदिर, बहिर्भित्ति पर सुर-सुंदरी

अहार संग्रहालय — यक्षी चक्रेश्वरी

(क) लखनादोन — तीर्थंकर मूर्ति

(ख) लखनादोन — तीर्थंकर पार्श्वनाथ

(क) गंधावल — यक्षी चक्रेश्वरी

(ख) मांधाता — पीतल-निर्मित तीर्थंकर मूर्ति का परिकर

खजुराहो — शांतिनाथ-मंदिर, तीर्थंकर के माता-पिता

खजुराहो — घण्टाई मंदिर

खजुराहो — घण्टाई मंदिर, गर्भगृह की छत

खजुराहो — पार्श्वनाथ-मंदिर

खजुराहो — पार्श्वनाथ-मंदिर, पृष्ठभाग

खजुराहो — पार्श्वनाथ-मंदिर, दक्षिणी बहिर्भित्ति का एक भाग

खजुराहो — पार्श्वनाथ-मंदिर, मण्डप की छत

खजुराहो — पार्श्वनाथ-मंदिर, पृष्ठवर्ती गर्भगृह का प्रवेशद्वार

(क) खजुराहो — पार्श्वनाथ-मंदिर, बहिर्भित्ति पर [illegible]

(ग) खजुराहो — पार्श्वनाथ-मंदिर, बहिर्भित्ति पर देव-मूर्तियां

खजुराहो — पार्श्वनाथ-मंदिर, महामण्डप में चतुर्विंशति पट्ट

खजुराहो — आदिनाथ-मंदिर

खजुराहो आदिनाथ-मंदिर, दक्षिणी बहिर्भित्ति का एक भाग

अरनाथ (लगभग 12वीं श0ई0) ग्राम–सीरोन खुर्द,
जनपद–ललितपुर

पार्श्वनाथ (लगभग 11वीं श0ई0) ग्राम–सीरोन खुर्द,
जनपद–ललितपुर

जैन मन्दिर (लगभग 17वीं–18वीं शताब्दी) ग्राम – सिरसी,
जनपद–ललितपुर

समाधन घाट का दृश्य (उत्तर मध्यकालीन) ग्राम – सिरसी, जनपद–ललितपुर